जैन पूजांजलि

विभिन्न विद्वानों द्वारा रचित जैन पूजा एवं पाठ संग्रह

ॐ

जैन पूजांजली

चार गति के दुःखों से मुक्ति हेतु रत्नत्रय द्वारा
सिद्धशीला में विराजमान होते है,
ऐसी मंगल भावना भाते हुए पूजन प्रारम्भ करना।

: प्रकाशक :
श्री शांतिलाल रतिलाल शाह, परिवार, मुंबई
श्री अनंतराय अमुलखभाई शेठ परिवार, मुंबई

प्रथम आवृत्ति | प्रत २०० | विक्रम संवत २०८१ | वीर संवत २५५१ | इस्वी सन् २०२५

प्रकाशक : श्री शांतिलाल रतिलाल शाह परिवार, मुंबई
श्री अनंतराय अमुलखभाई शेठ परिवार, मुंबई

प्रकाशन तिथि

वर्तमान शासननायक बालब्रह्मचारी श्री महावीरस्वामी मोक्ष कल्याणक दिवस
(कार्तिक कृष्ण अमावस्या) (दि. २१-१०-२०२५)

प्राप्तिस्थान

श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट,
३०२, कृष्णकुंज, HDFC बेंक के उपर
वी.एल. महेता मार्ग, विले-पार्ले (वेस्ट), मुंबई
website : www.vitragvani.com
✆ Mo : +91 75068 27160

ISBN No : 978-93-81057-56-8

मूल्य : स्वाध्याय

नम्र विनंती
इस पुस्तक की किसी भी प्रकार से अशातना न हो
यह विशेष ध्यान रखें ।

: टाईप सेटींग :
स्मृति ऑफसेट
सोनगढ-३६४२५०

: मुद्रक :
क्वालिटी जेरॉक्स और क्वालिटी डिजिटल प्रिन्ट्स
बी विंग, वर्टेक्स विकास बिल्डिंग,
शॉपिंग सेन्टर दुकान संख्या-१६
अंधेरी स्टेशन रोड के पास, मुंबई, महाराष्ट्र-४०००६९

प्रकाशकीय निवेदन

अनंत जन्म-मरण को प्राप्त हो रहे इस जीव को, कोई महान पुण्ययोग से सत्पुरुषका योग प्राप्त होता है। उनकी मंगलकारी वाणी भव्य जीवों के जन्म-मरणका अंत लाती है और वह जीव सादि अनंत काल सुख को प्राप्त होकर सिद्धालय में विराजमान होता है।

वर्तमान दुषमकाल में तीर्थंकर भगवंत अथवा भावलिंगी मुनिराज का योग नहीं है, ऐसे इस कालमें सत्‌धर्म जहाँ विलुप्त हो चुका था, वैसे में भव्यजीवों के महान भाग्योदय से, जन्म-मरण का अंत लाकर कल्याण के पथ पर चलानेवाले, प्रत्यक्ष उपकारी पूज्य गुरुदेवश्री ने इस काल में जन्म लेकर अनुपम अविस्मरमणीय उपकार किया है। उनकी वाणी की पावन गंगा में अनेक भव्यजीवों ने स्नान करके अध्यात्म के गहरे बीज बोए है।

पूज्य गुरुदेवश्री ने ४५ वर्ष तक सम्यग्दर्शन कैसे प्राप्त हो और सम्यग्दर्शन के विषयभूत आत्मस्वरूप का ही उपदेश दिया है। नव तत्त्व का यथार्थ स्वरूप, चौद गुणस्थान का स्वरूप, छह द्रव्य का स्वरूप, निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध, क्रमबद्धपर्याय, कारणशुद्धपर्याय इत्यादि अनेक सूक्ष्म विषयों का रहस्य को खोला है। सम्यग्दर्शन प्राप्त धर्मात्माको मोक्षमार्ग आगे वृद्धि होने पर गुणस्थान में कैसे विकल्प होते है, उनकी मर्यादा कैसी होती है उसका भी सूक्ष्म विवेचन किया है। बाह्य में जहाँ पूजा, भक्ति, व्रत, तप आदिसे धर्म मानता था ऐसे में उन्हों ने तत्त्व का यथार्थ निरूपण करके अज्ञान अंधकार को दूर किया है। शुभभाव में धर्मकी मान्यता वह मिथ्यात्व है। मूल आत्मस्वरूप के अवलम्बन से ही धर्म का प्रारम्भ है, इत्यादि बातों को स्पष्ट करके अनुपम उपकार किया है।

धर्मात्मा को भी अपनी भूमिका अनुसार शुभभाव आते है लेकिन हेयबुद्धि से आता है। उस भाव को वे दुःखरूप अनुभव करते है। अंतर्मुख

पुरुषार्थ द्वारा वे इस भावका भी नाश करके निर्विकल्प अवस्था प्राप्त करके पूर्ण निर्दोष होकर मुक्ति को प्राप्त होते है। इसी मार्ग को वे स्वयं की वाणी में प्ररूपित करते है और भव्य जीवों को निष्कारण करुणा द्वारा मार्ग को दर्शाते है।

इस प्रकार तत्त्वज्ञान की समझ से व्यवहार शुभभाव आदि होते हैं। उसे समझकर पूज्य गुरुदेवश्री के अनुपम उपकार को हृदयंगम करके उनके चरणों में भक्तिभावपूर्वक नमन करते है। तथापि प्रशममूर्ति भगवती माता, पूज्य बहिनश्री चंपाबेन, परमकृपालुदेव श्रीमद् राजचंद्रजी, पूज्य निहालचंदजी सोगानी आदि सर्व धर्मात्माओं के चरणों में वंदन करके प्रस्तुत पुस्तक 'जैन पूजांजली' उनके चरणों में अर्पण करते है। सर्व मुमुक्षुजीव तत्त्वज्ञानपूर्वक निज आत्महितार्थ लाभ प्राप्त करेंगे, ऐसी पवित्र भावना सह विराम लेते है।

ट्रस्ट प्रस्तुत पूजन पुस्तिका के संपादन कार्य हेतु पं. प्रांजल जैन शास्त्री, पूजन पुस्तिका के संपूर्ण संशोधन का कार्य करने हेतु पं. विरागजी शास्त्री, जबलपुर के प्रति आभार व्यक्त करते हैं।

अन्त में कारण नियमस्वरूप स्वशुद्धात्मा के लक्ष्य से सभी जीव कार्यनियम अर्थात् निश्चय मोक्षमार्गरूप परिणमित हों, इसी भावना के साथ..

यह पुस्तक **www.vitragvani.com** पर भी उपलब्ध है।

—श्री शांतिलाल रतिलाल शाह परिवार, मुंबई
—श्री अनंतराय अमुलखभाई शेठ परिवार, मुंबई

✻

: पूजन करनेवालों के लिए सूचना :

- स्नान करके शुद्ध वस्त्र पहिनकर पूजन करना।
- चमड़े का पर्स, बेल्ट, टोपी जैसे अशुद्ध वस्तुएँ पास में मत रखना।
- पूजन की सामग्री बराबर से चेक कर लेना।
- जल छानकर उपयोग में लेना। पूजन की सामग्री को जमीन पर नहीं रखना और पूजन सामग्री पर किसी का पैर नहीं लगना चाहिये।
- पूजन करने से पूर्व प्रथम हाथ को धो ले।
- पूजन करते समय मुख, नाक आदिमें से किसी प्रकारका मैल न निकाले।
- पूजन करते समय मार्केट में पहननेवाले वस्त्र और उनी वस्त्र का उपयोग न करें।
- प्रासुक द्रव्य से पूजन करना चाहिये जैसे कि चोखा, केसर, जल, लौंग, बादाम, नारियल, इलायची आदि। पकवान अथवा हरे फल पूजन में मत लेना।

अनुक्रमणिका

क्रम	विषय	रचयिता	पृ. नं.
१.	णमोकार मंत्र	—	१
२.	विनय पाठ	—	१
३.	जिनेन्द्र स्तुति	श्री पवैयाजी	२
४.	मंगलाष्टक (संस्कृत)	—	२
५.	दर्शन-पाठ	श्री युगलजी	४
६.	आराधना पाठ	पं. द्यानतरायजी	५
७	देव-स्तुति	—	६
८	जलाभिषेक पाठ	श्री हरजसरायजी	७
९	प्रतिमा प्रक्षाल पाठ	श्री अभयकुमारजी	११
१०	करलों जिनवर की पूजन	—	१५
११	पूजा पीठिका	—	१५
१३	मंगल विधान	—	१६
१४	स्वस्ति मंगलपाठ	श्री पवैयाजी	१७
१५	श्री नित्य नियम पूजन	श्री पवैयाजी	१९
१६	श्री देवशास्त्रगुरु जिन पूजन	श्री पवैयाजी	२२
१७	श्री देव-शास्त्र-गुरु पूजा	डॉ. भारिल्लजी	२५
१८	श्री देव-शास्त्र-गुरु पूजा	श्री युगलजी	२९
१९	श्री देव-शास्त्र-गुरु पूजन	ब्र. रविन्द्रजी	३३
२०	श्री वीतराग पूजन	ब्र. रविन्द्रजी	३६
२१	श्री समुच्चय पूजन	ब्र. सरदारमलजी	४१
२२	श्री पंच–परमेष्ठी पूजा	श्री पवैयाजी	४४
२३	श्री नवदेव पूजन	श्री पवैयाजी	४९
२४	श्री सिद्ध पूजन	डॉ. भारिल्लजी	५३
२५	श्री सिद्ध पूजन	श्री युगलजी	५७

२६ श्री सिद्ध पूजन .... श्री पवैयाजी -------------- ६२
२७ श्री विद्यमान बीस तीर्थंकर पूजन ...... श्री पवैयाजी -------------- ६५
२८ श्री सीमंधर जिनपूजा .... डॉ. भारिल्लजी ------------ ६९
२९ श्री सीमंधर जिनपूजन .... श्री पवैयाजी -------------- ७३
३० श्री कृत्रिम अकृत्रिम चैत्यालय पूजन .. श्री पवैयाजी -------------- ७७
३१ श्री वर्तमान चौबीस तीर्थंकर पूजन .... श्री पवैयाजी -------------- ८२
३२ श्री ऋषभदेव पूजन .... श्री पवैयाजी -------------- ८५
३३ श्री आदिनाथ पूजन .... ब्र. रविन्द्रजी -------------- ८९
३४ श्री चन्द्रप्रभ जिनपूजन .... श्री पवैयाजी -------------- ९६
३५ श्री शीतलनाथ जिनपूजन .... श्री पवैयाजी ------------ १००
३६ श्री वासुपूज्यनाथ जिन पूजन .... श्री पवैयाजी ------------ १०४
३७ श्री अनन्तनाथ जिन पूजन .... श्री पवैयाजी ------------ १०८
३८ श्री शांतिनाथ जिन पूजन .... श्री पवैयाजी ------------ ११३
३९ श्री नेमिनाथ जिनपूजा .... श्री पवैयाजी ------------ ११७
४० श्री पार्श्वनाथ जिन पूजन .... श्री पवैयाजी ------------ १२२
४१ पार्श्वनाथ (रविव्रत) पूजन .... ब्र. रविन्द्रजी ------------ १२६
४२ श्री महावीर पूजन .... डॉ. भारिल्लजी ---------- १३१
४३ श्री वर्धमान जिन पूजन .... श्री पवैयाजी ------------ १३५
४४ श्री शान्ति कुन्थु अरनाथ जिन पूजन . श्री पवैयाजी ------------ १३८
४५ श्री शान्ति-कुन्थु-अरनाथ जिन पूजन... ब्र. रविन्द्रजी ------------ १४२
४६ श्री पंच बालयति जिन पूजन .... श्री पवैयाजी ------------ १४५
४७ श्री पंच-बालयति पूजन .... ब्र. रविन्द्रजी ------------ १५१
४८ श्री जिनवाणी पूजन .... श्री पवैयाजी ------------ १५६
४९ श्री समयसार पूजन .... श्री पवैयाजी ------------ १५९
५० श्री कुंदकुंदाचार्य पूजन .... श्री पवैयाजी ------------ १६४
५१ श्री पंचमेरु पूजन .... श्री पवैयाजी ------------ १६८
५२ षोडशकारण पूजन .... श्री पवैयाजी ------------ १७२

५३ श्री दशलक्षणधर्म पूजन .... श्री पवैयाजी ------------ १७६
५४ श्री रत्नत्रयधर्म पूजन .... श्री पवैयाजी ------------ १८२
५५ क्षमावाणी पूजन .... श्री पवैयाजी ------------ १८८
५६ श्री नन्दीश्वर द्वीप (अष्टान्हिका) पूजन श्री पवैयाजी ------------ १९३
५७ श्री वीर निर्वाण पर्व पूजन .... श्री पवैयाजी ------------ १९७
५८ श्री श्रुतपंचमी पूजन .... श्री पवैयाजी ------------ २०२
५९ श्री रक्षाबंधन पर्व पूजन .... श्री पवैयाजी ------------ २०६
६० श्री भक्तामरस्तोत्र पूजन .... श्री पवैयाजी ------------ २११
६१ वीरशासनजयंती पूजा .... श्री पवैयाजी ------------ २१४
६२ श्री तीर्थंकर निर्वाण क्षेत्र पूजन .... श्री पवैयाजी ------------ २१९
६३ श्री पंच बालयति जिन–पूजा .... पं. अभयकुमारजी ----- २२२
६४ निर्वाणकांड (भाषा) .... भैया भगवतीदासजी --- २२६
६५ समुच्चय अर्घ २२८
६६ शान्ति-पाठ (भाषा) २३०
६७ शान्ति पाठ २३१
६८ विसर्जन २३१

स्तुति, स्तोत्र, पाठ

आत्मा की स्तुति २३२
आत्मज्ञानी २३३
श्री भक्तामर स्तोत्र (संस्कृत) .... श्री मानतुंगाचार्य ------- २३५
सामायिक पाठ भाषा .... – ----------------------- २४२
नीरव-निर्जर .... श्री युगलजी ------------ २४७
सामायिक पाठ .... श्री अमितगति आचार्य २५१
आलोचना पाठ .... – ----------------------- २५४
लघु प्रतिक्रमण .... – ----------------------- २५७
बारह भावना .... पं. भूधरदासजी -------- २६०

बारह भावना .... पं. जयचंदजी----------- २६१
समाधि भावना २६२
समाधिमरण भाषा .... पं. सूरचंदजी ----------- २६४
श्री सिद्धचक्र माहात्म्य २७३
अमूल्य तत्त्व विचार .... श्रीमद् राजचंद्र---------- २७४
महावीराष्टक स्तोत्र .... पं. भागचंदजी ---------- २७५

भक्ति खण्ड

देवभक्ति २७६-२८१

१ एक तुम्ही आधार हो जगमें २७६
२ तिहारे ध्यान की मूरत २७७
३ मेरे मनमंदिर में आन २७७
४ निरखो अंग जिनवर के २७८
५ आओ जिनमंदिर में आओ २७९
६ प्रभु हम सब का एक २८०
७ धन्य धन्य आज घडी कैसी सुखकार २८०
८ वीर प्रभु के ये बोल, तेरा प्रभु २८१
९ आज हम जिनराज जी २८१

शास्त्रभक्ति २८२-२८८

१ जिनवर चरण भक्ति वर गंगा २८२
२ जिनवाणी माता रत्नत्रय निधि दीजिये २८२
३ जिन-बैन सुनत मोरी भूल भगी २८३
४ जिनवाणी माता दर्शन की बलिहारियाँ २८३
५ चरणों में आ पड़ा हूँ २८४
६ नित पीज्यो धी धारी जिनवाणी २८४
७ सांची तो गंगा यह वीतरागवाणी २८५
८ धन्य धन्य है घडी आज की २८५

९ केवलि-कन्ये वाङ्मय गंगे २८५
१० धन्य धन्य जिनवाणी माता २८६
११ धन्य धन्य वीतराग वाणी २८७
१२ सुनकर वाणी जिनवर की २८७
१३ मुख ओंकार धुनि सुनि २८७
१४ भ्रात जिनवाणी सम नहिं आन २८८
१५ नित्य बोधिनी मां जिनवाणी २८८

गुरु भक्ति **२८९-२९९**

१ ऐसे साधु सुगुरु कब मिलि है २८९
२ धन-धन जैनी साधु जगत के २८९
३ परम गुरु बरसत ज्ञान झरी २९०
४ वे मुनिवर कब मिली हैं उपगारी २९०
५ ऐसे मुनिवर देखे वन में २९१
६ परम दिगम्बर मुनिवर देखे २९१
७ संत साधु बन के विचरूँ २९१
८ धन्य मुनीश्वर आतम हित में २९२
९ म्हारा परम दिगम्बर मुनिवर आया २९३
१० मैं परम दिगम्बर साधु के गुण गाऊँ २९३
११ नित उठ ध्याऊँ गुण गाऊँ २९४
१२ हे परम दिगम्बर यति २९४
१३ हे परम-दिगम्बर मुद्रा जिनकी २९५
१४ होली खेले मुनिराज २९६
१५ ते गुरु मेरे मन बसो २९६
१६ अहो जगत गुरु देव २९७
१७ वे मुनिवर कब मिलि है उपगारी २९८

वैराग्य भक्ति **२९९-३००**

१८ ममताकी पतवार ना तोडी २९९
१९ जिया कब तक उलझेगा २९९

: श्रावक को करने योग्य क्रियाएँ :

(१) किसी भी जैन नामधारी जीव को शहद, मांस, मदिरा, वट के फल, पीपल के फल, उमड़ के फल, अंजीर और कुम्बड़—यह आठ वस्तु का सीधा भोजन कदापि नहीं होता हैं।

(२) हमेशा प्रातः श्री देव-गुरु-शास्त्र के दर्शन, पूजन आदि करना चाहिये। शास्त्र के प्रति विनय, सन्मान और यत्न से वर्तन होना चाहिये। अविनय, अशातना नहीं होनी चाहिये।

(३) पानी को छानकर उपयोग में लेना चाहिये।

(४) त्रसहिंसा से बचने के लिये नीम्नानुसार विवेक रखना चाहिये।

- रात्रि भोजन-पान कदापि नहीं करना चाहिये।
- सड़ा हुआ अनाज कदापि उपयोग में नहीं लेना चाहिये।
- हलवाई की दुकान से व होटल की वस्तुएँ कदापि खाना-पीना नहीं चाहिये।
- बासी अचार, हरे पत्तियों की सब्झी, कंदमूल एवं रात्रि को बनी हुई वस्तुएँ कदापि खाना नहीं चाहिये।
- आटा, मसालादि, पापड, बड़ी आदि वस्तुएँ वर्षाऋतु में तीन दिन, ग्रीष्मऋतु में पांच दिन, शीतऋतु में सात दिन से अधिक हो तो उपयोगमें नहीं लेना चाहिये।
- दूध को निम्बू से अथवा चांदी से जमाना चाहिये।
- चासनी से बनी हुई वस्तुएँ एक दिन तक और पानी आदि से बनी हुई मिठाईयाँ आटे की मुदत अनुसार उपयोग में लेना।
- सेव आदि तली हुई वस्तुएँ एक ही दिन तक उपयोग में लेना

चाहिये । दहीं-छाछ तैयार होनेके पश्चात् चौबीस घंटे तक उपयोग कर सकते है ।

- मल-मूत्रादि करने के बाद हाथ-पैर धोने के पश्चात् ही शास्त्रादि या भोजन की सामग्री को छूना चाहिये । जिनमंदिर आदि धर्मस्थान में जाते समय स्वच्छ कपड़े पहिनना चाहिये ।
- तम्बाकु जैसी किसी भी वस्तु का व्यसन मुमुक्षु को नहीं होना चाहिये ।
- दूध दोहने के तुरन्त बाद गर्म करना चाहिये, क्योंकि कच्चे दूध में अंतर्मुहूर्त पश्चात् त्रस की उत्पत्ति होती है । जिस दाल की दो दाल हो ऐसे दलहन और बदाम, पिस्ता आदि वस्तुएँ कच्चे दूध में, दहीं में या कच्ची छाछ में मिलाकर नहीं खाना चाहिये, क्योंकि उसमें त्रस की उत्पत्ति होती है ।
- इत्र आदि वस्तुएँ महान हिंसा का कारण होनेसे उसका उपयोग करना वर्जित है ।

उपरोक्त कहे वह और अन्य भी सर्व प्रसंगों में त्रसहिंसा के स्थूल कलदृष्टित परिणामों से स्वयं के आत्मा को बचाना चाहिये ।

*

ॐ

णमोकार मंत्र

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आयरियाणं,
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं।

विनय पाठ (१)

(हरिगीतिका)

हे नाथ, मैं मिथ्यात्व वश संसार में फिरता रहा।
इक बोधि लाभ विना अनंता, व्यर्थ भव धरता रहा।।१।।

देव पूजा ना करी, नहीं पात्रदान कभी दिया।
जिन वैन भी न सुने कभी, चारित्र भी नहीं रख सका।।२।।

है निर्विकल्प स्वभाव सिद्ध, अरु एक केवल आतमा।
भूलकर उसको सदा मैं टक्करें खाता रहा।।३।।

अस्थि मज्जा चाम से, निर्मित अथिर संसार में।
रमता रहा भ्रमता रहा नहि शरण कोई पा सका।।४।।

आज मेरा पुण्य जागा, आपके दर्शन हुए।
पाई शरण, आलोक-सा सहसा हृदय पर छा गया।।५।।

नाचने गाने लगा, यह नाद-सा आने लगा।
कुछ अन्य मुझको, नहि शरण है शरण इक परमात्मा।।६।।

काल लब्धि आज जागी, शांतिपथ मुझको मिला।
आज निश्चय हो गया, पाऊँगा जीवन की कला।।७।।

आज जग के कीट को भी, जिनेन्द्र पद मिल जायेगा।
आज इस विक्षिप्त सर में भी कमल खिल जायेगा।।८।।

मिथ्यात्व जगत में भ्रमण कराता है।
सम्यक्त्व मुक्ति में रमण कराता है।।

जिनेन्द्र स्तुति

(ताटंक) जय स्वानुभूति के निमित्तभूत मैं श्री तीर्थंकर तुम्हें नमूं।
चिद्-चमत्कार चिद्रूप शाश्वत भाव प्रदर्शक तुम्हें नमूँ।।
तुम निज स्वभाव में तन्मय हो मेरा स्वभाव दर्शाया है।
तुमसी प्रभुता निज में लखकर मैं सादर शीश नवाया है।।

(दोहा) गुण अनंतमय परम पद श्री जिनवर भगवान।
ज्ञेय लखत हैं ज्ञान में अचल सदा निज ध्यान।।
रागादिक को नाश कर हुए सिद्ध भगवान।
वंदन बारम्बार है गुण रत्नों की खान।।

मंगलाष्टक (संस्कृत)

(शार्दूलविक्रीडित)

अर्हन्तो भगवन्त इन्द्रमहिताः सिद्धाश्च सिद्धिश्वराः
आचार्या जिनशासनोन्नतिकराः पूज्या उपाध्यायकाः।
श्री सिद्धान्तसुपाठकाः मुनिवराः रत्नत्रयाराधकाः,
पंञ्चैते परमेष्ठिनः प्रतिदिनं कुर्वन्तु ते मंगलम्।।१।।
श्रीमन्नम्र-सुरासुरेन्द्र-मुकुट-प्रद्योत-रत्नप्रभा-
भास्वत्पाद-नखेन्दवः प्रवचनाम्भोधीन्दवः स्थायिनः।
ये सर्वे जिन-सिद्ध-सूर्यनुगतास्ते पाठकाः साधवः
स्तुत्या योगिजनैश्च पंचगुरवः कुर्वन्तु ते मंगलम्।।२।।
सम्यग्दर्शन-बोध-वृत्तममलं रत्नत्रयं पावनं,
मुक्तिश्री-नगराधिनाथ-जिनपत्युक्तोऽपवर्गप्रदः।
धर्मः सूक्तिसुधा च चैत्यमखिलं चैत्यालयं श्रयालयं,
प्रोक्तं च त्रिविधं चतुर्विधममी कुर्वन्तु ते मंगलम्।।३।।
नाभेयादिजिनाः प्रशस्तवदनाः ख्याताश्चतुर्विंशतिः,
श्रीमन्तो भरतेश्वरप्रभृतयो ये चक्रिणो द्वादश;
ये विष्णु-प्रतिविष्णु-लाङ्गलधराः सप्तोत्तरा विंशति-
त्रैकाल्ये प्रथितास्त्रिषष्टिपुरुषाः कुर्वन्तु ते मंगलम्।।४।।

ये सर्वौषधऋद्धयः सुतपलोवृद्धिंगताः पंच ये,
ये चाष्टांगमहानिमित्तकुशला येऽष्टाविद्याश्चारणाः।
पञ्चज्ञानधरास्त्रयोऽपि बलिनो ये ऋद्धीश्वराः,
सप्तैते सकलार्चिता गणभृतः कुर्वन्तु ते मंगलम्॥५॥

कैलाशे वृषभस्य निर्वृत्तिमही वीरस्य पावापुरे,
चम्पायां वसुपूज्य सज्जिनपतेः सम्मेदशैलेऽर्हताम्।
शेषाणामपि चोर्जयन्तशिखरे नेमीश्वरस्यार्हतो,
निर्वाणावनयः प्रसिद्धविभवाः कुर्वन्तु ते मंगलम्॥६॥

ज्योतिर्व्यन्तर-भावनामरगृहे मेरौ कुलाद्रौ तथा,
जम्बू-शाल्मलि-चैत्यशाखिषु तथा वक्षार-रौप्याद्रिषु।
इष्वाकारगिरौ च कुंडलनगे द्वीपे च नन्दीश्वरे,
शैले ये मनुजोत्तरे जिनगृहाः कुर्वन्तु ते मंगलम्॥७॥

यो गर्भावतरोत्सवो भगवतां जन्माभिषेकोत्सवो,
यो जातः परिनिष्क्रमेण विभवो यः केवलज्ञानभाक्ः।
यः कैवल्यपुरप्रवेशमहिमा सम्पादितः स्वर्गिभिः,
कल्याणानि च तानि पञ्च सततं कुर्वन्तु ते मंगलम्॥८॥

इत्थं श्रीजिनमंगलाष्टकमिदं सौभाग्यसम्प्रदम्,
कल्याणेषु महोत्सवेषु सुधियस्तीर्थंकराणां मुखात्।
ये श्रुण्वन्ति पठन्ति तैश्च सुजनैर्धर्मार्थकामान्विता
लक्ष्मीराश्रियते व्यपायरहिता निर्वाणलक्ष्मीरपि॥९॥

परमात्मा के प्रतीक अष्टद्रव्य

(सोरठा)

जल से निर्मल नाथ! चंदन से शीतल प्रभो;
अक्षत से अविनाश, पुष्प सदृश कोमल विभो।
रत्नदीप सम ज्ञान, षट् रस व्यंजन से सुखद;
सुरभित धूप समान, सरस सु-फल सम सिद्धपद॥

दर्शन-पाठ (युगलजी द्वारा अनुवादित)

दर्शन श्री देवाधिदेव का, दर्शन पाप विनाशन है।
दर्शन है सोपान स्वर्ग का, और मोक्ष का साधन है॥
श्री जिनेन्द्र के दर्शन औ, निर्ग्रन्थ साधु के वंदन से।
अधिक देर अघ नहीं रहै, जल छिद्र सहित कर में जैसे॥
वीतराग-मुख के दर्शन की, पद्मरागसम शांतप्रभा।
जन्म-जन्म के पातक क्षण में, दर्शन से हों शांत विदा॥
दर्शन श्री जिनदेव सूर्य, संसार-तिमिर का करता नाश।
बोधि-प्रदाता चित्त पद्म को, सकल अर्थ का करे प्रकाश॥
दर्शन श्री जिनेन्द्रचन्द्र का, सद्धर्मामृत बरसाता।
जन्मदाह को करे शांत औ, सुख वारिधि को विकसाता॥
सकल तत्त्व के प्रतिपादक, सम्यक्त्व आदि गुण के सागर।
शांत दिगम्बररूप नमूं, देवाधिदेव तुमको जिनवर॥
चिदानन्दमय एकरूप, वंदन जिनेन्द्र परमात्म को।
हो प्रकाश परमात्म नित्य, मम नमस्कार सिद्धात्मा को॥
अन्य शरण कोई न जगत में, तुम्ही शरण मुझको स्वामी।
करुणा भाव से रक्षा करिये, हे जिनेश अन्तर्यामी॥
रक्षक नहीं शरण कोई नहिं, तीन जगत में दुखत्राता।
वीतराग प्रभु-सा न देव है, हुआ न होगा सुखदाता॥
दिन-दिन पाऊँ जिनवरभक्ति, जिनवरभक्ति, जिनवरभक्ति।
सदा मिले वह सदा मिले, जब तक न मिले मुझको मुक्ति॥
नहीं चाहता जैनधर्म के बिना, चक्रवर्ती होना।
नहीं अखरता जैनधर्म से सहित, दरिद्री भी होना॥
जन्म-जन्म के किये पाप औ बन्धन कोटि-कोटि भव के।
जन्म-मृत्यु औ, जरा रोग, सब कट जाते जिनदर्शन से॥
आज युगल दृग हुए सफल, तुम चरण-कमल से हे प्रभुवर।
हे त्रिलोक के तिलक! आज, लगता भवसागर चुल्लू भर॥

आराधना पाठ (पं. द्यानतरायजी कृत)

मैं देव नित अरहंत चाहूँ, सिद्ध का सुमिरन करौं।
मैं सूर गुरु मुनि तीन पद ये, साधुपद हिरदय धरौं॥
मैं धर्म करुणामयी चाहूँ, जहाँ हिंसा रंच ना।
मैं शास्त्र ज्ञान विराग चाहूँ, जासु में परपंच ना॥
चौबीस श्री जिनदेव चाहूँ, और देव न मन बसैं।
जिन बीस क्षेत्र विदेह चाहूँ, वंदितैं पातक नसैं॥
गिरनार शिखर संमेद चाहूँ, चम्पापुर पावापुरी।
कैलाश श्री जिनधाम चाहूँ, भजत भाजैं भ्रम जुरी॥
नव तत्त्व का सरधान चाहूँ, और तत्त्व न मन धरौं।
षट् द्रव्य गुण परजाय चाहूँ, ठीक तासों भय हरौं॥
पूजा परम जिनराज चाहूँ, और देव नहीं कदा।
तिहुँकाल की मैं जाप चाहूँ, पाप नहिं लागै कदा॥
सम्यक्त्व दर्शन ज्ञान चारित, सदा चाहूँ भाव सो।
दशलक्षणी मैं धर्म चाहूँ, महा हर्ष उछाव सों॥
सोलह जु कारण दुख निवारण, सदा चाहूँ प्रीति सो।
मैं नित अठाई पर्व चाहूँ, महामंगल रीति सों॥
मैं वेद चारों सदा चाहूँ, आदि अन्त निवाह सों।
पाये धरम के चार चाहूँ, अधिक चित्त उछाह सों॥
मैं दान चारों सदा चाहूँ, भुवनवशि लाहो लहूँ।
आराधना मैं चार चाहूँ, अन्त में ये ही गहूँ॥
भावना बारह जु भाऊँ, भाव निरमल होत हैं।
मैं व्रत जु बारह सदा चाहूँ, त्याग भाव उद्योत हैं॥
प्रतिमा दिगम्बर सदा चाहूँ, ध्यान आसन सोहना।
वसुकर्म तैं मैं छुटा चाहूँ, शिव लहूँ जहँ मोह ना॥
मैं साधुजन को संग चाहूँ, प्रीति तिनही सों करौं।
मैं पर्व के उपवास चाहूँ, और आरंभ परिहरौं॥

इस दुखद पंचमकाल माहीं, कुल श्रावक मैं लह्यो।
अरु महाव्रत धरि सकैं नाहीं, निबल तन मैंने गह्यो।।
आराधना उत्तम सदा चाहूँ, सुनो जिनराय जी।
तुम कृपानाथ अनाथ 'द्यानत', दया करना न्याय जी।।
वसुकर्म नाश विकास ज्ञान, प्रकाश मुझको दीजिये।
करि सुगति गमन समाधिमरन, सुभक्ति चरनन दीजिये।।

*

देव-स्तुति

वीतराग सर्वज्ञ हितंकर, भविजन की अब पूरो आस।
ज्ञान-भानु का उदय करो, मम मिथ्यातम का होय विनास।।
जीवों की हम करुणा पालें, झूठ वचन नहिं कहें कदा।
परधन कबहूँ न हरहूँ स्वामी, ब्रह्मचर्य व्रत रखें सदा।।
तृष्णा लोभ बढ़े न हमारा, तोष-सुधा नित पिया करें।
श्री जिनधर्म हमारा प्यारा, तिस की सेवा किया करें।।
दूर भगावें बुरी रीतियाँ, सुखद रीति का करें प्रचार।
मेल-मिलाप बढ़ावें हम सब, धर्मोन्नति का करें प्रसार।।
सुख-दुख में हम समता धारें, रहें अचल जिमि सदा अटल।
न्यायमार्ग को लेश न त्यागें, वृद्धि करें निज आतमबल।।
अष्ट करम जो दुःख हेतु हैं, तिनके क्षय का करें उपाय।
नाम आपका जपें निरमन्तर, विघ्न-शोक सब ही टल जाय।।
आतम शुद्ध हमारा होवे, पाप-मैल नहिं चढ़े कदा।
विद्या की हो उन्नति हम में, धर्म ज्ञान हू बढ़े सदा।।
हाथ जोड़कर शीश नवायें, तुम को भविजन खड़े-खड़े।
यह सब पूरो आस हमारी, चरण-शरण में आन पड़े।।

जलाभिषेक पाठ

(श्री हरजसरायजी कृत)

(दोहा)

जय जय भगवंते सदा, मंगल मूल महान।
वीतराग सर्वज्ञ प्रभु, नमौं जोरि जुगपान॥

(अडिल्ल और गीता)

श्री जिन जग में ऐसो को बुधवंत जू।
जो तुम गुण वरननि करि पावै अन्त जू॥
इन्द्रादिक सुर चार ज्ञानधारी मुनि।
कहि न सकै तुम गुणगण हे त्रिभुवन धनी॥
अनुपम अमित तुम गुणनि वारिधि ज्यों अलोकाकाश है।
किमि धरै हम उर कोष में सो अकथ गुण-मणिराश है॥
पै जिन! प्रयोजनसिद्धि की तुम नाम ही में शक्ति है।
यह चित्त में सरधान यातैं नाम ही में भक्ति है॥१॥
ज्ञानावरणी दर्शन-आवरणी भने।
कर्म मोहनी अन्तराय चारों हने॥
लोकालोक विलोक्यो केवलज्ञान में।
इन्द्रादिक के मुकुट नये सुरथान में॥
तब इन्द्र जान्यो अवधि तैं, उठि सुरनयुत वंदत भयौ।
तुम पुण्य को प्रेरयौ हरि ह्वै मुदित धनपति सौं कह्यो॥
अब वेगि जाय रचौ समवसृति सफल सुरपद को करौ।
साक्षात् श्री अरहंत के दर्शन करौ कल्मष हरौ॥२॥
ऐसे वचन सुने सुरपति के धनपति।
चल आयो तत्काल मोद धारैं अति॥
वीतराग छवि देखि शब्द जय-जय कह्यौ।
देय प्रदच्छिना बार-बार वंदत भयौ॥
अति भक्ति भीनो नम्रचित ह्वै समवशरण रच्यो सही।
ताको अनूपम शुभ गति को कहन समरथ कोउ नहीं॥

प्राकार तोरण सभामंडप कनक मणिमय छाजहीं।
नगजड़ित गंधकुटी मनोहर मध्यभाग विराजहीं॥३॥
सिंहासन तामध्य बन्यौ अद्‍भुत दिपै।
तापरि वारिज रच्यो प्रभा दिनकर छिपै॥
तीन छत्र सिर शोभित चौंसठ चमरजी।
महाभक्तियुत ढोरत हैं तहाँ अमरजी॥
प्रभु तरनतारन कमल उपर, अन्तरीक्ष विराजिया।
यह वीतराग दशा प्रतच्छ विलोकि, भविजन सुख लिया॥
मुनि आदि द्वादश सभा के भवि जीव मस्तक नायकें।
बहु भाँति बारम्बार पूजें, नमैं गुणगुण गायकें॥४॥
परमौदारिक दिव्य देह पावन सही।
क्षुधा तृषा चिन्ता भय गद दूषण नहीं॥
जन्म जरा मृति अरति शोक विस्मय नसें।
राग रोष निद्रा मद मोह सबें खसें॥
श्रम बिना श्रम जलरहित पावन, अमल ज्योति स्वरूपजी।
शरणागतनि की अशुचिता हरि, करत विमल अनूपजी॥
ऐसे प्रभु की शांतमुद्रा को नह्वन जलतें करें।
'जस' भक्तिवश मन उक्ति तें, हम भानु ढिंग दीपक धरें॥५॥
तुम तो सहज पवित्र यही निश्चय भयो,
तुम पवित्रता हेत नहीं मज्जन ठयो।
मैं मलीन रागादिक मलतें है रह्यौ,
महामलिन तन में वसु विधिवश दुख सह्यौ॥
बीत्यौ अनंतो काल यह, मेरी अशुचिता ना गई।
तिस अशुचिताहर एक तुम ही, भरहु वांछा चित ठई॥
अब अष्टकर्म विनाश सब मल, दोष-रागादिक हरौ।
तनरूप कारागेह तें, उद्धार शिववासा करौ॥६॥

मैं जानत तुम अष्टकर्म हरि शिव गये।
आवागमन विमुक्त रागवर्जित भये॥
पर तथापि मेरो मनरथ पूरत सही।
नय-प्रमाण तैं जानि महा साता लही॥
पापाचरण तजि न्हवन करता चित्त में ऐसे धरूँ।
साक्षात् श्री अरहंत का मानो न्हवन परसन करूँ॥
ऐसे विमल परिणाम होते अशुभ नशि शुभबन्ध तैं।
विधि अशुभ नसि शुभ बन्धतैं ह्वै शर्म सबविधि नासतैं॥७॥
पावन मेरे नय भये तुम दरस तैं।
पावन पाणि भये तुम चरननि परस तैं॥
पावन मन ह्वै गयो तिहारे ध्यान तैं।
पावन रसना मानी तुम गुण गान तैं॥
पावन भई परजाय मेरी, भयो मैं पूरण धनी।
मैं शक्तिपूर्वक भक्ति कीनी, पूर्णभक्ति नहीं बनी॥
धनि धन्य ते बड़भागि भवि तिन नींव शिवधर की धरी।
वर क्षीरसागर आदि जल मणि कुम्भभरी भक्ति करी॥८॥
विघन-सघन-वन-दाहन दहन प्रचण्ड हो।
मोह-महातम-दलन प्रबल मार्तण्ड हो॥
ब्रह्मा विष्णु महेश आदि संज्ञा धरो।
जग विजयी जमराज नाश ताको करो॥
आनन्दकारण दुःख निवारण, परममंगलमय सही।
मोसो पतित नहिं और तुमसो, पतित-तार सुन्यो नहीं॥
चिंतामणि पारस कल्पतरु, एक भव सुखकार ही।
तुम भक्ति-नौका जे चढ़े, ते भये भवदधि पार ही॥९॥
तुम भवदधि तैं तरि गये, भये निकल अविकार।
तारतम्य इस भक्ति को, हमैं उतारो पार॥१०॥
(निर्मल वस्त्र से प्रतिमाजी को साफ कर निम्न श्लोक बोलकर गन्धोदक ग्रहण करें-)

निर्मलं निर्मलीकरणं पावन पापनाशनम् ।
जिनचरणोदकं वंदे अष्टकर्म-विनाशनम् ।।

अभिषेक पाठ

मैं परम पूज्य जिनेन्द्र प्रभु को भाव से वंदन करूँ ।
मन वचन काय, त्रियोग पूर्वक शीश चरणों में धरूँ ।।१।।

सर्वज्ञ केवलज्ञान धारी की सुछवि उर में धरूँ ।
निर्ग्रंथ पावन वीतराग महान की जय उच्चरूँ ।।२।।

उज्ज्वल दिगम्बर वेश दर्शन कर हृदय आनंद भरूँ ।
अति विनयपूर्वक नमन करके सफल यह नरभव करूँ ।।३।।

मैं शुद्ध जल के कलश प्रभुजी के पूज्य मस्तक पर करूँ ।
जल धार देकर हर्ष से अभिषेक प्रभुजी का करूँ ।।४।।

*

अभिषेक स्तुति

मैंने प्रभु के चरण पखारे (२)
जनम, जनम के संचित पातक तत्क्षण ही निरवारे ।।१।।

प्रासुक जल के कलश श्री जिन प्रतिमा ऊपर ढ़ारे ।
वीतराग अरिहंत देव के गूंजे, जय जयकारे ।।२।।

चरणाम्बुज के स्पर्श करत ही छाये हर्ष अपारे ।
पावन तन, मन नयन भये सब दूर भये अंधियारे ।।३।।

*

देह तो अपनी नहीं है देह से फिर मोह कैसा ।
यह अचेतन रूप पुद्‌गल द्रव्य से व्यामोह कैसा ।।

प्रतिमा प्रक्षाल पाठ

(पं. अभयकुमारजी कृत)

(दोहा)

परिणामों की स्वच्छता, के निमित्त जिनबिम्ब।
इसीलिये मैं निरखता, इनमें निज प्रतिबिम्ब॥
पंच प्रभु के चरण में, वन्दन करूँ त्रिकाल।
निर्मल जल से कर रहा, प्रतिमा का प्रक्षाल॥

अथ पौर्वाह्णिकदेववन्दनायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजा-स्तवनवन्दनासमेतं श्री पंचमहागुरुभक्तिपूर्वककायोत्सर्गं करोम्यहम् ॥१॥

(नौ बार णमोकार मन्त्र पढ़ें)

(छप्पय)

तीन लोक के कृत्रिम और अकृत्रिम सारे।
जिनबिम्बों को नित प्रति अगणित नमन हमारे॥
श्री जिनवर की अन्तर्मुख छवि उर में धारूँ।
जिन में निज का निज में जिन–प्रतिबिम्ब निहारूँ॥
मैं करूँ आज संकल्प शुभ, जिन प्रतिमा प्रक्षाल का।
यह भाव सुमन अर्पण करूँ, फल चाहूँ गुणमाल का॥

ॐ ह्रीं प्रक्षालप्रतिज्ञायै पुष्पांजलिं क्षिपेत्।

(प्रक्षाल की प्रतिज्ञा हेतु पुष्प क्षेपण करें)

(रोला)

अन्तरंग बहिरंग सुलक्ष्मी से जो शोभित।
जिनकी मंगल वाणी पर है त्रिभुवन मोहित॥
श्री जिनवर सेवा से क्षय मोहादि विपत्ति।
हे जिन! श्री लिख पाऊँगा निज–गुण सम्पत्ति॥

(थाली की चौकी पर केशर से 'श्री' लिखें)

(दोहा)

अन्तर्मुख मुद्रा सहित, शोभित श्री जिनराज।
प्रतिमा प्रक्षालन करूँ, धरूँ पीठ यह आज।।

ॐ ह्रीं श्री पीठस्थापनं करोमि।

(रोला)

भक्ति रत्न से जड़ित आज मंगल सिंहासन।
भेदज्ञान जल से क्षालित भावों का आसन।।
स्वागत है जिनराज! तुम्हारा सिंहासन पर।
हे जिनदेव पधारो श्रद्धा के आसन पर।।

ॐ ह्रीं श्री ..... जिन धर्मतीर्थाधिनाथ भगवन्निह सिंहासने तिष्ठ तिष्ठ।

(थाली में जिनबिम्ब विराजमान करें)

क्षीरोदधि के जल से भरे कलश ले आया।
द्रग–सुख–वीरज ज्ञानस्वरूपी आतम पाया।।
मंगल कलश विराजित करता हूँ जिनराजा।
परिणामों के प्रक्षालन से सुधरें काजा।।

ॐ ह्रीं अर्हं कलशस्थापनं करोमि।

जल–फल आठों द्रव्य मिलाकर अर्घ्य बनाया।
अष्ट अंग युत मानो सम्यग्दर्शन पाया।।
श्री जिनवर के चरणों में यह अर्घ्य समर्पित।
करूँ आज रागादि विकारी भाव विसर्जित।।

ॐ ह्रीं श्री स्नपनपीठस्थिताय ..... जिनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(पीठ स्थित जिनप्रतिमा को अर्घ्य चढ़ायें)

मैं रागादि विभावों से कलुषित हे जिनवर।
और आप परिपूर्ण वीतरागी हो प्रभुवर।।
कैसे हो प्रक्षाल, जगत के अघ–क्षालक का।
क्या दरिद्र होगा पालक? त्रिभुवन पालक का।।

भक्ति भाव के निर्मल जल से अघ–मल धोता।
है किसका अभिषेक भ्रान्त चित खाता गोता।।
नाथ! भक्तिवश जिन बिम्बों का करूँ न्हवन मैं।
आज करूँ साक्षात् जिनेश्वर का पर्शन मैं।।

ॐ ह्रीं श्री मन्तं भगवन्तं कृपालसन्तं वृषभादिमहावीरपर्यन्तं चतुर्विंशतितीर्थंकरपरमदेवमाद्यानामाद्ये जम्बूद्वीपे भरतक्षेत्रे आर्यखंडे ...... नाम्निनगरे मासा नामुत्तमे ... मासे ..... पक्षे.... दिने-मुन्यार्यिका-श्रावकश्राविकाणांसकलकर्मक्षयार्थं पवित्रतरजलेन जिनमभिषेचयामि ।।

(चारों कलशों से अभिषेक करें तथा वादित्र नाद करायें एवं जय–जय शब्दोच्चारण करें।)

(दोहा)

क्षीरोदधि–सम नीर से, करूँ बिम्ब प्रक्षाल।
श्री जिनवर की भक्ति से, जानूं निज पर चाल।।
तीर्थंकर का न्हवन शुभ, सुरपति करें महान।
पंचमेरु भी हो गये, महातीर्थ सुखदान।।
करता हूँ शुभ भाव से, प्रतिमा का अभिषेक।
बचूं शुभाशुभ भाव से, यही कामना एक।।
जल–फलादि वसु द्रव्य ले, मैं पूजूं जिनराज।
हुआ बिम्ब अभिषेक अब, पाऊँ निज पदराज।।

ॐ ह्रीं अभिषेकान्ते वृषभादिवीरान्तेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्री जिनवर का धवल यश, त्रिभुवन में है व्याप्त।
शान्ति करें मम चित्त में, हे परमेश्वर आप्त।।

(पुष्पाञ्जलि क्षेपण करें)

(रोला)

जिन प्रतिमा पर अमृतसम जल–कण अति शोभित।
आत्म–गगन में गुण अनन्त तारे भवि मोहित।।
हो अभेद का लक्ष्य भेद का करता वर्जन।
शुद्ध वस्त्र से जल–कण का करता परिमार्जन।।

(प्रतिमा को शुद्ध वस्त्र से पोंछे)

(दोहा)

श्री जिनवर की भक्ति से, दूर होय भव–भार।
उर–सिंहासन थापिये, प्रिय चैतन्य कुमार।।

(जिनप्रतिमा को सिंहासन पर विराजमान करें तथा निम्न छन्द बोलकर अर्घ्य चढ़ायें।)

जल–गन्धादिक द्रव्य से, पूजूं श्री जिनराज।
पूर्ण अर्घ्य अर्पित करूँ, पाऊँ चेतनराज।।

ॐ ह्रीं श्री पीठस्थित जजजिनाय अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।

(दोहा)

जिन संस्पर्शित नीर यह, गन्धोदक गुण खान।
मस्तक पर धारूँ सदा, बनूं स्वयं भगवान।।

(मस्तक पर गन्धोदक चढ़ायें। अन्य किसी अंग से गन्धोदक का स्पर्श वर्जित है।)

*

प्रक्षाल के सम्बन्ध में प्रमुख विचारणीय बिन्दु

१. अर्हन्त भगवान का अभिषेक नहीं होता, जिन बिम्ब का प्रक्षाल किया जाता है, जो अभिषेक के नाम से प्रचलित है।

२. जिनबिम्ब का प्रक्षाल मात्र शुद्ध जल से शुद्ध वस्त्र पहनकर किया जाये।

३. प्रक्षाल मात्र पुरुषों द्वारा ही किया जाये। महिलायें जिनबिम्ब को स्पर्श न करें।

४. जिनबिम्ब का प्रक्षाल प्रतिदिन एक बार हो जाने के पश्चात् बार-बार न करें।

कर लो जिनवर की पूजन

कर लो जिनवर की पूजन, आई पावन घड़ी।
आई... पावन घड़ी मन भांवन.. घड़ी....कर लो।।१।।
दुर्लभ यह मानव तन पाकर, करलो जिन गुणगान।
गुण अनन्त सिद्धों का सुमिरण, करके बनो महान।।...कर लो.
ज्ञानावरण, दर्शनावरणी, मोहनीय अतराय।
आयु नाम अरु गोत्र वेदनीय, आठों कर्म नशाय।।...कर लो.
धन्य धन्य सिद्धों की महिमा, नाश किया ससार।
निज स्वभाव से शिवपद पाया, अनुपम अगम अपार।।...कर लो.
जड़ से भिन्न सदा तुम चेतन करो भेद विज्ञान।
सम्यक् दर्शन अंगीकृत कर निज को लो पहचान।।...कर लो.
रत्नत्रय की तरणी चढ़कर चलो मोक्ष के द्वार।
शुद्धातम का ध्यान लगाओ हो जाओ भवपार।।...कर लो.

पूजा पीठिका

ॐ जय जय जय नमोऽस्तु नमोऽस्तु नमोऽस्तु
अरिहंतों को नमस्कार हैं, सिद्धों को सादर वदन।
आचार्यों को नमस्कार हैं, उपाध्याय को है वन्दन।।
और लोक के सर्वसाधुओं को है विनय सहित वन्दन।
पञ्च परम परमेष्ठी प्रभु को बार बार मेरा वन्दन।।

ॐ ह्रीं श्री अनादि मूलमंत्रेभ्यो नमः पुष्पाजलि क्षिपामि।

मंगल चार, चार हैं उत्तम चार शरण में मैं जाऊँ।
मन वच काय त्रियोग पूर्वक, शुद्ध भावना मैं भाऊँ।।
श्री अरिहंत देव मंगल है, श्री सिद्ध प्रभु हैं मंगल।
श्री साधु मुनि मंगल हैं, है केवलि कथित धर्म मंगल।।

श्री अरिहंत लोक में उत्तम हैं, सिद्ध लोक में हैं उत्तम।
साधु लोक में उत्तम हैं, है केवलि कथित धर्म उत्तम॥
श्री अरिहंत शरण में जाऊँ, सिद्ध शरण में मैं जाउँ।
साधु शरण में जाऊँ, केवलि कथित धर्म शरणा जाउँ॥

॥ पुष्पांजलि क्षिपेत् ॥

मंगल विधान

णमोकार का मन्त्र है शाश्वत इसकी महिमा अपरम्पार।
पाप ताप संताप क्लेश हर्ता भवभय नाशक सुखकार॥

सर्व अमंगल का हर्ता है, सर्वश्रेष्ठ है मन्त्र पवित्र।
पाप पुण्य आस्रव का नाशक संवरमय निर्जरा विचित्र॥

बन्ध विनाशक मोक्ष प्रकाशक वीतरागपद दाता मित्र।
श्री पंचपरमेष्ठी प्रभु के झलक रहे हैं इसमें चित्र॥

इसके उच्चारण से होता, विषय कषायों का परिहार।
इसके उच्चारण से होता, अन्तर मन निर्मल अविकार॥

इसके ध्यान मात्र से होता, अतर द्वन्दों का प्रतिकार।
इसके ध्यान मात्र से होता बाह्यान्तर आनन्द अपार॥

णमोकार है मन्त्र श्रेष्ठतम सर्व पाप नाशनहारी।
सर्व मंगलों में पहला मंगल पढ़ते ही सुखकारी॥

यह पवित्र अपवित्र दशा, सुस्थिति दुस्थिति में हितकारी।
निमिष मात्र में जपते ही होते विलीन पातक भारी॥

सर्व विघ्न बाधा नाशक है सर्व संकटों का हर्ता।
अजर अमर अविकल अविकारी अविनाशी सुख का कर्ता॥

कर्माष्टक का चक्र मिटाता, मोक्ष लक्ष्मी का दाता।
धर्मचक्र से सिद्धचक्र पाता, जो ओम नमः ध्याता॥

ओम शब्द में गर्भित पाँचों परमेष्ठी निज गुण धारी।
जो भी ध्याते बन जाते, परमात्मा पूर्ण ज्ञान धारी॥

जय जय जयति पंच परमेष्ठी जय जय णमोकार जिन मंत्र।
भव बन्धन से छुटकारे का यही एक है मन्त्र स्वतंत्र॥

इसकी अनुपम महिमा का शब्दों से कैसे हो वर्णन।
जो अनुभव करते हैं वे ही पा लेते हैं मुक्ति गगन॥

॥ पुष्पांजलि क्षिपेत् ॥

अर्घ्य

जल गंधाक्षत पुष्प सुचरु ले दीप धूप फल अर्घ्य धरूँ।
जिन गृह में जिनराज पंच कल्याणक पाँचों नमन करूँ॥

ॐ ह्रीं श्री जिनेन्द्र पंच कल्याणकेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जल गंधाक्षत पुष्प सुचरु ले दीप धूप फल अर्घ्य धरूँ।
जिन गृह में पाँचों परमेष्ठी के चरणों में नमन करूँ॥

ॐ ह्रीं श्री अरहंतादि पंच परमेष्ठिभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जल गंधाक्षत पुष्प सुचरु ले दीप धूप फल अर्घ्य धरूँ।
जिन गृह में जिनप्रतिमा सम्मुख सहस्रनाम को नमन करूँ॥

ॐ ह्रीं श्री भगवज्जिनसहस्रनामेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

स्वस्ति मंगल पाठ

मंगलमय भगवान वीर प्रभु मंगलमय गौतम गणधर।
मंगलमय श्री कुन्दकुन्द मुनि मंगल जैन धर्म सुखकर॥

मंगलमय श्री ऋषभदेवप्रभु मंगलमय श्री अजित जिनेश।
मंगलमय श्री सम्भव जिनवर, मंगल अभिनदन परमेश॥

मंगलमय श्री सुमति जिनोत्तम मंगल पद्मनाथ सर्वेश।
मंगलमय सुपार्श्व जिन स्वामी मंगल चन्द्रप्रभु चन्द्रेश॥

मंगलमय श्री पुष्पदंत प्रभु, मंगल शीतलनाथ सुरेश।
मंगलमय श्रेयांसनाथ जिन मंगल वासुपूज्य पूज्येश।।

मंगलमय श्री विमलनाथ विभु, मंगल अनन्तनाथ महेश।
मंगलमय श्री धर्मनाथ प्रभु, मंगल शांतिनाथ चक्रेश।।

मंगलमय श्री कुन्थुनाथ जिन मंगल श्री अरनाथ गुणेश।
मंगलमय श्री मल्लिनाथ प्रभु मंगल मुनिसुव्रत सत्येश।।

मंगलमय नमिनाथ जिनेश्वर मंगल नेमिनाथ योगेश।
मंगलमय श्री पार्श्वनाथ प्रभु, मंगल वर्धमान तीर्थेश।।

मंगलमय अरिहंत महाप्रभु, मंगल सर्व सिद्ध लोकेश।
मंगलमय आचार्य श्री जय मंगल उपाध्याय ज्ञानेश।।

मंगलमय श्री सर्व साधुगण, मंगल जिनवाणी उपदेश।
मंगलमय सीमन्धर आदिक, विद्यमान जिन बीस परमेश।।

मंगलमय त्रैलोक्य जिनालय, मंगल जिन प्रतिमा भव्येश।
मंगलमय त्रिकाल चौबीसी, मंगल समवशरण सविशेष।।

मंगल पंचमेरू जिन मन्दिर, मंगल नन्दीश्वर द्वीपेश।
मंगल सोलह कारण दशलक्षण, रत्नत्रय व्रत भव्येश।।

मंगल सहस्त्र कूट चैत्यालय, मंगल मानस्तम्भ हमेश।
मंगलमय केवलि श्रुतकेवलि, मंगल ऋद्धिधारि विद्येश।।

मंगलमय पाँचों कल्याणक, मंगल जिन शासन उद्देश।
मंगलमय निर्वाण भूमि, मंगलमय अतिशय क्षेत्र विशेष।।

सर्व सिद्धि मंगल के दाता, हरो अमंगल हे विश्वेश।
जब तक सिद्ध स्वपद ना पाऊँ, तब तक पूजूं हे ब्रह्मेश।।

।। पुष्पांजलि क्षिपेत् ।।

*

श्री नित्य नियम पूजन

जय जय देव शास्त्र गुरु तीनों, मंगलदाता प्रभु वन्दन।
पंच परम परमेष्ठी प्रभु के चरणों को मैं करूँ नमन॥
विद्यमान तीर्थंकर बीस विदेह क्षेत्र के करूँ नमन।
तीन लोक के कृत्रिम अकृत्रिम जिन चैत्यालय को वन्दन॥
परमोत्कृष्ट अनंत गुण सहित सर्व सिद्ध प्रभु को वन्दन।
वृषभादिक श्री वीर जिनेश्वर तीर्थंकर सब करूँ नमन॥
निज भावों की अष्ट द्रव्य ले सविनय नाथ करूँ पूजन।
श्रद्धा पूर्वक भक्तिभाव से करता हूँ जिनपद अर्चन॥

ॐ ह्रीं श्री सर्वाजिनचरणाग्रेषु पुष्पाञ्जलि क्षिपामि।

अनन्तानुबंधी कषाय का नाश करूँ दो यह आशीष।
मोहरूप मिथ्यात्व नष्ट कर दूँ मैं समकित जल से हे ईश॥
देव शास्त्र गुरु पाँचों परमेष्ठी प्रभु विद्यमान जिन बीस।
कृत्रिम अकृत्रिम जिनगृह वंदू, सर्व सिद्ध जिनवर चौबीस॥

ॐ ह्रीं श्री सर्वजिनचरणाग्रेषु जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

अप्रत्यख्यानावरणी कषाय का नाश करूँ मैं तत्काल।
अविरति हर अणुव्रत लूँ, समकित चंदन से चमके निज भाल॥ देव.॥

ॐ ह्रीं श्री सर्व जिन चरणाग्रेषु संसारताप विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

मैं कषाय प्रत्याख्यानावरणी हर करूँ प्रमाद अभाव।
पंच महाव्रत ले समकित अक्षत से पाऊँ शुद्ध स्वभाव॥ देव.॥

ॐ ह्रीं श्री सर्व जिन चरणाग्रेषु अक्षयपद प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

प्रभु कषाय संज्वलन नाश कर पाऊँ मैं निज में विश्राम।
समकित पुष्प खिले अन्तर में मैं अरहन्त बनूँ निष्काम॥ देव.॥

ॐ ह्रीं श्री सर्व जिन चरणाग्रेषु कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

पाप पुण्य शुभ अशुभ आस्रव का निरोध कर लूँ संवर।
समकित चरु से कर्म निर्जरा कर मैं बंध हरूँ सत्वर॥देव.॥

ॐ ह्रीं श्री सर्व जिन चरणाग्रेषु क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

राग द्वेष सबका अभाव कर नो कषाय का करूँ विनाश।
सम्यक् ज्ञान दीप से स्वामी पाऊँ केवलज्ञान प्रकाश।।
देव शास्त्र गुरु पाँचों परमेष्ठी प्रभु विद्यमान जिन बीस।
कृत्रिम अकृत्रिम जिनगृह वंदू, सर्व सिद्ध जिनवर चौबीस।।

ॐ ह्रीं श्री सर्व जिन चरणाग्रेषु मोहांधकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

ज्ञानावरणादिक आठों कर्मों का नाश करें भगवन्त।
समकित धूप सुवासित हो उर भव सागर का कर दूँ अन्त।।देव.।।

ॐ ह्रीं श्री सर्व जिन चरणाग्रेषु अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

गुणस्थान चौदहवाँ पाकर योग अभाव करूँ स्वामी।
समकित का फल महामोक्ष पद पाऊँ हे अन्तर्यामी।।देव.।।

ॐ ह्रीं श्री सर्व जिन चरणाग्रेषु महामोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

बन्ध हेतु मिथ्यात्व असंयम और प्रमाद कषाय त्रियोग।
समकित का अर्घ्य सजा अन्तर में पाऊँ पद अनर्घ्य अवियोग।।देव.।।

ॐ ह्रीं श्री सर्व जिन चरणाग्रेषु अनर्घ्य पद प्राप्तये अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

जिनवर पद पूजन करूँ नित्य नियम से नाथ।
शुद्धातम से प्रीत कर मैं भी बनूँ सनाथ।।

तीन लोक के सारे प्राणी, हैं कषाय आतप से तप्त।
इन्द्रिय विषय रोग से मूर्छित भव सागर दुख से संतप्त।।
इष्ट वियोग अनिष्ट योग से खेद खिन्न जग के प्राणी।
उनको है सम्यक्त्व परम हितकारी औषधि सुखदानी।।
सर्व दुखों की परमौषधि पीते ही होता रोग विनष्ट।
भव नाशक जिन धर्म शरण पाते ही मिट जाता भव कष्ट।।

है मिथ्यात्व असंयम और कषाय पाप की क्रिया विचित्र।
पाप क्रियाओं से निवृत्त हो तो होता सम्यक् चारित्र।।
घाति कर्म बन्धन करने वाली शुभ अशुभ क्रिया सब पाप।
महा पाप मिथ्यात्व सदा ही देता है भव-भव संताप।।
इसके नष्ट हुए बिन होता दूर असंयम कभी नहीं।
इसके सम दुखकारी जग में और पाप है कहीं नहीं।।
मुनिव्रत धारण कर ग्रैवेयक में अहमिन्द्र हुआ बहुबार।
सम्यक्दर्शन बिन भटका प्रभु पाए जग में दुःख अपार।।
क्रोधादिक कषाय अनुरंजित हो भव सागर में डूबा।
साता के चक्कर में पडकर नहीं असाता से ऊबा।।
पाप पुण्य दुःखमयी जानकर यदि मैं शुद्ध दृष्टि होता।
नष्ट विभाव भाव कर लेता यदि मैं द्रव्य दृष्टि होता।।
मिथ्यातम के गए बिना प्रभु नहीं असंयम जाता है।
जप तप व्रत पूजन अर्चन से जिय सम्यक्त्व न पाता है।।
इसीलिए मैं शरण आपकी आया हूँ जिनदेव महान।
सम्यग्दर्शन मुझे प्राप्त हो, पाऊँ स्व-पर भेद विज्ञान।।
नित्य नियम पूजन करके प्रभु निजस्वरूप का ज्ञान करूँ।
पर्यायों से दृष्टि हटा, बन द्रव्य दृष्टि निज ध्यान धरूँ।।

ॐ ह्रीं श्री सर्वजिनचरणाग्रेषु पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

नित्य नियम पूजन करूँ जिनवर पद उर धार।
आत्म ज्ञान की शक्ति से हो जाऊँ भव पार।।

।। इत्याशीर्वादः परिपुष्पांजलिं क्षिपेत् ।।

जाप्य मन्त्र — ॐ ह्रीं सर्व जिनेन्द्रेभ्यो नमः ।।

*

श्री देव शास्त्र गुरु पूजन

वीतराग अरिहंत देव के पावन चरणों में वन्दन।
द्वादशांग श्रुत श्री जिनवाणी जग कल्याणी का अर्चन।।
द्रव्य भाव संयममय मुनिवर श्री गुरु को मैं करूँ नमन।
देव शास्त्र गुरु के चरणों का बारम्बार करूँ पूजन।।

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरु समूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट् (आह्वाननम्)
ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरु समूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः (स्थानम्)
ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरु समूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् (सन्निधिकरणम्)

आवरण ज्ञान पर मेरे है, हूँ जन्म मरण से सदा दुखी।
जब तक मिथ्यात्व हृदय में है यह चेतन होगा नही सुखी।।
ज्ञानावरणी के नाश हेतु चरणों में जल करता अर्पण।
देव शास्त्र गुरु के चरणों का बारम्बार करूँ पूजन।।

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यो ज्ञानावरणकर्म विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

दर्शन पर जब तक छाया है संसार ताप तब तक ही है।
जब तक तत्त्वों का ज्ञान नहीं मिथ्यात्व पाप तब तक ही है।
सम्यक् श्रद्धा के चंदन से मिट जायेगा दर्शनावरण।
देव शास्त्र गुरु के चरणों का बारम्बार करूँ पूजन।।

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यो दर्शनावरणकर्म विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

निज स्वभाव चैतन्य प्राप्ति हित जागे उर में अन्तर बल।
अव्याबाधित सुख का घाता वेदनीय है कर्म प्रबल।।
अक्षत चरण चढाकर प्रभुवर वेदनीय का करूँ दमन।
देव शास्त्र गुरु के चरणों का बारम्बार करूँ पूजन।।

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यो वेदनीयकर्म विनाशनाय अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

मोहनीय के कारण यह चेतन अनादि से भटक रहा।
निज स्वभाव तज पर द्रव्यों की ममता में ही अटक रहा।
भेदज्ञान की खड्‌ग उठाकर मोहनीय का करूँ हनन।
देव शास्त्र गुरु के चरणों का बारम्बार करूँ पूजन।।

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यो मोहनीयकर्म विनाशनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

आयु कर्म के बंध उदय में सदा उलझता आया हूँ।
चारो गतियों में डोला हूँ निज को जान न पाया हूँ॥
अजर अमर अविनाशी पद हित आयु कर्म का करूँ शमन।
देव शास्त्र गुरु के चरणों का बारम्बार करूँ पूजन॥
ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यो आयुकर्म विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।
नाम कर्म के कारण मैंने जैसा भी शरीर पाया।
उस शरीर को अपना समझा निज चेतन को विसराया॥
ज्ञानदीप के चिर प्रकाश से नामकर्म का करूँ दमन।
देव शास्त्र गुरु के चरणों का बारम्बार करूँ पूजन॥
ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यो नाम कर्म विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।
उच्च-नीच कुल मिला बहुत पर निज कुल जान नहीं पाया।
शुद्ध बुद्ध चैतन्य निरंजन सिद्ध स्वरूप न उर भाया॥
गोत्र कर्म का धूम्र उडाऊँ निज परिणति में करूँ रमण।
देव शास्त्र गुरु के चरणों का बारम्बार करूँ पूजन॥
ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यो गोत्र कर्म विनाशनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।
दान लाभ भोगोपभोग बल मिलने में जो बाधक है।
अन्तराय के सर्वनाश का आत्मज्ञान ही साधक है॥
दर्शन ज्ञान अनन्त वीर्य सुख पाऊँ निज आराधक बन।
देव शास्त्र गुरु के चरणों का बारम्बार करूँ पूजन॥
ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यो अंतराय कर्म विनाशनाय फलं निर्वपामीति स्वाहा।
कर्मोदय में मोह रोष से करता है शुभ अशुभ विभाव।
पर में इष्ट अनिष्ट कल्पना रागद्वेष विकारी भाव॥
भाव कर्म करता जाता है जीव भूल निज आत्मस्वभाव।
द्रव्य कर्म बंधते हैं तत्क्षण शाश्वत सुख का करे अभाव।
चार घातिया चउ अघातिया अष्ट कर्म का करूँ हनन।
देव शास्त्र गुरु के चरणों का बारम्बार करूँ पूजन॥
ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यो संपूर्ण अष्टकर्म विनाशनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

हे जगबन्धु जिनेश्वर तुमको अब तक कभी नहीं ध्याया।
श्री जिनवाणी बहुत सुनी पर कभी नहीं श्रद्धा लाया॥
परम वीतरागी सन्तों का भी उपदेश न मन भाया।
नरक तिर्यंच देव नर गति में भ्रमण किया बहु दुःख पाया॥
पाप पुण्य में लीन हुआ निज शुद्ध भाव को विसराया।
इसीलिये प्रभुवर अनादि से भव अटवी में भरमाया॥
आज तुम्हारे दर्शन कर प्रभु मैने निज दर्शन पाया।
परम शुद्ध चैतन्य ज्ञानघन का बहुमान हृदय आया॥
दो आशीष मुझे हे जिनवर जिनवाणी गुरुदेव महान।
मोह महातम शीघ्र नष्ट हो जाये करूँ आत्म कल्याण॥
स्व पर विवेक जगे अन्तर में दो सम्यक् श्रद्धा का दान।
क्षायिक हो उपशम हो हे प्रभु क्षयोपशम सद् दर्शन ज्ञान॥
सात तत्व पर श्रद्धा करके देव शास्त्र गुरु को मानूँ।
निज पर भेद जानकर केवल निज में ही प्रतीति ठानूँ॥
पर द्रव्यों से मैं ममत्व तज आत्म द्रव्य को पहचानूँ।
आत्म द्रव्य को इस शरीर से पृथक भिन्न निर्मल जानूँ॥
समकित रवि की किरणें मेरे उर अन्तर में करे प्रकाश।
सम्यक् ज्ञान प्राप्त कर स्वामी पर भावों का करूँ विनाश॥
सम्यक् चारित को धारण कर निज स्वरूप का करूँ विकास।
रत्नत्रय के अवलम्बन से मिले मुक्ति निर्वाण निवास॥
जय जय जय अरहन्त देव जय, जिनवाणी जग कल्याणी।
जय निर्ग्रन्थ महान सुगुरु जय जय शाश्वत शिवसुखदानी॥

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यो अनर्घ्यपद प्राप्तये पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा) देव शास्त्र गुरु के वचन भाव सहित उरधार।
मन वच तन जो पूजते वे होते भवपार॥

॥ इत्याशीर्वादः परिपुष्पांजलिं क्षिपेत्॥

जाप्यमंत्र — ॐ ह्रीं श्री देव शास्त्र गुरुभ्यो नमः।

श्री देव-शास्त्र-गुरु पूजा

शुद्धब्रह्म परमात्मा, शब्दब्रह्म जिनवाणि।
शुद्धातम साधकदशा, नमों जोड़ जुगपाणि॥

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुसमूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट् इति आह्वाननम्।

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुसमूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः इति स्थापनम्।

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुसमूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् इति सन्निधिकरणम्।

आशा की प्यास बुझाने को, अबतक मृगतृष्णा में भटका।
जल समझ विषय–विष भोगों को, उनकी ममता में था अटका॥
लख सौम्यदृष्टि तेरी प्रभुवर, समता–रस पीने आया हूँ।
इस जल ने प्यास बुझाई ना, इसको लौटाने लाया हूँ॥

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यो जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

क्रोधानल से जब जला हृदय, चन्दन ने कोई न काम किया।
तन को तो शान्त किया इसने, मन को न मगर आराम दिया॥
संसार–ताप से तप्त हृदय, सन्ताप मिटाने आया हूँ।
चरणों में चन्दन अर्पण कर, शीतलता पाने आया हूँ॥

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यो संसारताप विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

अभिमान किया अबतक जड़ पर, अक्षयनिधि को ना पहचाना।
मैं जड़ का हूँ जड़ मेरा है, यह सोच बना था मस्ताना॥
क्षत में विश्वास किया अब तक, अक्षत को प्रभुवर ना जाना।
अभिमान की आन मिटाने को, अक्षयनिधि तुमको पहिचाना॥

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यो अक्षयपद प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

दिन–रात वासना में रहकर, मेरे मन ने प्रभु सुख माना।
पुरुषत्व गंवाया पर प्रभुवर, उसके छल को ना पहिचाना॥

माया ने डाला जाल प्रथम, कामुकता ने फिर बाँध लिया।
उसका प्रमाण यह पुष्प–बाण, लाकर के प्रभुवर भेंट किया।।

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यो कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

पर पुद्गल का भक्षण करके, यह भूख मिटानी चाही थी।
इस नागिन से बचने को प्रभु, हर चीज बनाकर खाई थी।।
मिष्टान्न अनेक बनाये थे, दिन–रात भखे न मिटी प्रभुवर।
अब संयम–भाव जगाने को, लाया हूँ ये सब थाली भर।।

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यो क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पहले अज्ञान मिटाने को, दीपक था जग में उजियाला।
उसने न हुआ कुछ तब युग ने, बिजली का बल्ब जला डाला।।
प्रभु भेद–ज्ञान की आँख न थी, क्या कर सकती थी यह ज्वाला।
यह ज्ञान है कि अज्ञान कहो, तुमको भी दीप दिखा डाला।।

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यो मोहांधकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

शुभ कर्म कमाऊँ सुख होगा, अब तक मैंने यह माना था।
पाप कर्म को त्याग पुण्य को, चाह रहा अपनाना था।।
किन्तु समझ कर शत्रु कर्म को, आज जलाने आया हूँ।
लेकर दशांग यह धूप, कर्म की धूम उडाने आया हूँ।।

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यो अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

भोगों को अमृतफल जाना, विषयों में निश–दिन मस्त रहा।
उनके संग्रह में हे प्रभुवर! मैं व्यस्त–त्रस्त–अभ्यस्त रहा।।
शुद्धात्मप्रभा जो अनुपम फल, मैं उसे खोजने आया हूँ।
प्रभु सरस सुवासित ये जड़ फल, मैं तुम्हें चढाने लाया हूँ।।

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यो मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

बहुमूल्य जगत का वैभव यह, क्या हमको सुखी बना सकता,
अरे पूर्णता पाने में, इसकी क्या है आवश्यकता।।
मैं स्वयं पूर्ण हूँ अपने में, प्रभु है अनर्घ्य मेरी माया।
बहुमूल्य द्रव्यमय अर्घ्य लिये, अर्पण के हेतु चला आया।।

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यो अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

समयसार जिनदेव हैं, जिन–प्रवचन जिनवाणी।
नियमसार निर्ग्रन्थ गुरु, करें कर्म की हानि।।

(वीरछन्द)

हे वीतराग सर्वज्ञ प्रभो, तुमको ना अब तक पहिचाना।
अतएव पड़ रहे हैं प्रभुवर, चौरासी के चक्कर खाना।।
करुणानिधि तुमको समझ नाथ, भगवान भरोसे पडा रहा।
भरपूर सुखी कर दोगे तुम, यह सोचे सन्मुख खडा रहा।।
तुम वीतराग हो लीन स्वयं में, कभी न मैंने यह जाना।
तुम हो निरीह जग से कृत-कृत, इतना ना मैंने पहिचाना।।
प्रभु वीतराग की वाणी में, जैसा जो तत्त्व दिखाया है।
जो होना है सो निश्चित है, केवलज्ञानी ने गाया है।।
उस पर तो श्रद्धा ला न सका, परिवर्तन का अभिमान किया।
बनकर पर का कर्ता अब तक, सत् का न प्रभो सम्मान किया।।
भगवान तुम्हारी वाणी में, जैसा जो तत्त्व दिखाया है।
स्याद्वाद-नय, अनेकान्त-मय, समयसार समझाया है।।
उस पर तो ध्यान दिया न प्रभो, विकथा में समय गंवाया है।
शुद्धात्म-रुचि न हुई मन में, ना मन को उधर लगाया है।।
मैं समझ न पाया था अब तक, जिनवाणी किसको कहते हैं।
प्रभु वीतराग की वाणी में, कैसे क्या तत्त्व निकलते हैं।।

राग धर्ममय धर्म रागमय, अबतक ऐसा जाना था।
शुभ-कर्म कमाते सुख होगा, बस अब तक ऐसा माना था॥
पर आज समझ में आया है, कि वीतरागता धर्म अहा।
राग-भाव में धर्म मानना, जिनमत में मिथ्यात्व कहा॥
वीतरागता की पोषक ही, जिनवाणी कहलाती है।
यह है मुक्ति का मार्ग निरन्तर, हम को जो दिखलाती है॥
उस वाणी के अन्तर्तम को, जिन गुरुओं ने पहिचाना है।
उन गुरुवर्यों के चरणों में, मस्तक बस हमें झुकाना है॥
दिन-रात आत्मा का चिन्तन, मृदु संभाषण में वही कथन।
निर्वस्त्र दिगम्बर काया से भी, प्रकट हो रहा अन्तर्मन॥
निर्ग्रन्थ दिगम्बर सद्ज्ञानी, स्वातम में सदा विचरते जो।
ज्ञानी-ध्यानी-समरससानी, द्वादश विधि तप नित करते जो॥
चलते-फिरते सिद्धों से गुरु, चरणों में शीश झुकाते हैं।
हम चलें आपके कदमों पर, नित यही भावना भाते हैं॥
हो नमस्कार शुद्धातम को, हो नमस्कार जिनवर वाणी।
हो नमस्कार उन गुरुओं को, जिनकी चर्चा समरससानी॥

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यो अनर्घ्यपद प्राप्तये महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥

(दोहा) दर्शन दाता देव हैं, आगम सम्यग्ज्ञान।
गुरु चारित्र की खानि हैं, मैं वंदो धरि ध्यान॥

(इति पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

जाप्यमंत्र — ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो नमः।

पर्याय की क्रमबद्धता की स्वीकृति में पुरुषार्थ का लोप नहीं वरन पर्याय के प्रति उदासीनता होने पर अक्षय चैतन्य की अनुभूति का सशक्त पुरुषार्थ जागृत होता है।

श्री देव-शास्त्र-गुरु पूजा

(श्री जुगलकिशोरजी 'युगल' कृत)

केवल रवि-किरणों से जिसका, संपूर्ण प्रकाशित है अंतर।
उस श्री जिनवाणी में होता, तत्त्वों का सुंदरतम दर्शन॥
सद्दर्शन बोध चरण पथ पर, अविरल जो बढते हैं मुनिगण।
उन देव परम आगम गुरुको, शत शत वंदन, शत शत वंदन॥

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुसमूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट् इति आह्वाननम्।
ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुसमूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः इति स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुसमूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् इति सन्निधिकरणम्।

इन्द्रिय के भोग मधुर विष सम, लावण्यमयी कंचन काया।
यह सब कुछ जड़ की क्रीड़ा है, मैं अब तक जान नहीं पाया॥
मैं भूल स्वयं निज वैभव को, पर ममता में अटकाया हूँ।
अब निर्मल सम्यक् नीर लिये, मिथ्यामल धोने आया हूँ॥

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यः जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

जड चेतन की सब परिणति प्रभु! अपने अपने में होती है।
अनुकूल कहें, प्रतिकूल कहें, यह झूठी मनकी वृत्ति है॥
प्रतिकूल संयोगों में क्रोधित, होकर संसार बढाया है।
संतप्त हृदय प्रभु! चंदन सम, शीतलता पाने आया है॥

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यः संसारताप विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

उज्ज्वल हूँ कुंद धवल हूँ प्रभु! पर से न लगा हूँ किंचित् भी।
फिर भी अनुकूल लगें उन पर, करता अभिमान निरंतर ही॥
जड़ पर झुक झुक जाता चेतन की, मार्दव की खंडित काया।
निज शाश्वत अक्षतनिधि पाने, अब दास चरण रज में आया॥

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यो अक्षयपद प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

यह पुष्प सुकोमल कितना है, तनमें माया कुछ शेष नहीं।
निज अंतर का प्रभु! भेद कहूँ, उसमें ऋजुता का लेश नहीं।।
चिंतन कुछ, फिर संभाषण कुछ, वृत्ति कुछ की कुछ होती है।
स्थिरता निज में प्रभु पाऊँ जो, अंतर का कालुष धोती है।।

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यः कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

अब तक अगणित जड़ द्रव्यों से, प्रभु! भूख न मेरी शांत हुई।
तृष्णा की खाई खूब भरी, पर रिक्त रही वह रिक्त रही।।
युग–युग से इच्छा सागर में, प्रभु! गोते खाता आया हूँ।
चरणों में व्यंजन अर्पित कर, अनुपम रस पीने आया हूँ।।

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यः क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मेरे चैतन्य सदन में प्रभु! चिर व्याप्त भयंकर अंधियारा।
श्रुत-दीप बुझा है करुणानिधि! बीती नहीं कष्टों की कारा।।
अतएव प्रभो! यह ज्ञान-प्रतीक, समर्पित करने आया हूँ।
तेरी अंतर लौ से निज अंतर, दीप जलाने आया हूँ।।

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यो मोहांधकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

जड़ कर्म घुमाता है मुझको, यह मिथ्या भ्रांति रही मेरी।
मैं रागी-द्वेषी हो लेता, जब परिणति होती है जड़ केरी।।
यों भाव-करम या भाव-मरण, सदियों से करता आया हूँ।
निज अनुपम गंध अनल से प्रभु, पर गंध जलाने आया हूँ।।

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यः अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

जग में जिसको निज कहता मैं, वह छोड़ मुझे चल देता है।
मैं आकुल व्याकुल हो लेता, व्याकुल का फल व्याकुलता है।।
मैं शांत निराकुल चेतन हूँ, है मुक्तिरमा सहचर मेरी।
यह मोह तड़क कर टूट पड़े, प्रभु! सार्थक फल पूजा तेरी।।

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यो मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

क्षण भर निज-रसको पी चेतन, मिथ्या मल को धो देता है।
काषायिक भाव विनष्ट किये, निज आनंद अमृत पीता है।।

अनुपम सुख तब विलसित होता, केवल-रवि जगमग करता है।
दर्शन बल पूर्ण प्रकट होता, यह ही अरहंत अवस्था है।।
यह अर्घ्य समर्पण करके प्रभु! निज गुणका अर्घ्य बनाऊँगा।
और निश्चित तेरे सदृश प्रभु! अरहन्त अवस्था पाऊँगा।।

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यो अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(ताटंक)

भव वन में जी भर घूम चुका, कण कण को जी भर भर देखा।
मृगसम मृगतृष्णा के पीछे, मुझ को न मिली सुख की रेखा।।

(बारह भावना)

झूठे जग के सपने सारे, झूठी मन की सब आशायें।
तन जीवन यौवन अस्थिर है, क्षणभंगुर पल में मुरझायें।।
सम्राट महाबल सेनानी, उस क्षण को टाल सकेगा क्या?
अशरण मृत काया में हर्षित, निज जीवन डाल सकेगा क्या?
संसार महा दुखसागर के, प्रभु! दुखमय सुख—आभासों में।
मुझको न मिला सुख क्षणभर भी, कंचन कामिनि प्रासादों में।।
मैं एकाकी एकत्व लिये, एकत्व लिये सब ही आते।
तन धन को साथी समझा था, पर ये भी छोड़ चले जाते।।
मेरे न हुए ये, में इनसे, अति भिन्न अखंड निराला हूँ।
निज में पर से अन्यत्व लिये, निज समरस पीने वाला हूँ।।
जिसके श्रृंगारों में मेरा, यह महंगा जीवन घुल जाता।
अत्यंत अशुचि जड़ काया से, इस चेतन का कैसा नाता।।
दिनरात शुभाशुभ भावों से, मेरा व्यापार चला करता।
मानस वाणी और काया से, आस्रव का द्वार खुला रहता।।
शुभ और अशुभ की ज्वाला से, झुलसा है मेरा अंतस्तल।
शीतल समकित किरणें फूटें, संवर से जागे अंतर्बल।।

फिर तप की शोधक वह्नि जगे, कर्मों की कड़ियां टूट पड़ें।
सर्वांग निजात्म प्रदेशों से, अमृत के निर्झर फूट पड़ें॥
हम छोड़ चले यह लोक तभी, लोकांत विराजे क्षण में जा।
निज लोक हमारा वासा हो, शोकांत बनें फिर हमको क्या॥
जागे मम दुर्लभ बोधि प्रभो! दुर्नयतम सत्वर टल जाये।
बस ज्ञाता–दृष्टा रह जाऊँ, मद–मत्सर–मोह विनश जाये॥
चिर रक्षक धर्म हमारा हो, हो धर्म हमारा चिर साथी।
जग में न हमारा कोई था, हम भी न रहें जग के साथी॥

(देव स्तवन)

चरणों में आया हूँ प्रभुवर! शीतलता मुझको मिल जाये।
मुरझाई ज्ञान लता मेरी, निज अंतर्बल से खिल जाये॥
सोचा करता हूँ भोगों से, बुझ जायेगी इच्छा ज्वाला।
परिणाम निकलता है लेकिन, मानों पावक में घी डाला॥
तेरे चरणों की पूजा से, इन्द्रिय सुख को ही अभिलाषा।
अब तक न समझ ही पाया प्रभु! सच्चे सुख की भी परिभाषा॥
तुम तो अविकारी हो प्रभुवर! जग में रहते जग से न्यारे।
अतएव झुके तव चरणों में, जगके माणिक मोती सारे॥

(शास्त्र-स्तवन)

स्याद्वादमयी तेरी वाणी, शुभनय के झरने झरते हैं।
उस पावन नौका पर लाखों, प्राणी भववारिधि तिरते हैं॥

(गुरु-स्तवन)

हे गुरुवर! शाश्वत सुख दर्शक, यह नग्न स्वरूप तुम्हारा है।
जग की नश्वरता का सच्चा, दिग्दर्शन करनेवाला है॥
जब जग विषयों में रच पच कर, गाफिल निद्रा में सोता हो।
अथवा वह शिव के निष्कंटक, पथ में विषकंटक बोता हो॥
हो अर्ध निशा का सन्नाटा, वन में वनचारी चरते हों।
तब शांत निराकुल मानस तुम, तत्त्वों का चिंतन करते हो॥

करते तप शैल नदी-तट पर, तरुतल वर्षा की झडियों में।
समता-रस-पान किया करते, सुख-दुख दोनों की घडियों में।।
अंतरज्वाला हरती वाणी, मानों झड़ती हों फुलझडियाँ।
भवबंधन तड़ तड़ टूट पडें, खिल जायें अंतर की कलियाँ।।
तुम सा दानी क्या कोई हो, जगको देदीं जग की निधियाँ।
दिन रात लुटाया करते हो, सम शम की अविनश्वर मणियाँ।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो अनर्घ्यपद प्राप्तये महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

हे निर्मल देव! तुम्हें प्रणाम, हे ज्ञानदीप आगम! प्रणाम।
हे शांति त्याग के मूर्तिमान, शिव-पथ-पंथी गुरुवर! प्रणाम।।

(इत्याशीर्वादः परिपुष्पांजलिं क्षिपेत्)

जाप्यमंत्र — ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो नमः।

*

श्री देव-शास्त्र-गुरु पूजन

(दोहा)

देव-शास्त्र-गुरुवर अहो, मम स्वरूप दर्शाय।
किया परम उपकार मैं नमन करूँ हर्षाय।।
जब मैं आता आप ढिंग, निज स्मरण सु आय।
निज प्रभुता मुझ में प्रभो, प्रत्यक्ष देय दिखाय।।

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुसमूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट् इति आह्वाननम्।
ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुसमूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः इति स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुसमूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् इति सन्निधिकरणम्।

जब से स्व सन्मुख दृष्टि हुई, अविनाशी ज्ञायक रूप लखा।
शाश्वत अस्तित्व स्वयं का लखकर, जन्म मरण भय दूर हुआ।।
श्री देव शास्त्र गुरुवर सदैव मम परिणति में आदर्श रहो।
ज्ञायक में ही स्थिरता हो, निज भाव सदा मंगलमय हो।।

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यः जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

निज परम तत्त्व जब से देखा, अद्‌भुत शीतलता पाई है।
आकुलतामय संतप्त परिणति, सहज नहीं उपजाई है।।
श्री देव शास्त्र गुरुवर सदैव मम परिणति में आदर्श रहो।
ज्ञायक में ही स्थिरता हो, निज भाव सदा मंगलमय हो।।

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यः संसारताप विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

निज अक्षय प्रभु के दर्शन से ही, अक्षय सुख विकसाया है।
क्षत् भावों में एकत्वपने का, सर्व विमोह पलाया है।। श्री देवशास्त्र..

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यः अक्षयपद प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

निष्काम परम ज्ञायक प्रभुवर, जब से दृष्टि में आया है।
विभु ब्रह्मचर्य रस प्रकट हुआ, दुर्दान्त काम विनशाया है।। श्री देवशास्त्र..

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यः कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

हुआ निमग्न तृप्ति सागर में तृष्णा ज्वाला बुझाई है।
क्षुधा आदि सब दोष नशे सहज तृप्ति उपजाई है।। श्री देवशास्त्र..

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यः क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

निज ज्ञान भानु का उदय हुआ, आलोक सहज ही छाया है।
चिर मोह महातम हे स्वामी! इस क्षण ही सहज विलाया है।। श्री देव...

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यः मोहांधकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

द्रव्य भाव नोकर्म शून्य, चैतन्य प्रभु जब से देखा।
शुद्ध परिणति प्रकट हुई, मिटती परभावों की रेखा।। श्री देवशास्त्र..

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यः अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

अहो पूर्ण निज वैभव देखा, नहीं कामना शेष रही।
निर्वांछक हो गया सहज में, निज में ही अब मुक्ति दिखी।। श्री देवशास्त्र..

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यः मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

निज से उत्तम दिखे न कुछ भी, पाई निज अनर्घ माया।
निज में ही अब हुआ समर्पण, ज्ञानानंद प्रकट पाया।। श्री देवशास्त्र..

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यः अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

ज्ञान मात्र परमात्मा, परम प्रसिद्ध कराय।
धन्य आज मैं हो गया, निज स्वरूप को पाय।।

(हरिगीतिका)

चैतन्य में ही मग्न हो, चैतन्य दरशाते अहो।
निर्दोष श्री सर्वज्ञ प्रभुवर, जगत्साक्षी हो विभो।।

सच्चे प्रणेता धर्म के, शिवमार्ग प्रकटाया प्रभो,
कल्याण वांछक भविजनों के आप ही आदर्श हो।।

शिवमार्ग पाया आपसे भवि पा रहे अरु पायेंगे।
स्वाराधना से आप सम ही हुए हो रहे होयेंगे।

तव दिव्य ध्वनि में दिव्य आत्मिक भाव उद्घोषित हुए।
गणधर गुरु आम्नाय में शुभ शास्त्र तब निर्मित हुए।

निर्ग्रंथ गुरु के ग्रंथ ये नित प्रेरणायें दे रहे।
निज भाव अरु परभाव का शुभ भेदज्ञान जगा रहे।।

इस दुषम भीषण काल में जब देव-गुरु का हो विरह।
तब मात सम उपकार करते, शास्त्र ही आधार है।।

जग से उदास रहें स्वयं में वास जो नित ही करें।
स्वानुभवमय सहज जीवन, मूल गुण परिपूर्ण हैं।।

नाम लेते ही जिन्हों का हर्षमय रोमांच हो।
संसार भोगों की व्यथा, मिटती परम आनंद हो।।

परभाव सब निस्सार दिखते, मात्र दर्शन ही किये।
निज भाव की महिमा जगे, जिनके सहज उपदेश से।।

उन देव शास्त्र गुरु प्रति, आता सहज बहुमान है।
आराध्य यद्यपि एक ज्ञायक भाव निश्चय ज्ञान है।।

प्रभु ! अर्चना के काल में भी भावना ये ही रहे।
धन्य होगी वह घडी जब परिणति निज में रहे।।

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यः अनर्घ्यपद प्राप्तये जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा) **अहो कहा तक मैं कहूँ, महिमा अपरंपार।**
निज महिमा में मगन हो पाऊँ पद अविकार।।

(इत्याशीर्वादः परिपुष्पांजलि क्षिपेत्)

जाप्यमंत्र : ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो नमः।

✻

श्री वीतराग पूजन

(दोहा)

शुद्धातम में मगन हो, परमातम पद पाय।
भविजन को शुद्धातमा, उपादेय दरशाय।।
जाय बसे शिव लोक में, अहो अहो जिनराज।
वीतराग सर्वज्ञ प्रभो, आयो पूजन काज।।

ॐ ह्रीं श्री वीतराग देव ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं।

ॐ ह्रीं श्री वीतराग देव ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं।

ॐ ह्रीं श्री वीतराग देव ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्।

ज्ञानानुभूति ही परमामृत है, ज्ञानमयी मेरा काया।
है परम पारिणामिक निष्क्रिय, जिसमें कुछ स्वांग न दिखलाया।।
मैं देख स्वयं के वैभव को, प्रभुवर अति ही हर्षाया हूँ।
अपनी स्वाभाविक निर्मलता, अपने अंतर में पाया हूँ।।

थिर रह न सका उपयोग प्रभो, बहुमान आपका आया है।
समतामय निर्मल जल ही प्रभु, पूजन के योग्य सुहाया है।।

ॐ ह्रीं श्री वीतरागदेवाय ! जन्म-जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।।

है सहज अकर्त्ता ज्ञायक प्रभु, ध्रुव रूप सदा ही रहता है।
सागर की लहरों सम जिसमें, परिणमन सु बाहर होता है॥
हे शान्ति सिन्धु ! अब बोधमयी, अद्भुत तृप्ति उपजाई है।
अह चाह दाह प्रभु शमित हुई, शीतलता निज में पाई है॥
विभु ! अशरण जग में शरण मिले, बहुमान आपका आया है।
अमल भावमय चन्दन ही, पूजन के योग्य सुहाया है॥

ॐ ह्रीं श्री वीतरागदेवाय ! संसारताप विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

अब भान हुआ अक्षय पद का, क्षत् का अभिमान पलाया है।
प्रभु निष्कलंक निर्मल ज्ञायक, अविचल अखण्ड दिखलाया है॥
जहाँ क्षायिक भाव भी भिन्न दिखे, फिर अन्य भाव की कौन कथा।
अक्षुण्ण आनन्द निज में विलसे, निःशेष हुई अब सर्वव्यथा॥
अक्षय स्वरूप दातार नाथ, बहुमान आपका आया है।
निरपेक्ष भावमय अक्षत ही, पूजन के योग्य सुहाया है॥

ॐ ह्रीं श्री वीतरागदेवाय ! अक्षयपद प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा॥

परम ब्रह्म की अनुभूतिमय, ब्रह्मचर्य रस प्रगटाया।
भोगों की अब मिटी वासना, दुर्विकल्प भी नहीं आया॥
भोगों के तो नाम मात्र से, भी कम्पित मन हो जाता।
मानो आयुध से लगते हैं, तब त्राण स्वयं में ही पाता॥
हे कामजयी निज में रम जाऊँ, यही भावना मन आनी।
श्रद्धा सुमन समर्पित जिनवर, काम बुद्धि सब विसरानी॥

ॐ ह्रीं श्री वीतराग देवाय ! कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

अतीन्द्रिय निज आतम रस पीकर, तृप्त हुए त्रिभुवन स्वामी।
निज में ही सम्यक् तृप्ति की विधि, तुम से सीखी जगनामी॥
अब कर्त्ता भोक्ता बुद्धि छोड़, ज्ञाता रह निज-रस पान करूँ।
इन्द्रिय विषयों की चाह मिटी, सर्वांग सहज आनंदित हूँ॥

निज में ही ज्ञानानन्द मिला, बहुमान आपका आया है।
परम तृप्तिमय अकृत बोध ही, पूजन योग्य सुहाया है।।

ॐ ह्रीं श्री वीतरागदेवाय ! क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मोहान्धकार में भटका था, सम्यक् प्रकाश निज में पाया।
प्रतिभासित होता हुआ स्व ज्ञायक, सहज स्वानुभव में आया।।
अतीन्द्रिय सहज, निरालम्बी प्रभु, सम्यग्ज्ञान ज्योति प्रगटी।
चिर की मोह अंधेरी जिनवर, तुम समीप क्षण में विघटी।।
अस्थिरता जन्य दोष भगवन, बहुमान आपका आया है।
अविनाशी केवलज्ञान जगे, प्रभु ज्ञान प्रदीप जलाया है।।

ॐ ह्रीं श्री वीतरागदेवाय ! मोहांधकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।।

निष्क्रिय निष्कर्म परम ज्ञायक, ध्रुव ध्येय स्वरूप अहो पाया।
जब ध्यान अग्नि प्रज्वलित हुई, विघटी पर परिणति की माया।।
जागी प्रतीति अब स्वयं सिद्ध, भव भ्रमण भ्रांति सब दूर हुई।
असंयुक्त निर्बन्ध सुनिर्मल, धर्म परिणति प्रकट हुई।।
अस्थिरता जन्म विकार मिटे, मैं शरण आपकी हूँ आया।
बहुमान भावमय धूप स्वाहा, निष्कर्म तत्त्व मैंने पाया।।

ॐ ह्रीं श्री वीतरागदेवाय ! अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

है परिपूर्ण सहज ही आतम, कमी नहीं कुछ दिखलावे।
गुण अनन्त सम्पन्न प्रभु, जिसकी दृष्टि में आ जावे।।
होय अयाची लक्ष्मीपति, फिर वांछा ही नहीं उपजावे।
स्वात्मोपलब्धिमय मुक्ति दशा का सत्पुरुषार्थ सु प्रगटावे।।
अफल दृष्टि प्रगटी प्रभुवर, बहुमान आपका आया है।
निष्काम भावमय पूजन का, विभु परम भाव फल पाया है।।

ॐ ह्रीं श्री वीतरागदेवाय ! मोक्षफल प्राप्तये फलम् निर्वपामीति स्वाहा।

निज अविचल अनर्घ्य पद पाया, सहज प्रमोद हुआ भारी।
ले भावादर्श अर्चना करता, निज अनर्घ्य वैभव धारी।।

चक्री इन्द्रादिक के वैभव भी, नहीं आकर्षित कर सकते।
अखिल विश्व में रम्य भोग भी, मोह नहीं उपजा सकते॥
निजानन्द में तृप्तिमय ही, होवे काल अनन्त प्रभो।
ध्रुव अनुपम शिव पदवी प्रगटे, निश्चय ही भगवन्त अहो॥

ॐ ह्रीं श्री वीतराग देवाय! अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥

जयमाला

(छन्द – चामर तर्ज- मैं हूँ पूर्ण ज्ञायक...)

प्रभो आपने एक, ज्ञायक बताया।
तिहूँ लोक में नाथ, अनुपम जताया॥ ॥टेक॥
यही रूप मेरा, मुझे आज भाया।
महानन्द मैंने, स्वयं में ही पाया॥
भव-भव भटकते, बहुत काल बीता।
रहा आज तक मोह मदिरा ही पीता॥
फिर ढूंढता सुख विषयों के मांहीं।
मिली किन्तु उसमें असह्य वेदना ही॥
महा भाग्य से आपको, देव पाया।
तिहूँ लोक में नाथ, अनुपम जताया॥
कहाँ तक कहूँ नाथ, महिमा तुम्हारी।
निधि आत्मा की सु, दिखलाई भारी॥
निधि प्राप्ति की प्रभु, सहज विधि बताई।
अनादि की पामरता, बुद्धि पलाई॥
परम भाव मुझको, सहज ही दिखाया।
तिहूँ लोक में नाथ, अनुपम जताया॥
विस्मय से प्रभुवर, था तुमको निरखता।
महामूढ़ दुखिया, स्वयं को समझता॥
स्वयं ही प्रभु हूँ, दिखे आज मुझको।
महाहर्ष मानो, मिला मोक्ष ही हो॥

मैं चिन्मात्र ज्ञायक हूँ, अनुभव में आया।
तिहूँ लोक में नाथ, अनुपम जताया।।
अस्थिरता जन्य प्रभो, दोष भारी।
खटकती है रागादि, परिणति विकारी।।
विश्वास है शीघ्र, ये भी मिटेगी।
स्वभाव के सन्मुख, यह कैसे टिकेगी।।
नित्य निरन्जन का, अवलम्ब पाया।
तिहूँ लोक में नाथ, अनुपम जताया।।
दृष्टि हुई आप सम, ही प्रभो जब।
परिणति भी होगी, तुम्हारे ही सम तब।।
नहीं मुझको चिन्ता, मैं निर्दोष ज्ञायक।
नहीं पर से सम्बन्ध, मैं ही ज्ञेय ज्ञायक।।
हुआ दुर्विकल्पों का, जिनवर सफाया।
तिहूँ लोक में नाथ, अनुपम जताया।।
सर्वांग सुखमय, स्वयं सिद्ध निर्मल।
शक्ति अनन्तोंमयी, एक अविचल।।
बिन्मूर्ति चिन्मूर्ति, भगवान आत्मा,
तिहूँ जग में नमनीय, शाश्वत चिदात्मा।।
हो अद्वैत वन्दन, प्रभो हर्ष छाया।
तिहूँ लोक में नाथ, अनुपम जताया।।

ॐ ह्रीं श्री वीतरागदेवाय! अनर्घ्यपद प्राप्तये जयमाला अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

आपहि ज्ञायक देव हैं, आप आपका ज्ञेय।
अखिल विश्व में आप ही, ध्येय ज्ञेय श्रद्धेय।।

।। इत्याशीर्वादः पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि ।।

जाप्यमंत्र : ॐ ह्रीं श्री वीतरागीदेवाय नमः।

*

श्री समुच्चय पूजन

(श्री देव-शास्त्र-गुरु, विदेहक्षेत्र स्थित बीस तीर्थंकर तथा सिद्ध परमेष्ठी पूजन)

(ब्र. सरदारमलजी 'सच्चिदानंद' कृत)

(दोहा) **देव शास्त्र गुरु नमन करि, बीस तीर्थंकर ध्याय।**
सिद्ध शुद्ध राजत सदा, नमूं चित्त हुलसाय।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरु समूह ! श्री विद्यमानविंशतितीर्थंकर समूह ! श्री अनंतानंत सिद्ध परमेष्ठीसमूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट् (आह्वाननम्) अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः (स्थापनम्)। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् (सन्निधिकरणम्)।

अष्टक

अनादिकाल से जग में स्वामिन्, जल से शुचिता को माना।
शुद्ध निजातम सम्यक् रत्नत्रय, निधि को नहिं पहिचाना।।
अब निर्मल रत्नत्रय जल ले, श्री देव शास्त्र गुरु को ध्याऊँ।
विद्यमान श्री बीस तीर्थंकर, सिद्ध प्रभुजी के गुण गाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यः श्री विद्यमान विंशतितीर्थंकरेभ्यः श्री अनंतानंत सिद्ध परमेष्ठिभ्यो जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

भव आताप मिटावन की, निज में ही क्षमता समता है।
अनजाने में अब तक मैंने, पर में की झूठी ममता है।।
चन्दन सम शीतलता पाने, श्री देव शास्त्र गुरु को ध्याऊँ।
विद्यमान श्री बीस तीर्थंकर, सिद्ध प्रभुजी के गुण गाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यः श्री विद्यमान विंशतितीर्थंकरेभ्यः श्री अनंतानंत सिद्ध परमेष्ठिभ्यो संसारताप विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

अक्षय पद बिन फिरा जगत की, लख चौरासी योनी में,
अष्ट कर्म के नाश करन को, अक्षत तुम ढिंग लाया मैं।।
अक्षय निधि निज की पाने अब, श्री देव शास्त्र गुरु को ध्याऊँ।
विद्यमान श्री बीस तीर्थंकर, सिद्ध प्रभुजी के गुण गाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यः श्री विद्यमान विंशतितीर्थंकरेभ्यः श्री अनंतानंत सिद्ध परमेष्ठिभ्यो अक्षयपद प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

पुष्प सुगंधी से आतम ने, शील स्वभाव नशाया है।
मन्मथ बाणों से बिंध करके, चहुं गति दुःख उपजाया है।।
स्थिरता निज में पाने को, श्री देव शास्त्र गुरु को ध्याऊँ।
विद्यमान श्री बीस तीर्थंकर, सिद्ध प्रभुजी के गुण गाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यः श्री विद्यमान विंशतितीर्थंकरेभ्यः श्री अनंता-नंत सिद्ध परमेष्ठिभ्यो कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

षट्रस मिश्रित भोजन से, ये भूख न मेरी शांत हुई।
आतम रस अनुपम चखने से, इन्द्रिय मन इच्छा शमन हुई।।
सर्वथा भूख के मेटन को, श्री देव शास्त्र गुरु को ध्याऊँ।
विद्यमान श्री बीस तीर्थंकर, सिद्ध प्रभुजी के गुण गाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यः श्री विद्यमान विंशतितीर्थंकरेभ्यः श्री अनंतानंत सिद्ध परमेष्ठिभ्यो क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जड़ दीप विनश्वर को अब तक, समझा था मैंने उजियारा।
निज गुण दरशायक ज्ञान दीप से, मिटा मोह का अंधियारा।।
ये दीप समर्पित करके मैं, श्री देव शास्त्र गुरु को ध्याऊँ।
विद्यमान श्री बीस तीर्थंकर, सिद्ध प्रभुजी के गुण गाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यः श्री विद्यमान विंशतितीर्थंकरेभ्यः श्री अनंतानंत सिद्ध परमेष्ठिभ्यो मोहांधकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

ये धूप अनल में खेने से, कर्मों को नहीं जलायेगी।
निज में निज की शक्ति ज्वाला, जो राग द्वेष नशायेगी।।
उस शक्ति दहन प्रकटाने को, श्री देव शास्त्र गुरु को ध्याऊँ।
विद्यमान श्री बीस तीर्थंकर, सिद्ध प्रभुजी के गुण गाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यः विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यः श्री अनंतानंत सिद्धपरमेष्ठिभ्यो अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

पिस्ता बादाम श्रीफल लवंग, चरणन तुम ढिंग मैं ले आया।
आतम रस भीने निज गुण फल, मम मन अब उनमें ललचाया।।

अब मोक्ष महा फल पाने को श्री देव शास्त्र गुरु को ध्याऊँ।
विद्यमान श्री बीस तीर्थंकर, सिद्ध प्रभुजी के गुण गाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यः विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यः श्री अनंतानंत-सिद्धपरमेष्ठिभ्यो मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

अष्टम वसुधा पाने को, कर में ये आठों द्रव्य लिये।
सहज शुद्ध स्वाभाविकता से, निज में निज गुण प्रगट किये।।
यह अर्घ्य समर्पण करके मैं, श्री देव-शास्त्र-गुरु को ध्याऊँ।
विद्यमान श्री बीस तीर्थंकर, सिद्ध प्रभुजी के गुण गाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यः विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यः श्री अनंतानंत-सिद्ध परमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

देव शास्त्र गुरु बीस तीर्थंकर, सिद्ध प्रभु भगवान।
अब वरणूँ जयमालिका, करूँ स्तवन गुणगान।।

नसे घातिया कर्म अर्हंत देवा, करें सुर-असुर-नर-मुनि नित्य सेवा।
दरश ज्ञान सुख बल अनंत के स्वामी, छियालीस गुण युक्त महाईश नामी।।
तेरी दिव्य वाणी सदा भव्य मानी, महामोह विध्वंसिनी मोक्षदानी।
अनेकान्तमय द्वादशांगी बखानी, नमो लोक माता श्री जैनवाणी।।
विरागी आचारज उवज्झाय साधू, दरश ज्ञान भंडार समता अराधू।
नगन वेशधारी सु एका विहारी, निजानंद मंडित मुकति पथ प्रचारी।।
विदेह क्षेत्र में तीर्थंकर बीस राजे, विहरमान वंदूँ सभी पाप भाजें।
नमूं सिद्ध निर्भय निरामय सुधामी, अनाकुल समाधान सहजाभिरामी।।

(दोहा) **देव शास्त्र गुरु बीस तीर्थंकर, सिद्ध हृदय बिच धर ले रे।।**
पूजन ध्यान गान गुण करके, भव सागर जिय तर ले रे।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यः अनंतानंत-सिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपद प्राप्तये जयमाला महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।

जाप्यमंत्र : ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो नमः।

श्री पंच–परमेष्ठी पूजा

अरहन्त सिद्ध आचार्य नमन, हे उपाध्याय हे साधु नमन।
जय पंच परम परमेष्ठी जय, भवसागर तारणहार नमन॥
मन-वच-काया पूर्वक करता हूँ, शुद्ध हृदय से आह्वानन।
मम हृदय विराजो तिष्ठ तिष्ठ, सन्निकट होहु मेरे भगवन।
निज आत्मतत्त्व की प्राप्ति हेतु, ले अष्ट द्रव्य करता पूजन।
तुम चरणों की पूजन से प्रभु, निज सिद्ध रूप का हो दर्शन॥

ॐ ह्रीं श्री अरहन्त–सिद्ध–आचार्य–उपाध्याय–सर्वसाधुपंचपरमेष्ठिन् ! अत्र अवतर–अवतर संवौषट् (इति आह्वाननम्)।

ॐ ह्रीं श्री अरहन्त–सिद्ध–आचार्य–उपाध्याय–सर्वसाधुपंचपरमेष्ठिन् ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः (इति स्थापनम्)।

ॐ ह्रीं श्री अरहन्त–सिद्ध–आचार्य–उपाध्याय–सर्वसाधुपंचपरमेष्ठिन्! अत्र मम सन्निहितो भव-भव वषट् (इति संनिधिकरणम्)।

मैं तो अनादि से रोगी हूँ, उपचार कराने आया हूँ।
तुम सम उज्जवलता पाने को, उज्ज्वल जल भरकर लाया हूँ॥
मैं जन्म-जरा-मृतु नाश करूँ, ऐसी दो शक्ति हृदय स्वामी।
हे पंच परम परमेष्ठी प्रभु, भव-दुःख मेटो अन्तर्यामी॥

ॐ ह्रीं श्री पंचपरमेष्ठिभ्यः जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

संसार-ताप में जल-जल कर, मैंने अगणित दुःख पाये हैं।
निज शान्त स्वभाव नहीं भाया, पर के ही गीत सुहाये हैं॥
शीतल चंदन है भेंट तुम्हें, संसार-ताप नाशो स्वामी।
हे पंच परम परमेष्ठी प्रभु, भव-दुःख मेटो अन्तर्यामी॥

ॐ ह्रीं श्री पंचपरमेष्ठिभ्यः संसारताप विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

दुःखमय अथाह भवसागर में, मेरी यह नौका भटक रही।
शुभ-अशुभ भाव की भंवरों में, चैतन्य शक्ति निज अटक रही॥

तन्दुल है धवल तुम्हें अर्पित, अक्षयपद प्राप्त करूँ स्वामी।
हे पंच परम परमेष्ठी प्रभु, भव-दुःख मेटो अन्तर्यामी।।

ॐ ह्रीं श्री पंचपरमेष्ठिभ्यः अक्षयपद प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

मैं काम-व्यथा से घायल हूँ, सुख की न मिली किंचित् छाया।
चरणों में पुष्प चढाता हूँ, तुमको पाकर मन हर्षाया।।
मैं काम-भाव विध्वंस करूँ, ऐसा दो शील हृदय स्वामी।
हे पंच परम परमेष्ठी प्रभु, भव-दुःख मेटो अन्तर्यामी।।

ॐ ह्रीं श्री पंचपरमेष्ठिभ्यः कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

मैं क्षुधा-रोग से व्याकुल हूँ, चारों गति में भरमाया हूँ।
जग के सारे पदार्थ पाकर भी, तृप्त नहीं हो पाया हूँ।।
नैवेद्य समर्पित करता हूँ, यह क्षुधा-रोग मेटो स्वामी।
हे पंच परम परमेष्ठी प्रभु, भव-दुःख मेटो अन्तर्यामी।।

ॐ ह्रीं श्री पंचपरमेष्ठिभ्यः क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति।

मोहान्ध महा-अज्ञानी मैं, निज को पर का कर्ता माना।
मिथ्यातम के कारण मैंने, निज आत्मस्वरूप न पहिचाना।।
मैं दीप समर्पण करता हूँ, मोहान्धकार क्षय हो स्वामी।
हे पंच परम परमेष्ठी प्रभु, भव-दुःख मेटो अन्तर्यामी।।

ॐ ह्रीं श्री पंचपरमेष्ठिभ्यः मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

कर्मों की ज्वाला धधक रही, संसार बढ रहा है प्रतिपल।
संसार से आस्रव को रोकूँ, निर्जरा सुरभि महके पल पल।।
यह धूप चढाकर अब आठों कर्मों का हनन करूँ स्वामी।
हे पंच परम परमेष्ठी प्रभु, भव-दुःख मेटो अन्तर्यामी।।

ॐ ह्रीं श्री पंचपरमेष्ठिभ्यः अष्टकर्म विनाशनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

निज आत्मतत्त्व का मनन करूँ, चिंतवन करूँ निज चेतन का।
दो श्रद्धा-ज्ञान-चरित्र श्रेष्ठ, सच्चा पथ मोक्ष निकेतन का।।

उत्तम फल चरण चढाता हूँ, निर्वाण महाफल हो स्वामी।
हे पंच परम परमेष्ठी प्रभु, भव-दुःख मेटो अन्तर्यामी।।

ॐ ह्रीं श्री पंचपरमेष्ठिभ्यः मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल चन्दन अक्षत पुष्प दीप, नैवेद्य धूप फल लाया हूँ।
अबतक के संचित कर्मों का, मैं पुंज जलाने आया हूँ।।
यह अर्घ्य समर्पित करता हूँ, अविचल अनर्घ्य पद दो स्वामी।
हे पंच परम परमेष्ठी प्रभु, भव-दुःख मेटो अन्तर्यामी।।

ॐ ह्रीं श्री पंचपरमेष्ठिभ्यः अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(पद्धरि)

जय वीतराग सर्वज्ञ प्रभो, निज ध्यान लीन गुणमय अपार।
अष्टादश दोष रहित जिनवर, अरहन्त देव को नमस्कार।।१।।

अविकल अविकारी अविनाशी, निजरूप निरंजन निराकार।
जय अजर अमर हे मुक्तिकंत, भगवंत सिद्ध को नमस्कार।।२।।

छत्तीस सुगुण से तुम मंडित, निश्चय रत्नत्रय हृदय धार।
हे मुक्तिवधू के अनुरागी, आचार्य सुगुरु को नमस्कार।।३।।

एकादश अंग पूर्व चौदह के, पाठी गुण पच्चीस धार।
बाह्यान्तर मुनि मुद्रा महान, श्री उपाध्याय को नमस्कार।।४।।

व्रत समिति गुप्ति चारित्र धर्म, वैराग्य भावना हृदय धार।
हे द्रव्य-भाव संयममय मुनिवर, सर्व साधु को नमस्कार।।५।।

बहु पुण्य संयोग मिला नरतन, जिनश्रुत जिनदेव चरण दर्शन।
हो सम्यग्दर्शन प्राप्त मुझे, तो सफल बने मानव जीवन।।६।।

निज-पर का भेद जानकर मैं, निज को ही निज में लीन करूँ।
अब भेदज्ञान के द्वारा मैं, निज आत्म स्वयं स्वाधीन करूँ।।७।।

निज में रत्नत्रय धारण कर, निज परिणति को ही पहचानूँ।
पर-परिणति से हो विमुख सदा, निज ज्ञानतत्त्व को ही जानूँ।।८।।
जब ज्ञान-ज्ञेय-ज्ञाता विकल्प तज, शुक्लध्यान मैं ध्याऊँगा।
तब चार घातिया क्षय करके, अरहन्त महापद पाऊँगा।।९।।
है निश्चित सिद्ध स्वपद मेरा, हे प्रभु! कब इसको पाऊँगा।
सम्यक् पूजा फल पाने को, अब निज स्वभाव में आऊँगा।।१०।।
अपने स्वरूप की प्राप्ति हेतु, हे प्रभु! मैंने की है पूजन।
तब तक चरणों में ध्यान रहे, जबतक न प्राप्त हो मुक्ति सदन।।११।।

ॐ ह्रीं श्री अरहन्त–सिद्ध–आचार्य–उपाध्याय–सर्वसाधुपंचपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपद-प्राप्तये जयमाला महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

हे मंगल रूप अमंगल हर, मंगलमय मंगल गान करूँ।
मंगल में प्रथम श्रेष्ठ मंगल, नवकार मंत्र का ध्यान करूँ।।१२।।

(इति पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

जाप्यमंत्र : ॐ ह्रीं श्री अरहन्त-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-सर्वसाधुपंचपरमेष्ठीभ्यो नमः।

भक्ति

धन-धन जैनी साधु जगत के, तत्त्व ज्ञान विलासी हों।।टेक।।
दर्शन बोधमइ निज मूरति जिनको अपनी भासी हो।
त्यागी अन्य समस्त वस्तु में अहं बुद्धि दुःखदासी हो।।१।।
जिन अशुभोपयोगकी परिणति सत्ता सहित विनासी हों।
होय कदाच शुभोपयोग तो तहँ भी रहत उदासी हो।।२।।
छेदत जे अनादि दुःखदायक दुविधि बंध की फांसी हो।
मोह क्षोभ रहित जिन परिणति विमल मयंक विलासी हो।।३।।
विषय चाह दव दाह बुझावन साम्य सुधारस रासी हो।
''भागचन्द'' पद ज्ञानानंदी साधक सदा हुलासी हो।।४।।

परमेष्ठी-वन्दना

पंच परम परमेष्ठी देखे।
हृदय हर्षित होता है, आनन्द उल्लसित होता है।
हो ऽऽऽ सम्यग्दर्शन होता है॥टेक॥

दर्शन ज्ञान सुख वीर्य स्वरूपी गुण अनन्त के धारी हैं।
जग को मुक्ति मार्ग बताने निज चैतन्य विहारी हैं।
मोक्षमार्ग के नेता देखे विश्व तत्त्व के ज्ञाता देखे।
हृदय हर्षित होता है.....॥१॥

द्रव्य भाव नोकर्म रहित जो सिद्धालय के वासी है।
आतम को प्रतिबिम्बित करते, अजर अमर अविनाशी हैं।
शाश्वत सुख के भोगी देखे, योग रहित निजयोगी देखे।
हृदय हर्षित होता है.....॥२॥

साधु संघ के अनुशासक जो, धर्मतीर्थ के नायक हैं।
निज पर के हितकारी गुरुवर, देव धर्म परिचायक हैं।
गुण छत्तीस सुपालक देखे, मुक्तिमार्ग संचालक देखे।
हृदय हर्षित होता है.....॥३॥

जिनवाणी को हृदयंगम कर शुद्धातम रस पीते हैं।
द्वादशांग के धारक मुनिवर ज्ञानानंद में जीते हैं।
द्रव्यभाव श्रुत धारी देखे, बीस-पांच गुणधारी देखे।
हृदय हर्षित होता है.....॥४॥

निज स्वभाव साधनरत साधु, परम दिगम्बर वनवासी।
सहज शुद्ध चैतन्यराजमय, निजपरिणति के अभिलाषी।
चलते-फिरते सिद्धप्रभु देखे, बीस-आठ गुणमय विभु देखे।
हृदय हर्षित होता है.....॥५॥

श्री नवदेव पूजन

(स्थापना)

(वीरछन्द)

श्री अरहंत सिद्ध आचार्य उपाध्याय, मुनि साधु महान।
जिनवाणी, जिनमंदिर, जिनप्रतिमा, जिनधर्म, देव नव जान।।
ये नव देव परम हितकारी रत्नत्रय के दाता हैं।
विघ्न विनाशक संकटहर्ता तीन लोक विख्याता हैं।।
जल फलादि वसु द्रव्य सजाकर हे प्रभु नित्य करूँ पूजन।
मंगलोत्तम शरण प्राप्त कर मैं पाऊँ सम्यग्दर्शन।।
आत्मतत्त्व का अवलम्बन ले पूर्ण अतीन्द्रिय सुख पाऊँ।
नवदेवों की पूजन करके फिर न लौट भव में आऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री अर्हंत-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-सर्वसाधु जिनवाणी जिनमंदिर जिनप्रतिमा जिनधर्म नवदेव अत्र अवतर अवतर संवौषट् (आह्वाननम्)।

ॐ ह्रीं श्री अर्हंत-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-सर्वसाधु जिनवाणी जिनमंदिर, जिनप्रतिमा जिनधर्म नवदेव अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः (स्थापनम्)।

ॐ ह्रीं श्री अरहंत-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-सर्वसाधु जिनवाणी जिनमंदिर जिनप्रतिमा जिनधर्म नवदेव अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् (सन्निधिकरणं)।

(वीरछन्द)

परम भाव जल की धारा से जन्म मरण का नाश करूँ।
मिथ्यातम का गर्व चूर कर रवि सम्यक्त्व प्रकाश करूँ।।
पंच परम परमेष्ठी, जिनश्रुत, जिनगृह, जिनप्रतिमा जिनधर्म।
नवदेवों का पूजन करके मैं बन जाऊँ प्रभु निष्कर्म।।

ॐ ह्रीं श्री अर्हंत-सिद्ध-आचार्योपाध्याय-सर्वसाधु, जिनवाणी, जिनमंदिर, जिनप्रतिमा, जिनधर्म नवदेवेभ्यो जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

परम भाव चंदन के बल से भव आतप का नाश करूँ।
अंधकार अज्ञान मिटाऊँ सम्यक्ज्ञान प्रकाश करूँ।।पंच..।।

ॐ ह्रीं श्री अरहंत-सिद्ध-आचार्योपाध्याय-सर्वसाधु, जिनवाणी, जिनमंदिर, जिनप्रतिमा, जिनधर्म नवदेवेभ्यो संसारताप विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

परम भाव अक्षत के द्वारा अक्षय पद को प्राप्त करूँ।
मोह-क्षोभ से रहित बनूँ मैं सम्यक् चारित्र प्राप्त करूँ।।
पंच परम परमेष्ठी, जिनश्रुत, जिनगृह, जिनप्रतिमा जिनधर्म।
नवदेवों का पूजन करके मैं बन जाऊँ प्रभु निष्कर्म।।

ॐ ह्रीं श्री अरहंतसिद्ध-आचार्योपाध्याय-सर्वसाधु, जिनवाणी, जिनमंदिर, जिनप्रतिमा, जिनधर्म नवदेवेभ्यो अक्षयपद प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

परम भाव पुष्पों से दुर्धर काम-भाव का नाश करूँ।
तप संयम की महाशक्ति से निर्मल आत्म प्रकाश करूँ।।पंच..।।

ॐ ह्रीं श्री अरहंतसिद्ध-आचार्योपाध्याय-सर्वसाधु, जिनवाणी, जिनमंदिर, जिनप्रतिमा, जिनधर्म नवदेवेभ्यो कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।।

परम भाव नैवेद्य प्राप्त कर क्षुधा व्याधि का ह्रास करूँ।
पंचाचार आचरण करके परम तृप्त शिववास करूँ।।पंच..।।

ॐ ह्रीं श्री अरहंतसिद्ध-आचार्योपाध्याय-सर्वसाधु, जिनवाणी, जिनमंदिर, जिनप्रतिमा, जिनधर्म नवदेवेभ्यो क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

परम भावमय दिव्य ज्योति से पूर्ण मोह का नाश करूँ।
पाप-पुण्य आस्रव विनाशकर केवलज्ञान प्रकाश करूँ।।पंच..।।

ॐ ह्रीं श्री अरहंतसिद्ध-आचार्योपाध्याय-सर्वसाधु, जिनवाणी, जिनमंदिर, जिनप्रतिमा, जिनधर्म नवदेवेभ्यो मोहांधकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

परम भावमय शुक्लध्यान से अष्ट कर्म का नाश करूँ।
नित्य निरंजन शिव पद पाऊँ सिद्ध स्वरूप विकास करूँ।।पंच..।।

ॐ ह्रीं श्री अरहंत-सिद्ध-आचार्योपाध्याय-सर्वसाधु, जिनवाणी, जिनमंदिर, जिनप्रतिमा, जिनधर्म नवदेवेभ्यो अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

परम भाव संपत्ति प्राप्त कर मोक्ष भवन में वास करूँ।
रत्नत्रय की मुक्ति शिला पर सादि अनंत निवास करूँ।।पंच..।।

ॐ ह्रीं श्री अरहंतसिद्ध-आचार्योपाध्याय-सर्वसाधु, जिनवाणी, जिनमंदिर, जिनप्रतिमा, जिनधर्म नवदेवेभ्यो महामोक्षफल प्राप्ताय फलं निर्वपामीति स्वाहा।

परम भाव के अर्घ्य चढ़ाऊँ उर अनर्घ्य पद व्याप्त करूँ।
भेदज्ञान रवि हृदय जगाकर शाश्वत जीवन प्राप्त करूँ।।पंच..।।

ॐ ह्रीं श्री अरहंत-सिद्ध-आचार्योपाध्याय-सर्वसाधु, जिनवाणी, जिनमंदिर, जिनप्रतिमा, जिनधर्म नवदेवेभ्यो अनर्घ्यपद प्राप्ताय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

नवदेवों को नमन कर करूँ आत्म कल्याण।
शाश्वत सुख की प्राप्ति हित करूँ भेद विज्ञान।।

(वीरछन्द)

जय जय पंच परम परमेष्ठी जिनवाणी जिन धर्म महान।
जिनमंदिर, जिनप्रतिमा, नव देवों को नित वन्दूं धर ध्यान।।
श्री अरहंत देव मंगलमय मोक्ष मार्ग के नेता हैं।
सकल ज्ञेय के ज्ञाता दृष्टा कर्म शिखर के भेत्ता हैं।।
हैं लोकाग्र शिखर पर सुस्थित सिद्धशिला पर सिद्ध अनंत।
अष्ट कर्म रज से विहीन प्रभु सकल सिद्धदाता भगवंत।।
हैं छत्तीस गुणों से शोभित श्री आचार्य देव भगवान।
चार संघ के नायक ऋषिवर करते सबको शान्ति प्रदान।।
ग्यारह अंग पूर्व चौदह के ज्ञाता उपाध्याय गुणवन्त।
जिन आगम का पठन और पाठन करते हैं महिमावन्त।।
अट्ठाईस मूलगुण पालक ऋषि मुनि साधु परम गुणवान।
मोक्षमार्ग के पथिक श्रमण करते जीवों को करुणादान।।
स्याद्वादमय द्वादशांग जिनवाणी है जग कल्याणी।
जो भी शरण प्राप्त करता है हो जाता केवलज्ञानी।।
जिनमंदिर जिन समवसरणसम इसकी महिमा अपरम्पार।
गंध कुटी में नाथ विराजे हैं अरहंत देव साकार।।
जिन प्रतिमा अरहंतों की नासाग्र दृष्टि निज ध्यानमयी।
जिन दर्शन से निज दर्शन हो जाता तत्क्षण ज्ञानमयी।।

श्री जिनधर्म महा मंगलमय जीव मात्र को सुख दाता।
इसकी छाया में जो आता हो जाता दृष्टा ज्ञाता।।
ये नवदेव परम उपकारी वीतरागता के सागर।
सम्यग्दर्शन ज्ञान चरित से भर देते सबकी गागर।।
मुझको भी रत्नत्रय निधि दो मैं कर्मों का भार हरूँ।
क्षीणमोह जितराग जितेन्द्रिय हो भव सागर पार करूँ।।
सदा-सदा नवदेव शरण पा मैं अपना कल्याण करूँ।
जब तक सिद्ध स्वपद ना पाऊँ हे प्रभु पूजन ध्यान करूँ।।

ॐ ह्रीं श्री अरहंतसिद्ध-आचार्योपाध्याय-सर्वसाधु, जिनवाणी, जिनमंदिर, जिनप्रतिमा, जिनधर्म नवदेवेभ्यो अनर्घ्यपद प्राप्ताय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

मंगलोत्तम उत्तम शरण हैं नव देवता महान।
भाव पूर्ण जिन भक्ति से होता दुःख अवसान।।

(पुष्पांजलि क्षिपेत्)

जाप्यमंत्र : ॐ ह्रीं श्री जिन नवदेवताभ्यो नमः।

*

ऐसे साधु सुगुरु कब मिलि हैं।टेक।।
आप तरैं अरु पर को तारैं, निष्पृही निर्मल हैं।१।
तिल तुष मात्र संग नहिं जिनके, ज्ञान-ध्यान गुणबल हैं।२।
शांत दिगम्बर मुद्रा जिनकी, मन्दर तुल्य अचल हैं।३।
''भागचन्द'' तिनको नित चाहें, ज्यों कमलनि को अलि हैं।४।।

श्री सिद्ध पूजन

(दोहा)

चिदानन्द स्वातमरसी, सत् शिव सुन्दर जान।
ज्ञाता-दृष्टा लोक के, परम सिद्ध भगवान।।

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिन्! अत्र अवतर अवतर, संवौषट् (आह्वाननम्)। ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिन्! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः (स्थापनम्)। ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिन्! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् (सन्निधिकरणम्)।

ज्यों-ज्यों प्रभुवर जल पान किया, त्यों-त्यों तृष्णा की आग जली।
थी आश कि प्यास बुझेगी अब, पर यह सब मृगतृष्णा निकली।।
आशा-तृष्णा से जला हृदय, जल लेकर चरणों में आया।
होकर निराश सब जग भर से, अब सिद्ध शरण में मैं आया।।

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

तन का उपचार किया अबतक, उस पर चंदन का लेप किया।
मल-मल कर खूब नहा करके, तन के मल का विक्षेप किया।।
अब आतम के उपचार हेतु, तुमको चन्दन-सम है पाया।
होकर निराश सब जग भर से, अब सिद्ध शरण में मैं आया।।

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने संसारताप विनाशनाय चन्दनं निर्व..

सचमुच तुम अक्षत हो प्रभुवर, तुम ही अखण्ड अविनाशी हो।
तुम निराकार अविचल निर्मल, स्वाधीन सफल सन्यासी हो।।
ले शालिकणों को अवलम्बन, अक्षयपद तुमको अपनाया।
होकर निराश सब जग भर से, अब सिद्ध शरण में मैं आया।।

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अक्षयपद प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति..

जो शत्रु जगत का प्रबल काम, तुमने प्रभुवर उसको जीता।
हो हार जगत के बैरी की, क्यों नहिं आनन्द बढ़े सब का।।

प्रमुदित मन विकसित सुमन नाथ, मनसिज को ठुकराने आया।
होकर निराश सब जग भर से, अब सिद्ध शरण में मैं आया।।

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्व..

मैं समझ रहा था अब तक प्रभु, भोजन से जीवन चलता है।
भोजन बिन नरकों में जीवन, भरपेट मनुज क्यों मरता है।।
तुम भोजन बिन अक्षय सुखमय, यह समझ त्यागने हूँ आया।
होकर निराश सब जग भर से, अब सिद्ध शरण में मैं आया।।

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्व..

आलोक ज्ञान का कारण है, इन्द्रिय से ज्ञान उपजता है।
यह मान रहा था पर क्यों कर, जड़-चेतन-सर्जन करता है।।
मेरा स्वभाव है ज्ञानमयी, यह भेद-ज्ञान पा हरषाया।
होकर निराश सब जग भर से, अब सिद्ध शरण में मैं आया।।

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने मोहांधकार विनाशनाय दीपं निर्व.

मेरा स्वभाव चेतनमय है, इसमें जड़ की कुछ गंध नहीं।
मैं हूँ अखण्ड चिद् पिण्ड चण्ड, पर से कुछ भी सम्बन्ध नहीं।।
यह धूप नहीं, जड़-कर्मों की रज आज उड़ाने मैं आया।
होकर निराश सब जग भर से, अब सिद्ध शरण में मैं आया।।

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति..

शुभ-कर्मों का फल विषय-भोग, भोगों में मानस रमा रहा।
नित नई लालसायें जागीं, तन्मय हो उसमें समा रहा।।
रागादि विभाव किये जितने, आकुलता उनका फल पाया।
होकर निराश सब जग भर से, अब सिद्ध शरण में मैं आया।।

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति...

जल पिया और चन्दन चरचा, मालायें सुरभित सुमनों की।
पहनीं, तन्दुल सेये व्यंजन, दीपावलियाँ की रत्नों की।।

सुरभी धूपायन की फैली, शुभ-कर्मों का सब फल पाया।
आकुलता फिर भी बनी रही, क्या कारण जान नहीं पाया॥

जब दृष्टि पड़ी प्रभुजी तुम पर, मुझको स्वभाव का भान हुआ।
सुख नहीं विषय-भोगों में है, तुमको लख यह सद्ज्ञान हुआ॥
जल से फल तक वैभव यह, मैं आज त्यागने हूँ आया।
होकर निराश सब जग भर से, अब सिद्ध शरण में मैं आया॥

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति..

जयमाला

(दोहा)

आलोकित हो लोक में, प्रभु परमात्म-प्रकाश।
आनन्दामृत पानकर, मिटे सभी की प्यास॥

(पद्धरि)

जय ज्ञान मात्र ज्ञायक स्वरूप, तुम हो अनन्त चैतन्य रूप।
तुम हो अखण्ड आनन्द पिण्ड, मोहारि दलन को तुम प्रचण्ड॥

रागादि विकारी भाव जार, तुम हुए निरामय निर्विकार।
निर्द्वन्द निराकुल निराधार, निर्मम निर्मल हो निराकार॥

नित करत रहत आनन्द रास, स्वाभाविक परिणति में विलास।
प्रभु शिव-रमणी के हृदय हार, नित करत रहत निज में विहार॥

प्रभु भवदधि यह गहरो अपार, बहते जाते सब निराधार।
निज परिणति का सत्यार्थभान, शिवपद दाता जो तत्त्वज्ञान॥

पाया नहिं मैं उसको पिछान, उलटा ही मैंने लिया मान।
चेतन को जड़मय लिया जान, तन में अपनापा लिया मान॥

शुभ-अशुभ राग जो दुःखखान, उसमें माना आनन्द महान।
प्रभु अशुभ-कर्म को मान हेय, माना पर शुभ को उपादेय॥

जो धर्म-ध्यान आनन्द रूप, उसको जाना मैं दुःख स्वरूप।
मनवांछित चाहे नित्य भोग, उनको ही माना है मनोग।।

इच्छा-निरोध की नहीं चाह, कैसे मिटता भव-विषय-दाह।
आकुलतामय संसार-सुख, जो निश्चय से है महा-दुःख।।

उसकी ही निश-दिन करी आश, कैसे कटता संसार-पाश।
भव-दुःख का पर को हेतु जान, पर से ही सुख को लिया मान।।

मैं दान दिया अभिमान ठान, उसके फल पर नहिं दिया ध्यान।
पूजा कीनी वरदान माँग, कैसे मिटता संसार स्वांग।।

तेरा स्वरूप लख प्रभु आज, हो गये सफल सम्पूर्ण काज।
मो उर प्रकट्यो प्रभु भेद-ज्ञान, मैंने तुम को लीना पिछान।।

तुम पर के कर्ता नहीं नाथ, ज्ञाता हो सब के एक साथ।
तुम भक्तों को कुछ नहीं देत, अपने समान बस बना लेत।।

यह मैंने तेरी सुनी आन, जो लेवे तुमको बस पिछान।
वह पाता है केवल्यज्ञान, होता परिपूर्ण कला-निधान।।

विपदामय परपद है निकाम, निजपद ही है आनन्द-धाम।
मेरे मन में बस यही चाह, निजपद को पाऊँ हे जिनाह।।

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अनर्घ्यपद प्राप्तये महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

पर का कुछ नहिं चाहता, चाहूँ अपना भाव।
निज-स्वभाव में थिर रहूँ मेटो सकल विभाव।।

(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

जाप्यमंत्र : ॐ ह्रीं श्री सिद्धपरमेष्ठिने नमः।

*

श्री सिद्ध पूजन

स्थापना

(हरिगीतिका)

निज वज्र पौरुष से प्रभो! अन्तर–कलुष सब हर लिये।
प्रांजल[१] प्रदेश–प्रदेश में, पीयूष निर्झर झर गयें॥
सर्वोच्च हो अतएव बसते, लोक के उस शिखर रे।
तुमको हृदय में स्थाप, मणि–मुक्ता चरण को चूमते॥

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिन्! अत्र अवतर अवतर संवौषट् (आह्वाननम्)।

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिन्! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः (स्थापनम्)।

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिन्! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् (सन्निधिकरणम्)।

(वीरछन्द)

शुद्धातम–सा परिशुद्ध प्रभो! यह निर्मल नीर चरण लाया।
मैं पीडित निर्मम ममता से, अब इसका अंतिम दिन आया॥
तुम तो प्रभु अंतर्लीन हुए, तोड़े कृत्रिम संबंध सभी।
मेरे जीवन–धन तुमको पा, मेरी पहली अनुभूति जगी॥

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिन् जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जलं निर्व..

मेरे चैतन्य–सदन में प्रभु! धू–धू क्रोधानल जलता है।
अज्ञान–अमा[२] के अंचल में, जो छिपकर पल–पल पलता है॥
प्रभु! जहाँ क्रोध का स्पर्श नहीं, तुम बसो मलय की महकों में।
मैं इसीलिए मलयज लाया, क्रोधासुर भागे पलकों में॥

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने संसारताप विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा

---

१. शुद्ध २. अमावस्या

अधिपति प्रभु ! धवल भवन[१] के हो, और धवल तुम्हारा अन्तस्तल।
अंतर के क्षत सब विक्षत कर, उभरा स्वर्णिम सौंदर्य विमल।
मैं महामान से क्षत–विक्षत, हूँ खंड–खंड लोकांत–विभो !
मेरे मिट्टी के जीवन में प्रभु ! अक्षत की गरिमा भर दो।।

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अक्षयपद प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति..

चैतन्य–सुरभि की पुष्प वाटिका, में विहार नित करते हो।
माया की छाया रंच नहीं, हर बिन्दु सुधा की पीते हो।।
निष्काम प्रवाहित हर हिलोर, क्या काम काम की ज्वाला से।
प्रत्येक प्रदेश प्रमत्त हुआ, पाताल–मधु–मधुशाला[२] से।।

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामी..

यह क्षुधा देह का धर्म प्रभो ! इसकी पहिचान कभी न हुई।
हर पल तन में ही तन्मयता, क्षुत्–तृष्णा अविरल पीन[३] हुई।।
आक्रमण क्षुधा का सह्य नहीं, अतएव लिये हैं व्यंजन ये।
सत्वर[४] तृष्णा को तोड प्रभो ! लो, हम आनंद–भवन पहुँचे।।

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति

विज्ञान नगर के वैज्ञानिक, तेरी प्रयोग शाला विस्मय।
कैवल्य–कला में उमड़ पड़ा, सम्पूर्ण विश्व का ही वैभव।।
पर तुम तो उससे अति विरक्त, नित निरखा करते निज निधियाँ।
अतएव प्रतीक प्रदीप लिये, मैं मना रहा दीपावलियाँ[५]।।

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्व...

तेरा प्रासाद महकता प्रभु ! अति दिव्य दशांगी[६] धूपों से।।
अतएव निकट नहिं आ पाते, कर्मों के कीट–पतंग अरे !
यह धूप सुरभि–निर्झरणी, मेरा पर्यावरण[७] विशुद्ध हुआ।
छक गया योग–निद्रा[८] में प्रभु ! सर्वांग अमी[९] है बरस रहा।।

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति..

---

१. सिद्धशिला, २. शुद्ध अन्तस्तत्तव का आनंद भवन ३. पुष्ट ४. अविलम्ब
५. महोत्सव ६. दशधर्मो ७. अंतरंग प्रदूषण ८. आनंद-समाधि ९. अमृत

निज लीन परम स्वाधीन बसो, प्रभु ! तुम सुरम्य शिव-नगरी में।
प्रतिपल बरसात गगन[१] से हो, रसपान करो शिव–गगरी में।।
ये सुरतरुओं के फल साक्षी, यह भव–संतति का अंतिम क्षण।
प्रभु ! मेरे मंडप में आओ, है आज मुक्ति का उद्घाटन।।

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति..

तेरे विकीर्ण[२] गुण सारे प्रभु ! मुक्ता–मोदक से सघन हुए।
अतएव रसास्वादन करते रे ! घनीभूत अनुभूति लिये।।
हे नाथ ! मुझे भी अब प्रतिक्षण, निज अंतर–वैभव की मस्ती।
है आज अर्घ्य की सार्थकता, तेरी अस्ति मेरी बस्ती।।

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति..

जयमाला

(दोहा)

चिन्मय हो, चिद्रूप प्रभु ! ज्ञाता मात्र चिदेश।
शोध–प्रबंध चिदात्म के[३], सृष्टा तुम ही एक।।

(रेखता)

जगाया तुमने कितनी बार ! हुआ नहिं चिर–निद्रा का अन्त।
मदिर[४] सम्मोहन ममता का, अरे ! बेचेत पडा मैं सन्त।।
घोर तम छाया चारों ओर, नहीं निज सत्ता की पहिचान।
निखिल जडता दिखती सप्राण, चेतना अपने से अनजान।।
ज्ञान की प्रतिपल उठे तरंग, झाँकता उसमें आतमराम।
अरे ! आबाल सभी गोपाल, सुलभ सबको चिन्मय अभिराम।।
किन्तु पर सत्ता में प्रतिबद्ध, कीर–मर्कट–सी[५] गहल अनन्त।
अरे ! पाकर खोया भगवान, न देखा मैंने कभी बसंत।।
नहीं देखा निज शाश्वत देव, रही क्षणिका पर्यय की प्रीति।
क्षम्य कैसे हों ये अपराध ? प्रकृति की यही सनातन रीति।।

---

१. शून्य चैतन्य, २. बिखरे हुए, ३. आत्मा के शुद्धि विधान की शोध ४. मादक ५. तोता ओर बंदर जैसी

अतः जड–कर्मों की जंजीर, पडी मेरे सर्वात्म प्रदेश।
और फिर नरक–निगोदों बीच, हुए सब निर्णय हे सर्वेश।।
घटा घन विपदा की बरसी, कि टूटी शंपा[१] मेंरे शीश।
नरक में पारद–सा तन टूक, निगोदों मध्य अनंती मीच२।।
करें क्या स्वर्ग सुखों की बात, वहाँ की कैसी अद्भुत टेव।
अंत में बिलखे छह–छह मास, कहें हम कैसे उसको देव।।
दशा चारों गति की दयनीय, दया का किन्तु न यहाँ विधान।
शरण जो अपराधी को दे, अरे! अपराधी वह भगवान।।
अरे! मिट्टी की काया बीच, महकता चिन्मय भिन्न अतीव।
शुभाशुभ की जड़ता तो दूर, पराया ज्ञान वहाँ परकीय।।
अहो 'चित्' परम अकर्तानाथ, अरे! वह निष्क्रिय तत्त्व विशेष।
अपरिमित अक्षय वैभव–कोष, सभी ज्ञानी का यह परिवेश[३]।।
बताये मर्म अरे! यह कौन, तुम्हारे बिन वैदेही नाथ?
विधाता शिव–पथ के तुम एक, पडा मैं तस्कर दल के हाथ।।
किया तुमने जीवन का शिल्प[४], खिरे सब मोह कर्म और गात[५];
तुम्हारा पौरुष झंझावात[६], झड गये पीले–पीले पात।।
नहीं प्रज्ञा–आवर्त्तन[७] शेष, हुए सब आवागमन अशेष;
अरे प्रभु! चिर–समाधि में लीन, एक में बसते आप अनेक।।
तुम्हारा चित्–प्रकाश कैवल्य, कहें तुम ज्ञायक लोकालोक।
अहो! बस ज्ञान जहाँ हो लीन, वहीं है ज्ञेय, वहीं है भोग।।
योग–चांचल्य[८] हुआ अवरुद्ध, सकल चैतन्य निकल निष्कंप।
अरे! ओ योग रहित योगीश! रहो यों काल अनंतानंत।।
जीव कारण–परमात्म त्रिकाल, वही है अंतस्तत्त्व अखंड।
तुम्हें प्रभु! रहा वही अवलंब, कार्य परमात्म हुए निर्बन्ध।।
अहो! निखरा कांचन चैतन्य, खिले सब आठों कमल[९] पुनीत।
अतीन्द्रिय सौख्य चिरंतन भोग, करो तुम धवल महल के बीच।।

१. बिजली, २. मृत्यु ३. अनुभूति, ४. सुंदर रचना, ५. शरीर, ६. तूफान, ७. ज्ञप्ति परिवर्तन, ८. आत्मप्रदेशों का कम्पन, ९. आठ गुण।

उछलता मेरा पौरुष आज, त्वरित टूटेंगे बंधन नाथ।
अरे! तेरी सुख–शय्या बीच, होगा मेरा प्रथम प्रभात।।

प्रभो! बीती विभावरी[1] आज, हुआ अरुणोदय शीतल छाँव।
झूमते शांति–लता के कुंज[2], चलें प्रभु! अब अपने उस गाँव[3]।।

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अनर्घ्यपद प्राप्तये महार्घ्यं निर्वपामीति...

(दोहा) चिर–विलास चिद्ब्रह्म में, चिर–निमग्न भगवंत।
द्रव्य–भाव स्तुति से प्रभो! वंदन तुम्हें अनंत।।

(इति पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

जाप्यमंत्र : ॐ ह्रीं श्री सिद्धपरमेष्ठिने नमः।

भक्ति

एक तुम्हीं आधार हो जग में, अय मेरे भगवान;
कि तुम सा और नहीं बलवान।
सम्हल न पाया गोते खाया, तुम बिन हो हैरान।
कि तुम सा और नहीं बलवान।।टेक।।
आया समय बडा सुखकारी, आतम बोध कला विस्तारी।
मैं चेतन तन वस्तु न्यारी, स्वयं चराचर झलकी सारी।
निज अंतर में ज्योति ज्ञान की, अक्षय निधि महान।..कि तुमसा..
दुनिया में एक शरण जिनंदा, पाप-पुण्य का बुरा ये फंदा।
मैं शिव भूप रूप सुख कंदा, ज्ञाता दृष्टा तुम सा वन्दा।
मुझ कारज के कारण तुम हो, और नहीं मतिमान।...कि तुमसा..
सहज स्वभाव भाव दरशाऊँ, पर परिणति से चित्त हटाऊँ।
पुनि-पुनि जग में जन्म न पाऊँ, सिद्ध समान स्वयं बन जाऊँ।
चिदानंद चैतन्य प्रभु का है 'सौभाग्य' प्रधान।...कि तुमसा ...

१. रात, २. उत्कृष्ट भक्ति परिणाम ३. निज शुद्धातम-संवेदन

श्री सिद्ध पूजन

(स्थापना)

(वीरछन्द)

हे सिद्ध तुम्हारे वन्दन से, उर में निर्मलता आती है।
भव भव के पातक कटते हैं, पुण्यावलि शीश झुकाती है॥
तुम गुण चिन्तन से सहज देव होता, स्वभाव का भान मुझे।
है सिद्ध समान स्वपद मेरा हो जाता निर्मल ज्ञान मुझे॥
इसलिए नाथ पूजन करता, कब तुम समान मैं बन जाऊँ।
जिस पथ पर चल तुम सिद्ध हुए, मैं भी चल सिद्धस्वपद पाऊँ॥
ज्ञानावरणादिक अष्ट कर्म को नष्ट करूँ ऐसा बल दो।
निज अष्ट स्वगुण प्रगटे मुझ में, सम्यक्, पूजन का यह फल हो॥

ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं सिद्धपरमेष्ठिन् अत्र अवतर अवतर संवौषट्।(आह्वाननम्)

ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं सिद्धपरमेष्ठिन् अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः। (स्थापनम्)

ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं सिद्धपरमेष्ठिन् अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्। (सन्निधिकरणम्)

कर्म मलिन हूँ जन्म जरा मृत को कैसे कर पाऊँ क्षय।
निर्मल आत्म ज्ञान का जल दो प्रभु, जन्म मृत्यु पर पाऊँ जय॥
अजर, अमर, अविकल, अविकारी, अविनाशी अनंतगुण धाम।
नित्य निरंजन भवदुःखभंजन ज्ञानस्वभावी सिद्ध प्रणाम॥

ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं सिद्धपरमेष्ठिने जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीतियय

शीतल चदन ताप मिटाता, किन्तु नहीं मिटता भव ताप।
निज स्वभाव का चंदन दो प्रभु मिटे राग का सब संताप॥ अजर..॥

ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं सिद्धपरमेष्ठिने संसारताप विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

उलझा हूँ संसार चक्र में कैसे इससे हो उद्धार।
अक्षय तन्दुल रत्नत्रय दो हो जाऊँ भव सागर पार॥ अजर..॥

ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं सिद्धपरमेष्ठिने अक्षयपद प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

काम व्यथा से मैं घायल हूँ कैसे करूँ काम मद नाश।
विमल दृष्टि दो, ज्ञानपुष्प दो, कामभाव हो पूर्ण विनाश।।
अजर, अमर, अविकल, अविकारी, अविनाशी अनंतगुण धाम।
नित्य निरंजन भवदुःखभंजन ज्ञानस्वभावी सिद्ध प्रणाम।।

ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं सिद्धपरमेष्ठिने कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

क्षुधा रोग के कारण मेरा तृप्त नहीं हो पाया मन।
शुद्ध भाव नैवेद्य मुझे दो सफल करूँ प्रभु यह जीवन।। अजर..।।

ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं सिद्धपरमेष्ठिने क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मोह रूप मिथ्यात्व महातम अन्तर में छाया घनघोर।
ज्ञानदीप प्रज्वलित करो प्रभु, प्रकटे समकित रवि का भोर।। अजर..।।

ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं सिद्धपरमेष्ठिने मोहांधकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

कर्म शत्रु निज सुख के घाता इनको कैसे नष्ट करूँ।
शुद्ध धूप दो ध्यान अग्नि में इन्हें जला भव कष्ट हरूँ।। अजर..।।

ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं सिद्धपरमेष्ठिने अष्टकर्म विध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

निज चैतन्य स्वरूप न जाना, कैसे निज में आऊँगा।
भेद ज्ञान फल दो हे स्वामी, स्वयं मोक्षफल पाऊँगा।। अजर..।।

ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं सिद्धपरमेष्ठिने मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

अष्ट द्रव्य का अर्घ्य चढ़ाऊँ अष्टकर्म का हो संहार।
निज अनर्घ्य पद पाऊँ भगवन् सादि अनत परम सुखकार।। अजर..।।

ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं सिद्धपरमेष्ठिने अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

मुक्तिकन्त भगवन्त सिद्ध को मन वच काया सहित प्रणाम।
अर्ध चन्द्र सम सिद्ध शिला पर आप विराजे आठों याम।।१।।
ज्ञानावरण दर्शनावरणी, मोहनीय अन्तराय मिटा।
चार घातिया नष्ट हुए तो, फिर अरहन्त रूप प्रकटा।।२।।
वेदनीय अरु आयु नाम अरु गोत्र कर्म का नाश किया।
चऊ अघातिया नाश किये तो स्वयं स्वरूप प्रकाश किया।।३।।

अष्टकर्म पर विजय प्राप्त कर अष्ट स्वगुण तुमने पाये।
जन्म मृत्यु का नाश किया निज सिद्ध स्वरूप स्वगुण भाये।।४।।
निज स्वभाव में लीन विमल चैतन्य स्वरूप अरूपी हो।
पूर्ण ज्ञान हो पूर्ण सुखी हो पूर्ण बली चिद्रूपी हो।।५।।
वीतराग हो सर्व हितैषी राग द्वेष का नाम नहीं।
चिदानन्द चैतन्य स्वभावी कृतकृत्य कुछ काम नहीं।।६।।
स्वयं सिद्ध हो स्वयं बुद्ध हो स्वयं श्रेष्ठ समकित आगार।
गुण अनन्त दर्शन के स्वामी तुम अनंत गुण के भण्डार।।७।।
तुम अनन्त बल के हो धारी ज्ञान अनन्तानन्त अपार।
बाधा रहित सूक्ष्म हो भगवन् अगुरुलघु अवगाह उदार।।८।।
सिद्ध स्वगुण के वर्णन तक की मुझ में प्रभुवर शक्ति नहीं।
चलू तुम्हारे पथ पर स्वामी ऐसी भी तो भक्ति नहीं।।९।।
देव तुम्हारी पूजन करके हृदय कमल मुस्काया है।
भक्ति भाव उर में जागा है मेरा मन हर्षाया है।।१०।।
तुम गुण का चिन्तवन करे जो स्वयं सिद्ध बन जाता है।
हो निजात्म में लीन दुःखों से छुटकारा पा जाता है।।११।।
अविनश्वर अविकारी सुखमय सिद्ध स्वरूप विमल मेरा।
मुझमें है मुझ से हीं प्रगटेगा स्वरूप अविकल मेरा।।१२।।

ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं सिद्धपरमेष्ठिने पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

शुद्ध स्वभावी आत्मा निश्चय सिद्ध स्वरूप।
गुण अनन्तयुत ज्ञानमय है त्रिकाल शिवधूप।।

(इत्याशीर्वादः परिपुष्पांजलिं क्षिपेत्)

जाप्यमंत्र—ॐ ह्रीं श्री अनंतानंत सिद्ध परमेष्ठीभ्यो नमः।

*

श्री विद्यमान बीस तीर्थंकर पूजन

स्थापना

(वीरछन्द)

सीमंधर, युगमंधर, बाहु, सुबाहु, सुजात, स्वयंप्रभ देव।
ऋषभानन, अनन्तवीर्य, सौरीप्रभु विशालकीर्ति सुदेव।।
श्री वज्रधर, चन्द्रानन प्रभु चन्द्रबाहु, भुजंगम इश।
जयति ईश्वर जयति नेमप्रभु, वीरसेन महाभद्र महीश।।
पूज्य देवयश अजितवीर्य जिन बीस जिनेश्वर परम महान।
विचरण करते हैं विदेह में शाश्वत तीर्थंकर भगवान।।
नहीं शक्ति जाने की स्वामी यहीं वन्दना करूँ प्रभो।
स्तुति पूजन अर्चन करके शुद्ध भाव उर भरूँ प्रभो।।

ॐ ह्रीं श्री विदेहक्षेत्रस्थित विद्यमानविंशतितीर्थंकर जिनसमूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट् (आह्वाननम्)

ॐ ह्रीं श्री विदेहक्षेत्रस्थित विद्यमानविंशतितीर्थंकर जिनसमूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः (स्थापनम्)

ॐ ह्रीं श्री विदेहक्षेत्रस्थित विद्यमानविंशतितीर्थंकर जिनसमूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् (सन्निधिकरणं)।

निर्मल सरिता का प्रासुक जल लेकर चरणों में आऊँ।
जन्म जरादिक क्षय करने को श्री जिनवर के गुण गाऊँ।।
सीमंधर, युगमंधर आदिक, अजितवीर्य को नित ध्याऊँ।
विद्यमान बीसों तीर्थंकर की पूजन कर हर्षाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति..

शीतल चन्दन दाह निकन्दन लेकर चरणों में आऊँ।
भव संताप दाह हरने को श्री जिनवर के गुण गाऊँ।। सीमं...।।

ॐ ह्रीं श्री विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो संसारताप विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति...

स्वच्छ अखण्डित उज्जवल तंदुल लेकर चरणों में आऊँ।
अनुपम अक्षय पद पाने को श्री जिनवर के गुण गाऊँ।। सीमं...।।

ॐ ह्रीं श्री विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो अक्षयपद प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

शुभ्र शील के पुष्प मनोहर लेकर चरणों में आऊँ।
काम शत्रु का दर्प नशाने श्री जिनवर के गुण गाऊँ।।
सीमंधर, युगमंधर आदिक, अजितवीर्य को नित ध्याऊँ।
विद्यमान बीसों तीर्थंकर की पूजन कर हर्षाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

परम शुद्ध नैवेद्य भाव उर लेकर चरणों में आऊँ।
क्षुधारोग का मूल मिटाने श्री जिनवर के गुण गाऊँ।। सीमं...।।

ॐ ह्रीं श्री विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति..

जगमग अंतर दीप प्रज्ज्वलित लेकर चरणों में आऊँ।
मोह तिमिर अज्ञान हटाने श्री जिनवर के गुण गाऊँ।। सीमं...।।

ॐ ह्रीं श्री विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो मोहांधकार विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति..

कर्म प्रकृतियों का ईन्धन अब लेकर चरणों मे आऊँ।
ध्यान अग्नि में इसे जलाने श्री जिनवर के गुण गाऊँ।। सीमं...।।

ॐ ह्रीं श्री विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

निर्मल सरस विशुद्ध भाव फल लेकर चरणों में आऊँ।
परम मोक्ष फल शिव सुख पाने श्री जिनवर के गुण गाऊँ।। सीमं...।।

ॐ ह्रीं श्री विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्घ्य पुंज वैराग्य भाव का लेकर चरणों में आऊँ।
निज अनर्घ्य पदवी पाने को श्री जिनवर के गुण गाऊँ।। सीमं...।।

ॐ ह्रीं श्री विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

मध्य लोक में असंख्यात सागर अरु असंख्यात है द्वीप।
जम्बूद्वीप धातकीखण्ड अरु पुष्करार्ध यह ढ़ाई द्वीप।।१।।

ढाई द्वीप में पंचमेरु हैं तीनों लोको में अति विख्यात।
मेरु सुदर्शन, विजय, अचल, मंदर विद्युन्माली विख्यात।।२।।

एक एक में हैं बत्तीस विदेह क्षेत्र अतिशय सुन्दर।
एक शतक अरु साठ क्षेत्र है, चौथा काल जहाँ सुखकर ॥३॥

पांच भरत अरु पंच ऐरावत कर्मभूमियाँ दस गिनकर।
एक साथ हो सकते है तीर्थंकर एक शतक सत्तर ॥४॥

किन्तु न्यूनतम बीस तीर्थंकर विदेह में होते हैं।
सदा शाश्वत विद्यमान सर्वज्ञ जिनेश्वर होते हैं ॥५॥

एक मेरु के चार विदेहों में रहते तीर्थंकर चार।
बीस विदेहों में तीर्थंकर बीस सदा ही मंगलकार ॥६॥

कोटि पूर्व की आयु पूर्ण कर होते पूर्ण सिद्ध भगवान।
तभी दूसरे इसी नाम के होते हैं अरहन्त महान ॥७॥

श्री जिनदेव महा मंगलमय वीतराग सर्वज्ञ प्रधान।
भक्ति भाव से पूजन करके मैं चाहूँ अपना कल्याण ॥८॥

विहरमान श्री बीस जिनेश्वर भाव सहित गुणगान करूँ।
जो विदेह में विद्यमान हैं उनका जय जय गान करूँ ॥९॥

सीमन्धर को वन्दन करके मैं अनादि मिथ्यात्व हरूँ।
जुगमन्दर की पूजन करके समकित अंगीकार करूँ ॥१०॥

श्री बाहु को सुमिरण करके अविरत हर व्रत ग्रहण करूँ।
श्री सुबाहु पद अर्चन करके तेरह विधि चारित्र धरूँ ॥११॥

प्रभु सुजात के चरण पूजकर पंच प्रमाद अभाव करूँ।
देव स्वयंप्रभ को प्रणाम कर दुःखमय सर्व विभाव हरूँ ॥१२॥

ऋषभानन की स्तुति करके योग कषाय निवृत्ति करूँ।
पूज्य अनन्तवीर्य पद वन्दूँ पथ निर्ग्रन्थ प्रवृत्ति करूँ ॥१३॥

देव सौरप्रभ चरणाम्बुज दर्शन कर पाँचों बन्ध हरूँ।
परम विशालकीर्ति की जय हो निज को पूर्ण अबंध करूँ ॥१४॥

श्री वज्रधर सर्व दोष हर सब संकल्प विकल्प हरूँ।
चन्द्रानन के चरण चित्त धर निर्विकल्पता प्राप्त करूँ।।१५।।

चन्द्रबाहु को नमस्कार कर पाप पुण्य सब नाश करूँ।
श्री भुजंग पद मस्तक धर कर निज चिद्रूप प्रकाश करूँ।।१६।।

ईश्वर प्रभु की महिमा गाऊँ, आत्म द्रव्य का भान भरूँ।
श्री नेमि प्रभु के चरणों में चिदानन्द का ध्यान धरूँ।।१७।।

वीरसेन के पद कमलों में उर चंचलता दूर करूँ।
महाभद्र की भव्य सुछवि लख कर्मघातिया चूर करूँ।।१८।।

श्री देवयश सुयश गान कर शुद्ध भावना हृदय धरूँ।
अजितवीर्य का ध्यान लगाकर गुण अनन्त निज प्रगट करूँ।।१९।।
बीस जिनेश्वर समवशरण लख मोहमयी संसार हरूँ।
निज स्वभाव साधन के द्वारा शीघ्र भवार्णव पार करूँ।।२०।।

स्वगुण अनन्त चतुष्टय धारी वीतराग को नमन करूँ।
सकल सिद्ध मंगल के दाता पूर्ण अर्घ्य के सुमन धरूँ।।२१।।

ॐ ह्रीं श्री विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जो विदेह के बीस जिनेश्वर की महिमा उर में धरते।
भाव सहित प्रभु पूजन करते मोक्ष लक्ष्मी को वरते।।

।। इत्याशीर्वादः परिपुष्पांजलिं क्षिपामि ।।

जाप्य मन्त्र : ॐ ह्रीं श्री विद्यमान विंशति तीर्थंकरेभ्यो नमः।

*

भक्ति

प्रभु हम सबका एक, तू ही है तारणहारा रे।
तुम को भूला, फिरा वही नर मारा मार रे।।टेक।।

बडा पुण्य अवसर यह आया, आज तुम्हारा दर्शन पाया।
फूला मन यह हुआ सफल, मेरा जीवन सारा रे।।१।।

भक्ति में अब चित्त लगाया, चेतन में तब चित ललचाया।
वीतरागी देव करो अब, भव से पारा रे।।२।।

अब तो मेरी ओर निहारो, भव समुद्र से नाव उबारो।
पंकज का लो हाथ पकड़, मैं पाऊँ किनारा रे।।३।।

जीवन में मैं नाथ को पाऊँ, वीतरागी भाव बढाऊँ।
भक्ति भाव से प्रभु चरणों में, जाऊँ-जाऊँ रे।।४।।

*

श्री सीमंधर जिनपूजा

(डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल कृत)

(कुंडलिया)

भव समुद्र सीमित कियो, सीमंधर भगवान।
कर सीमित निजज्ञान को, प्रकट्यो पूरण ज्ञान।।
प्रकट्यो पूरण ज्ञान—वीर्य—दर्शन सुखधारी।
समयसार अविकार विमल चैतन्य—विहारी।।
अंतर्बल से किया प्रबल रिपु—मोह पराभव,
अरे भवान्तक! करो अभय हर लो मेरा भव।।

ॐ ह्रीं श्री सीमंधरजिन! अत्र अवतर अवतर संवौषट् इति आह्वाननम्।
ॐ ह्रीं श्री सीमंधरजिन! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः इति स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्री सीमंधरजिन! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्, इति सन्निधिकरणम्।

प्रभुवर! तुम जल से शीतल हो, जल से निर्मल अविकारी हो।
मिथ्यामल धोने को जिनवर, तुम ही तो मलपरिहारी हो॥
तुम सम्यग्ज्ञान जलोदधि हो, जलधर अमृत बरसाते हो।
भविजन मन मीन प्राणदायक, भविजन मन–जलज खिलाते हो॥
हे ज्ञान पयोनिधि सीमंधर! यह ज्ञान प्रतीक समर्पित है।
हो शान्त ज्ञेयनिष्ठा मेरी, जल से चरणाम्बुज चर्चित है॥

ॐ ह्रीं श्री सीमंधरजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

चंदन सम चन्द्रवदन जिनवर, तुम चन्द्रकिरण–से सुखकर हो।
भव ताप निकंदन हे प्रभुवर! सचमुच तुम ही भव–दुख हर हो॥
जल रहा हमारा अन्तःस्तल, प्रभु इच्छाओं की ज्वाला से।
यह शान्त न होगा हे जिनवर रे! विषयों की मधुशाला से॥
चिर–अंतर्दाह मिटाने को, तुम ही मलयागिरि चंदन हो।
चंदन से चरचूं चरणांबुज, भव–तप–हर! शत–शत वंदन हो॥

ॐ ह्रीं श्री सीमंधरजिनेन्द्राय संसारताप विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रभु! अक्षतपुर के वासी हो, मैं भी तेरा विश्वासी हूँ।
क्षत–विक्षत में विश्वास नहीं, तेरे पद का प्रत्याशी हूँ
अक्षत का अक्षत–संबल ले, अक्षत–साम्राज्य लिया तुमने।
अक्षत–विज्ञान दिया जग को, अक्षत–ब्रह्मांड किया तुमने॥
मैं केवल अक्षत–अभिलाषी, अक्षत अत एव चरण लाया।
निर्वाण–शिला के संगम–सा, धवलाक्षत मेरे मन भाया॥

ॐ ह्रीं श्री सीमंधरजिनेन्द्राय अक्षयपद प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

तुम सुरभित ज्ञान–सुमन हो प्रभु, नहिं राग–द्वेष दुर्गन्ध कहीं।
सर्वांग सुकोमल चिन्मय तन, जग से कुछ भी संबंध नहीं॥
निज अंतर्वास सुवासित हो, शून्यान्तर पर की माया से।
चैतन्य–विपिन के चितरंजन, हो दूर जगत की छाया से॥
सुमनों से मन को राह मिली, प्रभु कल्पबेलि से यह लाया।
इनको पा चहक उठा मन–खग, भर चोंच चरण में ले लाया॥

ॐ ह्रीं श्री सीमंधरजिनेन्द्राय कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

आनंद–रसामृत के द्रह हो, नीरस जड़ता का दान नहीं।
तुम मुक्त–क्षुधा के वेदन से, षट्रस का नाम–निशान नहीं।।
विध–विध व्यंजन के विग्रह से, प्रभु भूख न शांत हुई मेरी।
आनंद–सुधारस–निर्झर तुम, अतएव शरण ली प्रभु तेरी।।
चिर–तृप्ति–प्रदायी व्यंजन से, हो दूर क्षुधा के अंजन ये।
क्षुत्पीडा कैसे रह लेगी? जब पाये नाथ निरंजन–से।।

ॐ ह्रीं श्री सीमंधरजिनेन्द्राय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चिन्मय–विज्ञान–भवन अधिपति, तुम लोकालोक–प्रकाशक हो।
कैवल्य किरण से ज्योतित प्रभु! तुम महामोहतम नाशक हो।।
तुम हो प्रकाश के पुंज नाथ! आवरणों की परछाह नहीं।
प्रतिबिंबित पूरी ज्ञेयावलि पर चिन्मयता को आंच नहीं।।
ले आया दीपक चरणों में रे! अन्तर आलोकित कर दो।
प्रभु! तेरे मेरे अन्तर को, अविलंब निरन्तर से भर दो।।

ॐ ह्रीं श्री सीमंधरजिनेन्द्राय मोहांधकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

धू–धू जलती दुख की ज्वाला, प्रभु त्रस्त निखिल जगतीतल है।
बेचेत पडे सब देही हैं, चलता फिर राग प्रभंजन है।।
यह धूम घूमरी खा–खाकर, उड रहा गगन की गलियों में।
अज्ञान–तमावृत चेतन ज्यों, चौरासी की रंग–रलियों में।।
संदेश धूप का तात्त्विक प्रभु, तुम हुए ऊर्ध्वगामी जग से।
प्रकटे दशांग प्रभुवर! तुमको, अन्तःदशांग की सौरभ से।।

ॐ ह्रीं श्री सीमंधरजिनेन्द्राय अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

शुभ-अशुभ वृत्ति एकांत दुःख, अत्यंत मलिन संयोगी है;
अज्ञान विधाता है इनका, निश्चित चैतन्य विरोधी है।।
कांटों–सी पैदा हो जाती, चैतन्य–सदन के आंगन में।
चंचल छाया की माया–सी, घटती क्षण में बढती क्षण में।।
तेरी फल–पूजा का फल प्रभु! हों शांत शुभाशुभ ज्वालायें।
मधुकल्प फलों–सी जीवन में, प्रभु! शांति–लतायें छा जायें।।

ॐ ह्रीं श्री सीमंधरजिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

निर्मल जल–सा प्रभु निजस्वरूप, पहिचान उसी में लीन हुए।
भव–ताप उतरने लगा तभी, चंदन–सी उठी हिलोर हिये।।
अभिराम भवन प्रभु अक्षत का, सब शक्ति प्रसून लगे खिलने।
क्षुत् तृषा अठारह दोष क्षीण, कैवल्य प्रदीप लगा जलने।।
मिट चली चपलता योगों की, कर्मों के ईन्धन ध्वस्त हुए।
फल हुआ प्रभो! ऐसा मधुरिम, तुम धवल निरंजन स्वस्थ हुए।।

ॐ ह्रीं श्री सीमंधरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

वैदेही हो देह में, अतः विदेही नाथ।
सीमंधर निज सीम में, शाश्वत करो निवास।।
श्री जिन पूर्व विदेह में, विद्यमान अरहंत।
वीतराग सर्वज्ञ श्री, सीमंधर भगवंत।।१।।

(पद्धरि)

हे ज्ञानस्वभावी सीमंधर! तुम हो असीम आनंदरूप।
अपनी सीमा में सीमित हो, फिर भी हो तुम त्रैलोक्य भूप।।२।।
मोहन्धकार के नाश हेतु, तुम ही हो दिनकर अति प्रचंड।
हो स्वयं अखंडित कर्म शत्रु को, किया आपने खंड–खंड।।३।।
गृहवास राग की आग त्याग, धारा तुमने मुनिपद महान।
आतम स्वभाव साधन द्वारा, पाया तुमने परिपूर्ण ज्ञान।।४।।
तुम दर्शन ज्ञान दिवाकर हो, वीरज मंडित आनंदकंद।
तुम हुए स्वयं में स्वयं पूर्ण, तुम ही हो सच्चे पूर्णचन्द।।५।।
पूरब विदेह में हे जिनवर! हो आप आज भी विद्यमान।
हो रहा दिव्य उपदेश, भव्य पा रहे नित्य अध्यात्म ज्ञान।।६।।
श्री कुन्दकुन्द आचार्यदेव को, मिला आपसे दिव्य ज्ञान।
आत्मानुभूति से कर प्रमाण, पाया उनने आनंद महान।।७।।

पाया था उनने समयसार, अपनाया उनने समयसार।
समझाया उनने समयसार, हो गये स्वयं वे समयसार।।८।।
दे गये हमें वे समयसार, गा रहे आज हम समयसार।
है समयसार बस एक सार, है समयसार बिन सब असार।।९।।
मैं हूँ स्वभाव से समयसार, परिणति हो जाये समयसार।
है यही चाह, है यही राह, जीवन हो जाये समयसार।।१०।।

ॐ ह्रीं श्री सीमंधरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपद प्राप्तये जयमाला महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(सोरठा)

समयसार है सार, और सार कुछ है नहीं।
महिमा अपरंपार, समयसारमय आपकी।।११।।

(पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

जाप्यमंत्र– ॐ ह्रीं श्री सीमन्धर जिनेन्द्राय नमः।

✻

श्री सीमंधर जिनपूजन

(स्थापना)

जय जयति जय श्रेयांश नृपसुत सत्यदेवी नन्दनम्।
चऊ घाति कर्म विनष्ट कर्ता ज्ञान सूर्य निरन्जनम्।।
जय जय विदेहीनाथ जय जय धन्य प्रभु सीमन्धरम्।
सर्वज्ञ केवलज्ञानधारी जयति जिन तीर्थंकरम्।।

ॐ ह्रीं श्री सीमंधरजिनेन्द्र! अत्र अवतर अवतर संवौषट् (आह्वाननम्)।
ॐ ह्रीं श्री सीमंधरजिनेन्द्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः (स्थापनम्)।
ॐ ह्रीं श्री सीमंधरजिनेन्द्र! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् (सन्निधिकरणम्)।

यह जन्म मरण का रोग, हे प्रभु नाश करूँ।
दो समरस निर्मल नीर, आत्म प्रकाश करूँ।।
शाश्वत जिनवर भगवन्त, सीमन्धर स्वामी।
सर्वज्ञ देव अरहन्त, प्रभु अंतरयामी।।१।।

ॐ ह्रीं श्री सीमंधर जिनेन्द्राय जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

चन्दन हरता तन ताप, तुम भव ताप हरो।
निज सम शीतल हे नाथ मुझको आप करो॥
शाश्वत जिनवर भगवन्त, सीमन्धर स्वामी।
सर्वज्ञ देव अरहन्त, प्रभु अंतरयामी॥

ॐ ह्रीं श्री सीमंधर जिनेन्द्राय संसारताप विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

इस भव समुद्र से नाथ, मुझको पार करो।
अक्षय पद दो जिनराज, अब उद्धार करो॥शाश्वत....॥

ॐ ह्रीं श्री सीमंधर जिनेन्द्राय अक्षयपद प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

कन्दर्प दर्प हो चूर, शील स्वभाव जगे।
भवसागर के उस पार, मेरी नाव लगे॥शाश्वत....॥

ॐ ह्रीं श्री सीमंधर जिनेन्द्राय कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

यह क्षुधा ज्वाल विकराल, हे प्रभु शांत करूँ।
चरु चरण चढाऊँ देव मिथ्या भ्रांति हरूँ॥शाश्वत....॥

ॐ ह्रीं श्री सीमंधर जिनेन्द्राय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मद मोह कुटिल विष रूप, छाया अंधियारा।
दो सम्यकज्ञान प्रकाश, फैले उजियारा॥शाश्वत....॥

ॐ ह्रीं श्री सीमंधर जिनेन्द्राय मोहांधकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

कर्मों की शक्ति विनष्ट, अब प्रभुवर कर दो।
मैं धूप चढाऊँ नाथ, भव बाधा हर दो॥शाश्वत....॥

ॐ ह्रीं श्री सीमंधर जिनेन्द्राय अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

फल चरण चढाऊँ नाथ, फल निर्वाण मिले।
अन्तर में केवलज्ञान, सूर्य महान खिले॥शाश्वत....॥

ॐ ह्रीं श्री सीमंधर जिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जब तक अनर्घ्य पद प्राप्त, हो न मुझे सत्वर।
मैं अर्घ्य चढाऊँ नित्य, चरणों में प्रभुवर॥शाश्वत....॥

ॐ ह्रीं श्री सीमंधर जिनेन्द्राय अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा।

श्री कल्याणक अर्घ्यावलि

जम्बूद्वीप सुमेरु सुदर्शन पूर्व दिशा में क्षेत्र विदेह।
देश पुष्कलावती राजधानी है पुण्डरीकिणी गेह॥
रानी सत्यवती माता के उर में स्वर्ग त्याग आये।
सोलह स्वप्न लखे माता ने रत्न सुरों ने वर्षाये॥१॥

ॐ ह्रीं गर्भमंगलमण्डिताय श्री सीमंधर जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

नृप श्रेयांसराय के गृह में तुमने स्वामी जन्म लिया।
इन्द्रसुरों ने जन्म महोत्सव कर निज जीवन धन्य किया॥
गिरि सुमेरु पर पांडुक वन में रत्नशिला सुविराजित कर।
क्षीरोदधि से न्हवन किया प्रभु दशों दिशा अनुरंजित कर॥२॥

ॐ ह्रीं जन्ममंगलमण्डिताय श्री सीमंधर जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

एक दिवस नभ में देखे बादल क्षणभर में हुए विलीन।
बस अनित्य संसार जान वैराग्य भाव में हुए सुलीन॥
लौकान्तिक देवर्षि सुरों ने आकर जय जयकार किया।
अतुलित वैभव त्याग आपने वन में जा तप धार लिया॥३॥

ॐ ह्रीं तपोमंगलमण्डिताय श्री सीमंधर जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

आत्म ध्यानमय शुक्ल ध्यान घर कर्म घातिया नाश किया।
त्रेसठ कर्म प्रकृतियाँ नाशी केवलज्ञान प्रकाश लिया॥
समवशरण में गंधकुटी में अन्तरीक्ष प्रभु रहे विराज।
मोक्षमार्ग सन्देश दे रहे भव्य प्राणियों को जिनराज॥५॥

ॐ ह्रीं केवलज्ञानमण्डिताय श्री सीमंधर जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

शाश्वत विद्यमान तीर्थंकर सीमन्धर प्रभु दया निधान।
दे उपदेश भव्य जीवों को करते सदा आप कल्याण॥१॥

कोटि पूर्व की आयु पाँच सौ धनुष स्वर्ण सम काया है।
सकल ज्ञेय ज्ञाता होकर भी निज स्वरूप ही भाया है॥२॥

देव तुम्हारे दर्शन पाकर जागा है उर में उल्लास।
चरण कमल में नाथ शरण दो सुनो प्रभो मेरा इतिहास।।३।।
मैं अनादि से था निगोद में प्रति पल जन्म मरण पाया।
अग्नि, भूमि, जल, वायु, वनस्पति कायक थावर तन पाया।।४।।
दो इन्द्रिय त्रस हुआ भाग्य से पार न कष्टों का पाया।
जन्म तीन इन्द्रिय भी धारा दुख का अन्त नहीं आया।।५।।
चौ इन्द्रियधारी बनकर मैं विकलत्रय में भरमाया।
पंचेन्द्रिय पशु सैनी और असैनी हो बहु दुख पाया।।६।।
बड़े भाग्य से प्रबल पुण्य से फ़िर मानव पर्याय मिली।
मोह महामद के कारण ही नहीं ज्ञान की करनी खिली।।७।।
अशुभ पाप आस्रव के द्वारा नरक आयु का बन्ध गहा।
नारकीय बन नरकों में रह ऊष्ण शीत दुःख द्वन्द सहा।।८।।
शुभ पुण्यास्रव के कारण मैं स्वर्ग लोक तक हो आया।
ग्रेवेयक तक गया किन्तु शाश्वत सुख चैन नहीं पाया।।९।।
देख दूसरों के वैभव को आर्त रौद्र परिणाम किया।
देव आयु क्षय होने पर एकेन्द्रिय तक में जन्म लिया।।१०।।
इस प्रकार धर धर अनन्त भव चारों गतियों में भटका।
तीव्र मोह मिथ्यात्व पाप के कारण इस जग में अटका।।११।।
महापुण्य के शुभ संयोग से फिर यह तन मम पाया है।
देव आपके चरणों को पाकर यह मन हर्षाया है।।१२।।
जनम जनम तक भक्ति तुम्हारी रहे हृदय में हे जिनदेव।
वीतराग सम्यक्, पथ पर चल पाऊँ सिद्ध स्वपद स्वयंमेव।।१३।।
भरत क्षेत्र से कुन्द कुन्द मुनि ने विदेह को किया प्रयाण।
प्रभो तुम्हारा समवशरण में दर्शन कर हो गये महान।।१४।।
आठ दिवस चरणों में रहकर ओकार ध्वनि सुनी प्रधान।
भरत क्षेत्र में लौटे मुनिवर सुनकर वीतराग विज्ञान।।१५।।

करुणा जागी जीवों के प्रति रचा शास्त्र श्री प्रवचनसार।
समयसार पंचास्तिकाय श्रुत नियमसार प्राभृत सुखकार।।१६।।
रचे देव चौरासी पाहुड़ प्रभु वाणी का ले आधार।
निश्चयनय भूतार्थ बताया अभूतार्थ सारा व्यवहार।।१७।।
पाप पुण्य दोनों बंधन हैं जग में भ्रमण कराते हैं।
रागमात्र को हेय जान ज्ञानी निज ध्यान लगाते हैं।।१८।।
निज का ध्यान लगाया जिसने उसका प्रगटा केवलज्ञान।
परम समाधि महासुखकारी निश्चय पाता पद निर्वाण।।१९।।
इस प्रकार इस भरत क्षेत्र के जीवों पर अनन्त उपकार।
हे सीमन्धर नाथ आपके, करो देव मेरा उद्धार।।२०।।
समकित ज्योति जगे अन्तर में हो जाऊँ मैं आप समान।
पूर्ण करो मेरी अभिलाषा हे प्रभु सीमन्धर भगवान।।२१।।

ॐ ह्रीं श्री सीमंधर जिनेन्द्राय जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सीमन्धर प्रभु के चरण भाव सहित उरधार।
मन वच तन जो पूजते वे होते भवपार।।

।। इत्याशीर्वादः परिपुष्पांजलिं क्षिपामि।।

जाप्यमंत्र– ॐ ह्रीं श्री सीमन्धर जिनेन्द्राय नमः।

*

श्री कृत्रिम अकृत्रिम चैत्यालय पूजन

(स्थापना)

तीन लोक के कृत्रिम अकृत्रिम जिन चैत्यालय को वन्दन।
उर्ध्व मध्य पाताल लोक के जिन भवनों को करूँ नमन।।
हैं अकृत्रिम आठ कोटि अरु छप्पन लाख परम पावन।
संतानवे सहस्त्र चार सौ इक्यासी गृह मन भावन।।
कृत्रिम अकृत्रिम जो असंख्य चैत्यालय हैं उनको वन्दन।
विनय भाव से भक्ति पूर्वक नित्य करूँ मैं जिन पूजन।।

ॐ ह्रीं श्री तीन लोक सम्बन्ध कृत्रिम अकृत्रिम जिन चैत्यालयस्थ जिनबिम्बसमूह अत्र अवतर अवतर संवौषट् (आह्वाननम्)।

ॐ ह्रीं श्री तीन लोक सम्बन्ध कृत्रिम अकृत्रिम जिन चैत्यालयस्थ जिनबिम्बसमूह अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः (स्थापनम्)।

ॐ ह्रीं श्री तीन लोक सम्बन्ध कृत्रिम अकृत्रिम जिन चैत्यालयस्थ जिनबिम्बसमूह अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् (सन्निधिकरणम्)।

सम्यक जल की निर्मल उज्जवलता से जन्म जरा हर लूँ।
मूल धर्म का सम्यक् दर्शन है प्रभु हृदयंगम कर लूँ।।
तीन लोक के कृत्रिम अकृत्रिम चैत्यालय वंदन कर लूँ।
ज्ञान सूर्य की परम ज्योति पा भव सागर के दुःख हर लूँ।।

ॐ ह्रीं श्री तीन लोक सम्बन्ध कृत्रिम अकृत्रिम जिन चैत्यालयस्थ जिनबिम्बेभ्यो जन्म-जरामृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

सम्यक चंदन की पावन शीतलता से भव भय हर लूँ।
वस्तु स्वभाव धर्म है सम्यक ज्ञान आत्मा में भर लूँ।।तीन लोक..।।

ॐ ह्रीं श्री तीन लोक सम्बन्ध कृत्रिम अकृत्रिम जिन चैत्यालयस्थ जिनबिम्बेभ्यो संसारताप विनाशनाय चंदनम् निर्वपामीति स्वाहा।

सम्यक् चारित्र की अखंडता से अक्षय पद आदर लूँ।
साम्यभाव चारित्र धर्म पा वीतरागता को वरलूँ।।तीन लोक..।।

ॐ ह्रीं श्री तीन लोक सम्बन्ध कृत्रिम अकृत्रिम जिन चैत्यालयस्थ जिनबिम्बेभ्यो अक्षयपद प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

शील स्वभावी पुष्प प्राप्त कर काम शत्रु को क्षय कर लूँ।
अणुव्रत शिक्षाव्रत गुणव्रत घर पंच महाव्रत आचरलूँ।।तीन लोक..।।

ॐ ह्रीं श्री तीन लोक सम्बन्ध कृत्रिम अकृत्रिम जिन चैत्यालयस्थ जिनबिम्बेभ्यो कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

संतोषामृत के चरु लेकर क्षुधा व्याधि को जय कर लूँ।
सत्य शौचतप त्याग क्षमा से भाव शुभाशुभ सब हर लूँ।।तीन लोक..।।

ॐ ह्रीं श्री तीन लोक सम्बन्ध कृत्रिम अकृत्रिम जिन चैत्यालयस्थ जिनबिम्बेभ्यो संसारताप विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

ज्ञान दीप के चिर प्रकाश से मोह ममत्व तिमिर हर लूँ।
रत्नत्रय का साधन लेकर यह संसार पार कर लूँ॥
तीन लोक के कृत्रिम अकृत्रिम चैत्यालय वंदन कर लूँ।
ज्ञान सूर्य की परम ज्योति पा भव सागर के दुःख हर लूँ॥

ॐ ह्रीं श्री तीन लोक सम्बन्ध कृत्रिम अकृत्रिम जिन चैत्यालयस्थ जिनबिम्बेभ्यो मोहांधकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

ध्यान अग्नि में कर्म धूप धर अष्टकर्म अघ को हर लूँ।
धर्म श्रेष्ठ मंगल को पा शिवमय सिद्धत्व प्राप्त कर लूँ॥तीन लोक..॥

ॐ ह्रीं श्री तीन लोक सम्बन्ध कृत्रिम अकृत्रिम जिन चैत्यालयस्थ जिनबिम्बेभ्यो अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

भेद ज्ञान विज्ञान ज्ञान से केवलज्ञान प्राप्त कर लूँ।
परम भाव सम्पदा सहज शिव महामोक्षफल को वर लूँ॥तीन लोक..॥

ॐ ह्रीं श्री तीन लोक सम्बन्धी कृत्रिम अकृत्रिम जिन चैत्यालयस्थ जिनबिम्बेभ्यो मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

द्वादश विधि तप अर्घ्य संजोकर जिनवर पद अनर्घ्य पालूँ।
मिथ्या अविरति पंच प्रभाद कषाय योग बन्ध हर लूँ॥तीन लोक..॥

ॐ ह्रीं श्री तीन लोक सम्बन्ध कृत्रिम अकृत्रिम जिन चैत्यालयस्थ जिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

इस अनन्त आकाश बीच में तीन लोक हैं पुरुषाकार।
तीनों वातवलय से वेष्टित, सिंधु बीच ज्यों बिन्दु प्रसार॥
उर्ध्व लोक छह, अधो सात हैं, मध्य एक राजू विस्तार।
चौदह राजु उतंग लोक है, त्रस नाड़ी त्रस का आधार॥
तीन लोक में भवन अकृत्रिम आठ कोटि अरु छप्पन लाख।
सतानवे सहस्त्र चार सौ इक्यासी जिन आगम साख॥
उर्ध्व लोक में कल्पवासियों के जिन गृह चौरासी लक्ष।
सतानवे सहस्त्र तेईस जिनालय हैं शाश्वत प्रत्यक्ष॥

अधो लोक में भवनवासी के लाख बहत्तर, करोड़ सात।
मध्यलोक के चार शतक अट्ठावन चैत्यालय विख्यात॥
जम्बू धातकी पुष्करार्ध में पंचमेरु के जिनगृह विख्यात।
जम्बूवृक्ष शाल्मलि तरु अरु विजयारध के अति विख्यात॥
वक्षारों गजदंतों इष्वाकारों के पावन जिनगेह।
सर्व कुलाचल मानुषोत्तर पर्वत के वन्दूँ धर नेह॥
नन्दीश्वर कुण्डलवर द्वीप रुचकवर के जिन चैत्यालय।
ज्योतिष व्यंतर स्वर्गलोक अरु भवनवासी के जिन आलय॥
एक एक में एक शतक अरु आठ आठ जिन पूर्ति प्रधान।
अष्ट प्रातिहार्यों वसु मंगल द्रव्यों से अति शोभावान॥
कुल प्रतिमा नौ सौ पच्चीस करोड़ तिरेपन लाख महान।
सत्ताइस सहस्त्र अरु नौ सौ अड़तालिस अकृत्रिम जान॥
उन्नत धनुष पांच सौ पद्मासन है रत्नमयी प्रतिमा।
वीतराग अर्हन्त मूर्ति की है पावन अचिन्त्य महिमा॥
असंख्यात संख्यात जिन भवन तीन लोक में शोभित हैं।
इन्द्रादिक सुन नर विद्याधर मुनि वन्दन कर मोहित हैं॥
देव रचित या मनुज रचित हैं, भव्यजनों द्वारा वंदित।
कृत्रिम अकृत्रिम चैत्यालय को पूजन कर मैं हूँ हर्षित॥
ढाई द्वीप में भूत भविष्यत वर्तमान के तीर्थंकर।
पंचवर्ण के मुझे शक्ति दें मैं निज पद पाउँ जिनवर॥
जिनगुण संपत्ति मुझे प्राप्त हो परम समधिमरण हो नाथ।
सकल कर्मक्षय हों प्रभु मेरे, बोधिलाभ हो हे जिननाथ॥

ॐ ह्रीं श्री तीन लोक सम्बन्धी कृत्रिम अकृत्रिम जिन चैत्यालयस्थ जिनबिम्बेभ्योः पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा) कृत्रिम अकृत्रिम जिन भवन, भाव सहित उर धार।
मन-वच-तन जो पूजते, वे होते भव पार॥

(पुष्पांजलि क्षिपेत्)

जाप्यमंत्र : ॐ ह्रीं श्री तीन लोक सम्बन्धी कृत्रिम अकृत्रिम जिनबिम्बेभ्योः नमः।

भक्ति

वीर प्रभु रे यो बोल, तेरा प्रभु तुज ही में डोले।
तुझ ही में डोले हाँ तुज ही में डोले॥
मन की तो कुंडी को खोल, खोल-खोल-खोल।
तेरा प्रभु तुज ही में डोले॥टेक॥

क्यों जाता गिरनार क्यों जाता काशी।
घट ही में है तेरे घट-घट का वासी।
अन्तर का कोना टटोल, टोल-टोल-टोल॥१॥

चारों कषायों को तूने है पाला।
आतम प्रभु को जो करती है काला।
इनकी तो संगति को छोड़-छोड़-छोड़॥२॥

पर में जो ढूंढा न भगवान पाया।
संसार को ही, है तूने बढाया।
देखो निजातम की ओर-ओर-ओर॥३॥

मस्तों की दुनियाँ में तू मस्त हो जा।
आतम के रंग में ऐसा तू रंग जा।
आतम को आतम में घोल-घोल-घोल॥४॥

भगवान बनने की ताकत है तुजमें।
तू मान बैठा पुजारी हूँ बस मैं।
ऐसी तू मान्यता को छोड़-छोड़-छोड़॥५॥

श्री वर्तमान चौबीस तीर्थंकर पूजन

(स्थापना)

भरतक्षेत्र की वर्तमान जिन चौबीसी को करूँ नमन।
वृषभादिक श्री वीर जिनेश्वर के पद पंकज में वन्दन।।
भक्ति भाव से नमस्कार कर विनय सहित करता पूजन।
भव सागर से पार करो प्रभु यही प्रार्थना है भगवान।।

ॐ ह्रीं श्री वृषभादि महावीरपर्यन्त चतुर्विंशति जिनसमूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट् (आह्वाननम्)।

ॐ ह्रीं श्री वृषभादि महावीरपर्यन्त चतुर्विंशति जिनसमूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः (स्थापनम्)।

ॐ ह्रीं श्री वृषभादि महावीरपर्यन्त चतुर्विंशति जिनसमूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् (सन्निधिकरणम्)।

आत्मज्ञान वैभव के जल से यह भव तृषा बुझाऊँगा।
जन्म जरा हर चिदानन्द चिन्मय की ज्योति जगाऊँगा।।
वृषभादिक चौबीस जिनेश्वर के नित चरण पखारूँगा।
पर द्रव्यों से दृष्टि हटाकर अपनी ओर निहारूँगा।।

ॐ ह्रीं श्री वृषभादिवीरांतेभ्यो जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

आत्मज्ञान वैभव के चन्दन से भवताप नशाऊँगा।
भव बाधा हर चिदानन्द चिन्मय की ज्योति जलाऊँगा।।वृषभादि..।।

ॐ ह्रीं श्री वृषभादिवीरान्तेभ्यो संसारताप विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

आत्मज्ञान वैभव के अक्षत से अक्षय पद पाउँगा।
भव समुद्र तिर चिदानन्द चिन्मय की ज्योति जलाऊँगा।।वृषभादि..।।

ॐ ह्रीं श्री वृषभादिवीरान्तेभ्यो अक्षयपद प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

आत्मज्ञान वैभव के पुष्पों से मैं काम नशाऊँगा।
शीलोदधि पा चिदानन्द चिन्मय की ज्योति जगाऊँगा।।वृषभादि..।।

ॐ ह्रीं श्री वृषभादिवीरान्तेभ्यो कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

आत्मज्ञान वैभव के चरु ले क्षुधा व्याधि हर पाऊँगा।
पूर्ण तृप्ति पा चिदानन्द चिन्मय की ज्योति जगाऊँगा॥
वृषभादिक चौबीस जिनेश्वर के नित चरण पखारूँगा।
पर द्रव्यों से दृष्टि हटाकर अपनी ओर निहारूँगा॥

ॐ ह्रीं श्री वृषभादिवीरान्तेभ्यो क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

आत्मज्ञान वैभव दीपक से भेद ज्ञान प्रगटाऊँगा।
मोह तिमिर हर चिदानन्द चिन्मय की ज्योति जगाऊँगा॥वृषभादि..॥

ॐ ह्रीं श्री वृषभादिवीरान्तेभ्यो मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

आत्म ज्ञान वैभव को निज में शुचिमय धूप चढाऊँगा।
अष्ट कर्म हर चिदानन्द चिन्मय की ज्योति जगाऊँगा॥वृषभादि..॥

ॐ ह्रीं श्री वृषभादिवीरान्तेभ्यो अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

आत्म ज्ञान वैभव के फल से शुद्ध मोक्ष फल पाऊँगा।
राग द्वेष हर चिदानंद चिन्मय की ज्योति जगाऊँगा॥वृषभादि..॥

ॐ ह्रीं श्री वृषभादिवीरान्तेभ्यो मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

आत्म ज्ञान वैभव का निर्मल अर्घ्य अपूर्व बनाऊँगा।
पा अनर्घ्य पद चिदानंद चिन्मय की ज्योति जगाऊँगा॥वृषभादि..॥

ॐ ह्रीं श्री वृषभादिवीरान्तेभ्यो अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

भव्य दिगम्बर जिन प्रतिमा नासाग्र दृष्टि निज ध्यानमयी।
जिन दर्शन पूजन अघ नाशक भव भव में कल्याणमयी॥
वृषभदेव के चरण पखारूँ मिथ्या तिमिर विनाश करूँ।
अजितनाथ पद वन्दन करके पंच पाप मल नाश करूँ॥
सम्भव जिन का दर्शन करके सम्यक् दर्शन प्राप्त करूँ।
अभिनन्दन प्रभु पद अर्चन कर सम्यक् ज्ञान प्रकाश करूँ॥
सुमतिनाथ का सुमिरण करके सम्यकचारित हृदय धरूँ।
श्री पदमप्रभु का पूजन कर रत्नत्रय का वरण करूँ॥

श्री सुपार्श्व की स्तुति करके मोह ममत्व अभाव करूँ।
चन्दाप्रभु के चरण चित्त धर चार कषाय अभाव करूँ।।
पुष्पदन्त के पद कमलों में बारम्बार प्रणाम करूँ।
शीतल जिनका सुयशगान कर शाश्वत शीतल धाम वरूँ।।
प्रभु श्रेयांसनाथ को वन्दू श्रेयस पद की प्राप्ति करूँ।
वासुपूज्य के चरण पूज कर मैं अनादि की भ्रांति हरूँ।।
विमल जिनेश मोक्ष पद दाता पंच महाव्रत ग्रहण करूँ।
श्री अनन्तप्रभु के पद वन्दू पर परणति का हरण करूँ।।
धर्मनाथ पद मस्तक धर कर निज स्वरूप का ध्यान करूँ।
शांतिनाथ की शांत मूर्ति लख परमशांत रस पान करूँ।।
कुन्थुनाथ को नमस्कार कर शुद्ध स्वरुप प्रकाश करूँ।
अरहनाथ प्रभु सर्वदोष हर अष्टकर्म अरि नाश करूँ।।
मल्लिनाथ की महिमा गाऊँ मोह मल्ल को चूर करूँ।
मुनिसुव्रत को नित प्रति ध्याऊँ दोष अठारह दूर करूँ।।
नमि जिनेश को नमन करूँ मैं निज परिणति में रमण करूँ।
नेमिनाथ का नित्य ध्यान धर भाव शुभाशुभ शमन करूँ।।
पार्श्वनाथ प्रभु के चरणाम्बुज दर्शन कर भव भार हरूँ।
महावीर के पथ पर चलकर मैं भवसागर पार करूँ।।
चौबीसों तीर्थंकर प्रभु का भाव सहित गुणगान करूँ।
तुम समान निज पद पाने को शुद्धातम का ध्यान करूँ।।

ॐ ह्रीं श्री वृषभादिवीरान्तेभ्योः अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

श्री चौबीस जिनेश के, चरण कमल उर धार।
मन वच तन जो पूजते वे होते भव पार।।

(इत्याशीर्वादः परिपुष्पांजलि क्षिपेत्)

जाप्यमंत्र : ॐ ह्रीं श्री वृषभादिवीरान्तेभ्यो नमः।

श्री ऋषभदेव पूजन

(स्थापना)

जय आदिनाथ जिनेन्द्र जय जय जिन तीर्थंकरम्।
जय नाभि सुत मरुदेवी नंदन ऋषभ प्रभु जगदीश्वरम्॥
जय जयति त्रिभुवन तिलक चूडामणि वृषभ विश्वेश्वरम्।
देवाधिदेव जिनेश जय जय महाप्रभु परमेश्वरम्॥

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथ जिनेन्द्र! अत्र अवतर अवतर संवौषट् (आह्वाननम्)।
ॐ ह्रीं श्री आदिनाथ जिनेन्द्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः (स्थापनम्)।
ॐ ह्रीं श्री आदिनाथ जिनेन्द्र! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् (सन्निधिकरणम्)।

(अवतार)

समकित जल दो प्रभु आदि निर्मल भाव धरूँ।
दुःख जन्म मरण मिट जाय जल से धार करूँ।
जय ऋषभदेव जिनराज शिव सुख के दाता।
तुम सम हो जाता है स्वयं को जो ध्याता॥

ॐ ह्रीं श्री ऋषभदेव जिनेन्द्राय जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

समकित चंदन दो नाथ भव संताप हरूँ।
चरणों में मलय सुगंध हे प्रभु भेंट करूँ॥ जय ऋषभदेव..॥

ॐ ह्रीं श्री ऋषभदेव जिनेन्द्राय संसारताप विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

समकित तंदुल की चाह मन में मोद भरें।
अक्षत से पूजूं देव अक्षयपद संवरे॥ जय ऋषभदेव..॥

ॐ ह्रीं श्री ऋषभदेव जिनेन्द्राय अक्षयपद प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

समकित के पुष्प सुरम्य दे दो हे स्वामी।
यह काम भाव मिट जाय हे अन्तर्यामी॥ जय ऋषभदेव..॥

ॐ ह्रीं श्री ऋषभदेव जिनेन्द्राय कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

समकित चरु करो प्रदान मेरी भूख मिटे।
भव की तृष्णा ज्वाल उर से दूर हटे॥ जय ऋषभदेव..॥

ॐ ह्रीं श्री ऋषभदेव जिनेन्द्राय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

समकित दीपक की ज्योति मिथ्यातम भागे।
देखूं निज सहज स्वरूप निज परिणति जागे।।
जय ऋषभदेव जिनराज शिव सुख के दाता।
तुम सम हो जाता है स्वयं को जो ध्याता।

ॐ ह्रीं श्री ऋषभदेव जिनेन्द्राय मोहांधकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

समकित की धूप अनूप कर्म विनाश करे।
निज ध्यान अग्नि के बीच आठों कर्म जरे।। जय ऋषभदेव..।।

ॐ ह्रीं श्री ऋषभदेव जिनेन्द्राय अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

समकित फल मोक्ष महान पाउं आदि प्रभो।
हो जाऊँ सिद्ध समान सुखमय ऋषभ विभो।। जय ऋषभदेव..।।

ॐ ह्रीं श्री ऋषभदेव जिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

वसु द्रव्य अर्घ्य जिनदेव चरणों में अर्पित।
पाऊँ अनर्घ्य पद नाथ अविकल सुख गर्भित।। जय ऋषभदेव..।।

ॐ ह्रीं श्री ऋषभदेव जिनेन्द्राय अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंचकल्याणक अर्घ्य

शुभ आषाढ कृष्ण द्वितीया को मरुदेवी उर में आये।
देवों ने छह मास पूर्व से रत्न अयोध्या बरसाये।।
कर्म भूमि के प्रथम जिनेश्वर तज सर्वार्थ सिद्ध आये।
जय जय ऋषभनाथ तीर्थंकर तीन लोक ने सुख पाये।

ॐ ह्रीं श्री अषाढ कृष्ण द्वितीया दिने गर्भमंगल प्राप्तये ऋषभदेव जिनेन्द्राय अर्घ्यं..

चैत्र कृष्ण नवमी को राजा नाभिराय गृह जन्म लिया।
इन्द्रादिक ने गिरि सुमेरु पर क्षीरोदधि अभिषेक किया।।
नरक तिर्यंच सभी जीवों ने सुख अन्तर्मुहूर्त पाया।
जय जय ऋषभनाथ तीर्थंकर जग में पूर्ण हर्ष छाया।।

ॐ ह्रीं श्री चैत्र कृष्ण नवमी दिने जन्ममंगल प्राप्तये ऋषभदेव जिनेन्द्राय अर्घ्यं..

चैत्र कृष्ण नवमी को ही वैराग्य भाव उर छाया था।
लौकान्तिक सुर इन्द्रादिक ने तप कल्याण मनाया था॥
पंच महाव्रत धारण करके पंच मुष्टि कच लोंच किया।
जय प्रभु ऋषभदेव तीर्थंकर तुमने मुनि पद धार लिया॥

ॐ ह्रीं श्री चैत्र कृष्ण नवमी दिने तपमंगल प्राप्तये ऋषभदेव जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्व...

एकादशी कृष्ण फागुन को कर्म घातिया नष्ट हुए।
केवलज्ञान प्राप्त कर स्वामी वीतराग भगवंत हुए॥
दर्शन ज्ञान अनंत वीर्य सुख पूर्ण चतुष्टय को पाया।
जय प्रभु ऋषभदेव जगती ने समवसरण लख सुख पाया।

ॐ ह्रीं श्री फाल्गुन वदी एकादशी दिने ज्ञानमंगल प्राप्तये ऋषभदेव जिनेन्द्राय अर्घ्यं..

माघ वदी की चतुर्दशी को गिरि कैलाश हुआ पावन।
आठों कर्म विनाशे पाया परम सिद्ध पद मन भावन।
मोक्ष लक्ष्मी पाई गिरि कैलाश शिखर निर्वाण हुआ।
जय जय ऋषभदेव तीर्थंकर भव्य मोक्ष कल्याण हुआ।

ॐ ह्रीं श्री माघ कृष्ण चतुर्दशी दिने मोक्षमंगल प्राप्तये ऋषभदेव जिनेन्द्राय अर्घ्यं..

जयमाला

जम्बूद्वीप सु भरतक्षेत्र में नगर अयोध्यापुरी विशाल।
नाभिराय चौदहवें कुलकर के सुत मरुदेवी के लाल॥

सोलह स्वप्न हुए माता को पन्द्रह मास रत्न बरसे।
तुम आये सर्वार्थसिद्धि से माता उर मंगल सरसे॥

मति श्रुत अवधिज्ञान के धारी जन्मे हुए जन्मकल्याण।
इन्द्र सुरों ने हर्षित पाण्डुक शिला किया अभिषेक महान॥

राज्य अवस्था में तुमने जन जन के कष्ट मिटाये थे।
असि मसि कृषि वाणिज्य शिल्प विद्या षट् कर्म सिखाये थे॥

एक दिवस जब नृत्य लीन सुरि नीलांजना विलीन हुई।
है पर्याय अनित्य आयु उसकी पल भर में क्षीण हुई॥

तुमने वस्तु स्वरूप विचारा जागा उर वैराग्य अपार।
कर चिंतवन भावना द्वादश त्याग राज्य और परिवार॥
लौकान्तिक देवों ने आकर किया आपका जय जयकार।
आस्रव हेय जानकर तुमने लिया हृदय में संवर धार॥
वन सिद्धार्थ गये वट तरु नीचे वस्त्रों को त्याग दिया।
ओम नमः सिद्धेभ्यः कहकर मौन हुए तप ग्रहण किया॥
स्वयं बुद्ध बन कर्मभूमि में प्रथम सुजिन दीक्षाधारी।
ज्ञान मनःपर्यय पाया धर पंच महाव्रत सुखकारी॥
धन्य हस्तिनापुर के राजा श्रेयांस ने दान दिया।
एक सहस्र वर्ष तप कर प्रभु शुक्ल ध्यान में हो तल्लीन।
पाप पुण्य आस्रव विनाश कर हुए आत्म रस में लवलीन॥
चार घातिया कर्म विनाशे पाया अनुपम केवलज्ञान।
दिव्यध्वनि के द्वारा तुमने किया सकल जग का कल्याण॥
चौरासी गणधर थे प्रभु के पहले वृषभसेन गणधर।
मुख्य आर्यिकाश्री ब्राह्मी श्रोता मुख्य भरत नृपवर॥
भरत क्षेत्र के आर्य खंड में नाथ आपका हुआ विहार।
धर्मचक्र का हुआ प्रवर्तन सुखी हुआ सारा संसार॥
अष्टापद कैलाश धन्य हो गया तुम्हारा कर गुणगान।
बने अयोगी कर्म अघातिया नाश किये पाया निर्वाण॥
आज तुम्हारे दर्शन करके मेरे मन आनंद हुआ।
जीवन सफल हुआ हे स्वामी नष्ट पाप दुःख द्वन्द्व हुआ॥
यही प्रार्थना करता हूँ प्रभु उर में ज्ञान प्रकाश भरो।
चारों गतियों के भव संकट का, हे जिनवर नाश करो॥
तुम सम पद पा जाऊँ मैं भी यही भावना भाता हूँ।
इसीलिये यह पूर्ण अर्घ्य चरणों में नाथ चढ़ाता हूँ॥

ॐ ह्रीं श्री ऋषभदेव जिनेन्द्राय जयमाला महाअर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

वृषभ चिन्ह शोभित चरण, ऋषभदेव उर धार।
मन वच तन जो पूजते, वे होते भवपार।

।। इत्याशीर्वादः परिपुष्पांजलिं क्षिपेत् ।।

जाप्य मंत्र : ॐ ह्रीं श्री ऋषभनाथ जिनेन्द्राय नमः।

*

श्री आदिनाथ पूजन

(स्थापना)

(दोहा)

नमूँ जिनेश्वर देव मैं, परम सुखी भगवान।
आराधूं शुद्धात्मा, पाऊँ पद निर्वाण।।
हे धर्म पिता सर्वज्ञ जिनेश्वर, चेतन मूर्ति आदि जिनं।
मेरा ज्ञायक रूप दिखाने, दर्पण सम प्रभु आदि जिनं।।
सम्यग्दर्शन ज्ञान चरण पा, सहज सुधारस आप पिया।
मुक्तिमार्ग दरशाकर स्वामी, भव्यों प्रति उपकार किया।।
साधक शिवपद का अहो, आया प्रभु के द्वार।
सहज शुद्धातम भावना, जिन पूजा का सार।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्र! अत्र अवतर अवतर संवौषट् (आह्वाननं)।
ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः (स्थापनं)।
ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्र! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् (सन्निधिकरणम्)।

चेतनमय है सुख सरोवर, श्रद्धा पुष्प सुशोभित हैं।
आनन्द मोती चुगते हंस, सुकेलि करें सुख पाते हैं।।
स्वानुभूति के कलश कनकमय, भरि-भरि प्रभु को पूजें हैं।
ऐसे धर्मी निर्मल जल से, मिथ्या मैल को धोते हैं।।
अथाह सरवर आत्मा, आनन्द रस छलकाय।
आत्म शान्त रस पान से, जन्म मरण मिट जाय।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्रायः जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

मग्न प्रभु! चेतन सागर में, शीतल जल से न्हाय रहे।
मोह मैल को दूर हटाकर, भवाताप से रहित भये॥
तृप्त हो रहा मोह ताप से, सम्यक् रस में स्नान करूँ।
समरस चन्दन से पूजूं अरु, तेरा पथ अनुसरण करूँ॥
चेतन रस को घोलकर, चारित्र सुगन्ध मिलाय।
भाव सहित पूजा करूँ, शीतलता प्रगटाय॥

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्रायः संसारताप विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

अक्ष अगोचर प्रभो आप, पर अक्षत से पूज करूँ।
अक्षातीत ज्ञान प्रगटाकर, शाश्वत अक्षत प्राप्त करूँ।
अन्तर्मुख परिणति के द्वारा, प्रभुवर का सन्मान करूँ।
पूजूँ जिनवर परम भाव से, निज सुख का आस्वाद करूँ॥
अक्षय सुख का स्वाद लूँ, इन्द्रिय मन के पार।
सिद्ध प्रभु सुख मगन ज्यों, तिष्ठे मोक्ष मंझार॥

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अक्षयपद प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

निष्काम अतीन्द्रिय देव अहो! पूजूँ मैं श्रद्धा सुमन चढ़ा।
कृतकृत्य हुआ निष्काम हुआ, तब मुक्ति मार्ग में कदम बढ़ा॥
गुण अनंतमय पुष्प सुगन्धित, विकसित हैं निज आतम में।
कभी नहीं मुरझावें, परमानन्द पाया शुद्धातम में॥
रत्नत्रय के पुष्प शुभ, खिले आत्म उद्यान।
सहजभाव से पूजते हर्षित हूँ भगवान॥

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

तृप्त क्षुधा से रहित जिनेश्वर, चरु लेकर मैं पूजा करूँ।
अनुभव रसमय नैवेद्य सम्यक्, तुम चरणों में प्राप्त करूँ॥
चाह नहीं किंचित् भी स्वामी, स्वयं स्वयं में तृप्त रहूँ।
सादि अनंत मुक्तिपद जिनवर, आत्मध्यान से प्रकट लहूँ॥
जग का झूठा स्वाद तो, चाख्यो बार अनंत।
वीतराग निज स्वाद लूँ, होवे भव का अंत॥

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा॥

अगणित दीपों का प्रकाश भी, दूर नहीं अज्ञान करे।
आत्मज्ञान की एक किरण ही, मोहतिमिर को तुरत हरे।।
अहो ज्ञान की अद्भुत महिमा, मोही नहिं पहिचान सकें।
आत्मज्ञान का दीप जलाकर, साधक स्व-पर प्रकाश करें।।
स्वानुभूति प्रकाश में, भासे आत्म स्वरूप।
राग पवन लागे नहीं, केवल ज्योति अनूप।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय मोहांधकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

द्वेष भाव तो नहीं रहा, रागांश मात्र अवशेष रहा।
ध्यान अग्नि प्रगटी ऐसी, तहाँ कर्मेन्धन सब भस्म हुआ।।
अहो आत्मशुद्धि अद्भुत है, धर्म सुगन्धी फैल रही।
दशलक्षण की प्राप्ति करने, प्रभु चरणों की शरण गही।।
स्व सन्मुख हो अनुभवूँ, ज्ञानानन्द स्वभाव।
निज में ही हो लीनता, विनसैं सर्व विभाव।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

सम्यक् दर्शन मूल अहो! चारित्र वृक्ष पल्लवित हुआ।
स्वानुभूतिमय अमृत फल, आस्वादूँ अति ही तृप्त हुआ।।
मोक्ष महाफल भी आवेगा, निश्चय ही विश्वास अहो।
निर्विकल्प हो पूर्ण लीनता, फल पूजा का प्रभु फल हो।।
निर्वांछक आनन्दमय, चाह न रही लगार।
भेद न पूजक पूज्य का, फल पूजाका सार।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।।

सम्यक् तत्त्व स्वरूप न जाना, नहीं यथार्थतः पूज सका।
राग भाव को रहा पोषता, वीतरागता से चूका।।
काललब्धि जागी अंतर में, भास रहा है सत्य स्वरूप।
पाऊँगा निज सम्यक् प्रभुता, भास रही निज माँही अनूप।।
सेवा सत्य स्वरूप की, ये ही प्रभु की सेव।
जिन सेवा व्यवहार से, निश्चय आतम देव।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंचकल्याणक अर्घ्य

(सोरठा)

कलि अषाढ़ द्वय जान, सर्वार्थसिद्धि विमान से।
आये बसे भगवान, मरुदेवी के गर्भ में॥
गर्भवास नहीं इष्ट, तहां भी प्रभु आनन्दमय।
माँ के भी नहीं कष्ट, रत्न पिटारे ज्यों रहे॥

ॐ ह्रीं श्री आषाढ़कृष्णद्वितीयायां गर्भकल्याणकप्राप्ताय श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पृथ्वी हुई सनाथ, नवमी कृष्णा चैत को।
नरकों में भी नाथ, जन्म समय साता हुई॥
इन्द्रादिक शिर टेक, किया महोत्सव जन्म का।
मेरू पर अभिषेक, क्षीरोदधि तें प्रभु भयो॥

ॐ ह्रीं श्री चैत्रकृष्णनवम्यां जन्मकल्याणकप्राप्ताय श्री आदिनाथ-जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

भासा जगत आसार, देख निधन नीलांजना।
नवमी कृष्णा चैत्र परम दिगम्बर पद धरो॥
चिदानन्द पद सार, ध्याने को मुनि पद लिया।
परम हर्ष उर-धार, लौकान्तिक धनि-धनि कहा॥

ॐ ह्रीं श्री चैत्रकृष्णनवम्यां तपकल्याणकप्राप्ताय श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रगट्यो केवलज्ञान, फाल्गुन कृष्ण एकादशी।
धर्मतीर्थ अम्लान, हुआ प्रवर्तित आप से॥
समझा तत्त्व स्वरूप, दिव्य देशना श्रवण कर।
पाई मुक्ति अनूप, भविजन निज पुरुषार्थ से॥

ॐ ह्रीं श्री फाल्गुनकृष्णैकादश्यां ज्ञानकल्याणकप्राप्ताय श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पायो अविचल थान, चौदश कृष्णा माघ दिन।
गिरि कैलाश महान, तीर्थ प्रगट जग में हुआ॥
सहज मुक्ति दातार, शुद्धातम की भावना।
वर्ते प्रभु सुखकार, मैं भी तिष्ठूँ मोक्ष में॥

ॐ ह्रीं श्री माघकृष्णचतुर्दश्यां मोक्षकल्याणकप्राप्ताय श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

आदीश्वर वन्दूँ सदा, चिदानन्द छलकाय।
चरण-शरण में आपकी, मुक्ति सहज दिखाय॥

(वीरछन्द)

धन्य-ध्यान में आप विराजे, देख रहे प्रभु आतमराम।
ज्ञाता-दृष्टा अहो जिनेश्वर, परम ज्योतिमय आनन्दधाम॥

रत्नत्रय आभूषण साँचे, जड़ आभूषण का क्या काम।
राग द्वेष निःशेष हुए हैं, वस्त्र-शस्त्र का लेश न नाम॥

तीन लोक के स्वयं मुकुट हो, स्वर्ण मुकुट का है क्या काम।
प्रभु त्रिलोक के नाथ कहाओ, फिर भी निज में ही विश्राम॥

भव्य निहारें अहो आपको, आप निहारें अपनी ओर।
धन्य आपकी वीतरागता, प्रभुता का प्रभु ओर न छोर॥

आप नहीं देते कुछ भी पर, भक्त आप से ले लेते।
दर्शन कर उपदेश श्रवण कर, तत्त्वज्ञान को पा लेते॥

भेदज्ञान अरु स्वानुभूति कर, शिवपथ में लग जाते हैं।
अहो आप सम स्वाश्रय द्वारा, निज प्रभुता प्रगटाते हैं॥

जब तक मुक्ति नहीं होती, प्रभु पुण्य सातिशय होनेसे।
चक्री इन्द्रादिक के वैभव मिलें, अन्न संग के तुष से॥

पर उनको चाहे नहीं ज्ञानी, मिलें किन्तु आसक्त न हो।
निजानन्द अमृत रस पीते, विष-फल चाहे कौन अहो?

भाते नित वैराग्य भावना, क्षण में छोड़ चले जाते।
मुनि दीक्षा ले परम तपस्वी, निजमें ही रमते जाते॥

घोर परीषह उपसर्गों में मन सुमेरु नहीं कम्पित हो।
क्षण-क्षण आनन्दरस वृद्धिंगत, क्षपक श्रेणि आरोहण हो॥

शुक्ल ध्यान बल घाति विनष्टे, अर्हंत् दशा प्रगट होती।
अल्पकाल में सर्व कर्ममल, वर्जित मुक्ति सहज होती॥

परमानंदमय दर्श आपका, मंगल उत्तम शरण ललाम।
निरावरण निर्लेप परम प्रभु, सम्यक् भावे सहज प्रणाम॥

ज्ञान मांहिं स्थापन कीना, स्व-सन्मुख होकर अभिराम।
स्वयं सिद्ध सर्वज्ञ स्वभावी, प्रत्यक्ष निहारूँ आतमराम॥

(दोहा)

प्रभु नन्दन मैं आपका, हूँ प्रभुता सम्पन्न।
अल्पकाल में आपके, तिष्ठुँगा आसन्न॥

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपद प्राप्तये जयमाला महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

दर्शन-ज्ञान स्वभावमय, सुख अनंत की खान,
जाके आश्रय प्रगटता, अविचल पद निर्वान॥

॥ पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि॥

जाप्यमंत्र : ॐ ह्रीं श्री आदिनाथ जिनेन्द्राय नमः।

*

भक्ति

जिनवर चरण वर गंगा;
ताहि भजो भवि नित सुखदानी ।।टेक।।

स्याद्वाद हिम गिरि ते उपजी;
मोक्ष महासागर हि समानी ।।
ज्ञान-विराग रूप दोउ ढाये;
संयम भाव लहर हित आनी ।।१।।

धर्मध्यान जहाँ भंवर परत हैं;
शम-दम जामें सम-रस पानी ।
जिम-संस्तवन तरंग उठत हैं;
जहाँ नहीं भ्रम कीच निशानी ।।२।।

मोह-महागिरि चूर करत है;
रत्नत्रय शुद्ध पंथ ढलानी ।
सुर-नर-मुनि-खग आदिक पक्षी;
जहाँ रमत नित समरस ठानी ।।३।।

'मानिक' चित्त निर्मल स्थान करी;
फिर नहीं होत मलिन भव प्राणी ।

श्री चन्द्रप्रभ जिनपूजन

(स्थापना)

महासेन नृपनंद चंद्रप्रभ चंद्रनाथ जिनवर स्वामी।
मात लक्षमणा के प्रियनन्दन जगउद्धारक प्रभु नापी।।
निज आत्मानुभूति से पाई मोक्ष लक्ष्मी सुखधामी।
वीतराग सर्वज्ञ हितैषी करुणामय शिव पुरगामी।।

ॐ ह्रीं श्री चंद्रप्रभजिनेन्द! अत्र अवतर अवतर संवौषट (आह्वाननम्)।

ॐ ह्रीं श्री चंद्रप्रभजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः (स्थापनम्)

ॐ ह्रीं श्री चंद्रप्रभजिनेन्द्र! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् (सन्निधिकरणम्)।

तन की प्यास बुझाने वाला यह निर्मल जल लाया हूँ।
आत्मज्ञान की प्यास बुझाने प्रभु चरणों में आया हूँ।।
चंद्र जिनेश्वर चंद्र नाथ चन्द्रेश्वर चन्दा प्रभु स्वामी।
राग द्वेष परिणति के नाशक मंगलमय अन्तर्यामी।।

ॐ ह्रीं श्री चंद्रप्रभ जिनेन्द्राय जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

तन का ताप मिटाने वाला शीतल चंदन लाया हूँ।
राग आग की दाह मिटाने प्रभु चरणों में आया हूँ।। चन्द्र..।।

ॐ ह्रीं श्री चंद्रप्रभ जिनेन्द्राय संसारताप विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

परम शुद्ध अक्षय पद पाने उज्ज्वल अक्षत लाया हूँ।
भव समुद्र से पार उतर ने प्रभु चरणों में आया हूँ।। चन्द्र..।।

ॐ ह्रीं श्री चंद्रप्रभ जिनेन्द्राय अक्षयपद प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

कामबाण से घायल होकर पुष्प मनोहर लाया हूँ।
महाशील शीलेश्वर बनने प्रभु चरणों में आया हूँ।। चन्द्र..।।

ॐ ह्रीं श्री चंद्रप्रभ जिनेन्द्राय कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

षट् द्रव्यों से भूख न मिट पाई सो प्रभु चरु लाया हूँ।
आत्म तत्व की भूख मिटाने प्रभु चरणों में आया हूँ।। चन्द्र..।।

ॐ ह्रीं श्री चंद्रप्रभ जिनेन्द्राय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अन्धकार तम हरने वाला दीप प्रभामय लाया हूँ।
आत्म दीप की ज्योति जलाने प्रभु चरणों में आया हूँ।।
चंद्र जिनेश्वर चंद्र नाथ चन्द्रेश्वर चन्दा प्रभु स्वामी।
राग द्वेष परिणति के नाशक मंगलमय अन्तर्यामी।।

ॐ ह्रीं श्री चंद्रप्रभ जिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

पर परिणति का धुआ उड़ाने धूप सुगन्धित लाया हूँ।
अष्ट कर्म अरि पर जय पाने प्रभु चरणों में आया हूँ।। चन्द्र..।।

ॐ ह्रीं श्री चंद्रप्रभ जिनेन्द्राय अष्टकर्म विध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

पर दिभाव फल से पीड़ित होकर नूतन फल लाया हूँ।
अपना सिद्ध स्वपद पाने को प्रभु चरणों में आया हूँ।। चन्द्र..।।

ॐ ह्रीं श्री चंद्रप्रभ जिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्ताय फलं निर्वपामीति स्वाहा।

अष्ट द्रव्य का अर्घ्य मनोरम हर्षित होकर लाया हूँ।
चिदानन्द चिन्मय पद पाने प्रभु चरणों में आया हूँ।। चन्द्र..।।

ॐ ह्रीं श्री चंद्रप्रभ जिनेन्द्राय अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंचकल्याणक अर्घ्य

चैत्र कृष्ण पंचमी मात उर वैजयंत तज कर आए।
सोलह स्वप्न हुए माता को रत्न सुरों ने बरसाये।।
मात लक्ष्मणा स्वप्न फलों को जान हृदय में हर्षाये।
हुआ गर्भ कल्याण महोत्सव घर घर में आनन्द छाये।।

ॐ ह्रीं चैत्रकृष्णपंचम्यां गर्भमंगलप्राप्ताय श्री चंद्रप्रभजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति..

पौष कृष्ण एकादशम को चन्द्रनाथ का जन्म हुआ।
मेरु सुदर्शन पर मंगल उत्सव कर सुरपति धन्य हुआ।।
चन्द्रपुरी में बजी बधाई तीन लोक में सुख छाया।
महासेन राजा के गृह में देवों में मंगल गाया।।

ॐ ह्रीं पौषकृष्णएकादश्यां जन्ममंगलप्राप्ताय श्री चंद्रप्रभजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्व...

पौष कृष्ण एकादशी को राज्य आदि सब छोड़ दिया।
यह संसार असार जानकर तप से नाता जोड़ दिया।।
पंच महाव्रत धारण करके वस्त्राभूषण त्याग दिये।
तप कल्याण माया देवों ने जिनवर अनुराग लिये।।

ॐ ह्रीं पौषकृष्णएकादश्यां तपकल्याणक प्राप्ताय श्री चंद्रप्रभजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्व....

तीन मास छद्मस्थ रहे प्रभु उग्र तपस्या में हो लीन।
प्रतिमा योग धार चंदा प्रभु शुक्ल ध्यान में हुए स्वलीन।
ध्यान अग्नि से त्रेसठ कर्म प्रकृतियों का बल नाश किया।
फाल्गुन कृष्ण सप्तमी के दिन केवलज्ञान प्रकाश लिया।।

ॐ ह्रीं फल्गुन कृष्णसप्तम्यां केवलज्ञान प्राप्ताय श्री चंद्रप्रभजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्व...

शेष प्रकृति पिच्चासी का भी अन्त समय अवसान किया।
फाल्गुन शुक्ल सप्तमी के दिन प्रभु ने पद निर्वाण लिया।।
ललितकूट सम्मेदशिखर से चन्दा प्रभु जिन मुक्त हुए।
ऊर्ध्व गमन कर सिद्ध लोक में मुक्ति रमा से युक्त हुए।।

ॐ ह्रीं फाल्गुनशुक्ल सप्तम्यां मोक्षमंगल प्राप्ताय श्री चंद्रप्रभजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्व..

जयमाला

(दोहा)

चन्द्र चिन्ह चित्रित चरण चन्द्रनाथ चित धार।
चिन्तामणि श्री चन्द्रप्रभ चन्द्रामृत दातार।।

चंद्रपुरी के न्यायवान श्री महासेन राजा बलवान।
देवी लक्ष्मणा रानी उर से जन्मे चंद्रनाथ भगवान।।

इन्द्र शची सुर किन्नर यक्ष सभी ने गाये मंगलगान।
तीर्थंकर का जन्म जानकर धरती में भी आये प्राण।।

बड़े हुए प्रभु राजकाज में न्यायपूर्वक लीन हुए।
जग के भौतिक भोग भोगते सिंहासन आसीन हुए।।

इक दिन नभ में बिजली चमकी, नष्ट हुई तो किया विचार।
नाशवान पर्याय जान छाया तत्क्षण वैराग्य अपार।।
बन सर्वार्थ नागतरु नीचे परिजन परिकर थम सब त्याग।
पंच मुष्टि से केश लोंचकर किया महाव्रत से अनुराग।।
हुए तपस्या लीन आत्मा का ही प्रतिफल करते ध्यान।
शाश्वत निजस्वरूप आश्रय ले पाया तुमने केवलज्ञान।।
थे तिरानवे गणधर जिनमें प्रमुख दत्तस्वामी ऋषिवर।
मुख्य आर्यिका वरुणा, श्रोता दानवीर्य, आदिक सुरनर।।
समवशरण में तुमने प्रभुवर वस्तु तत्त्व उपदेश दिया।
उपादेय है एक आत्मा यह अनुपम सन्देश दिया।।
ज्ञाता दृष्टा बने जीव तो राग-द्वेष मिट जाता है।
जो निजात्मा में रहता है वही परम पद पाता है।।
हो अयोग केवली आपने हे स्वामी पाया निर्वाण।
अर्ध चन्द्र सम सिद्ध शिला पर पहुंचे चंदा प्रभु भगवान ।।
अर्ध चन्द्र शोभित चरणों में अष्टम तीर्थंकर स्वामी।
जन्म मरण का चक्र मिटाने आया हूँ अन्तर्यामी।।

ॐ ह्रीं श्री चंद्रप्रभ जिनेन्द्राय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चन्दा प्रभु के पद कमल भाव सहित उर धार।
मन बच तन जो पूजते वे होते भव पार।।

।। इत्याशीर्वादः परिपुष्पांजलिं क्षिपेत् ।।

जाप्यमंत्र— ॐ ह्रीं श्री चंद्रप्रभ जिनेन्द्राय नमः।

*

श्री शीतलनाथ जिनपूजन

जय प्रभु शीतलनाथ शील के सागर शील सिंधु शीलेश।
कर्मजाल के शीतलकर्ता केवलज्ञानी महा महेश॥
त्रैकालिक ज्ञायक स्वभाव ध्रुव के आश्रय से हुए जिनेश।
मुझको भी निज सम शीतल कर दो हे विनय यही परमेश॥

ॐ ह्रीं श्री शीतलनाथ जिनेन्द्र! अत्र अवतर-अवतर संवौषट् (आह्वाननम्)।

ॐ ह्रीं श्री शीतलनाथ जिनेन्द्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः (स्थापनम्)।

ॐ ह्रीं श्री शीतलनाथ जिनेन्द्र! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् (सन्निधिकरणं)।

निर्मल उज्ज्वल जलधार चरणों में सोहे।
यह जन्म रोग मिट जाय निज में मन मोहे॥
हे शीतलनाथ जिनेश शीतलता धारी।
हे शील सिन्धु शीलेश सब संकट हारी॥१॥

ॐ ह्रीं श्री शीतलनाथ जिनेन्द्राय जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

चन्दन सी सरस सुगन्ध मुझमें भी आये।
भव ताप दूर हो जाय शीतलता छाये॥ हे शीतल नाथ..॥२॥

ॐ ह्रीं श्री शीतलनाथ जिनेन्द्राय संसारताप विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

निज अक्षय पद का भान करने आया हूँ।
हर्षित हो शुभ्र अखण्ड तन्दुल लाया हूँ॥ हे शीतल नाथ..॥३॥

ॐ ह्रीं श्री शीतलनाथ जिनेन्द्राय अक्षयपद प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

कन्दर्प काम के पुष्प अब मैं दूर करूँ।
पर परिणति का व्यापार प्रभु चकचूर करूँ॥ हे शीतल नाथ..॥४॥

ॐ ह्रीं श्री शीतलनाथ जिनेन्द्राय कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

चरु सेवन रुचि दुखकार भव पीड़ादायक।
है क्षुधा रहित निज रूप सुखमय शिवनायक॥ हे शीतल नाथ..॥५॥

ॐ ह्रीं श्री शीतलनाथ जिनेन्द्राय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अज्ञान तिमिर घनघोर उर में छाया है।
रवि सम्यकज्ञान प्रकाश मुझको भाया है।।
हे शीतलनाथ जिनेश शीतलता धारी।
हे शील सिन्धु शीलेश सब संकट हारी।।६।।

ॐ ह्रीं श्री शीतलनाथ जिनेन्द्राय मोहांधकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

चारों कषायों का संघ हे प्रभु हट जाये।
हो कर्म चक्र का ध्वंस भव दुःख मिट जाये।। हे शीतल नाथ.. ।।७।।

ॐ ह्रीं श्री शीतलनाथ जिनेन्द्राय अष्टकर्म विध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

निर्वाण महाफल हेतु चरणों में आया।
दुःख रूप राग को जान अब निजगुण गाया।। हे शीतल नाथ.. ।।८।।

ॐ ह्रीं श्री शीतलनाथ जिनेन्द्राय महामोक्षफल प्राप्ताय फलं निर्वपामीति स्वाहा।

आत्मानुभूति की प्रीति निज में है जागी।
पाऊँ अनर्घ्य पद नाथ मिथ्या मति भागी।। हे शीतल नाथ.. ।।९।।

ॐ ह्रीं श्री शीतलनाथ जिनेन्द्राय अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंच कल्याणक अर्घ्य

चैत्र कृष्ण अष्टमी स्वर्ग अच्युत को तजकर तुम आये।
दिक्कुमारियों ने हर्षित हो मात सुनन्दा गुण गाये।।
इन्द्र आज्ञा से कुबेर नगरी रचना कर हर्षाये।
शीतल जिन के गर्भोत्सव पर रत्न सुरों ने बरसाये।।१।।

ॐ ह्रीं चैत्रकृष्णअष्टम्यां गर्भकल्याणकप्राप्ताय श्री शीतलनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्व.

भद्दिलपुर में राजा दृढरथ के गृह तुमने जन्म लिया।
माघ कृष्ण द्वादशी इन्द्रसुरों ने निज जीवन धन्य किया।।
गिरि सुमेरु पर पांडुकवन में क्षीरोदधि से न्हवन किया।
एक सहस्त्र अष्ट कलशों से हर्षित हो अभिषेक किया।।२।।

ॐ ह्रीं माघकृष्णद्वादश्यां जन्ममंगलप्राप्ताय श्री शीतलनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्व..

शरद मेघ परिवर्तन लख कर उर छाया वैराग्य महान।
लौकांतिक देवों ने आकर किया आपका तप कल्याण।।
सकल परिग्रह त्याग तपस्या करने वन को किया प्रयाण।
माघ कृष्ण द्वादशी सहेतुक वन में गूंजा जय जय गान।।३।।

ॐ ह्रीं माघकृष्ण द्वादश्यां तपकल्याणक प्राप्ताय श्री शीतलनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्व

पौष कृष्ण की चतुर्दशी को पाया स्वामी केवलज्ञान।
समवशरण की रचना कर देवों ने गाये मंगल गान।।
सकल विश्व को वस्तु तत्त्व उपदेश आपने दिया महान।
भद्दिलपुर में गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान हुए चारों कल्याण।।४।।

ॐ ह्रीं पौषकृष्णचतुर्दश्यां ज्ञानकल्याणक प्राप्ताय श्री शीतलनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं..

आश्विन शुक्ल अष्टमी को हर अष्ट कर्म पाया निर्वाण।
विद्युत कूट श्री सम्मेदशिखर पर हुआ मोक्ष कल्याण।।
शेष प्रकृति पच्चासी हरकर कर्म अघाति अभाव किया।
निज स्वभाव के साधन द्वारा मोक्ष स्वरूप स्वभाव लिया।।५।।

ॐ ह्रीं आश्विन शुक्लअष्टम्यां मोक्षकल्याणक प्राप्ताय श्री शीतलनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं..

जयमाला

जय जय शीतलनाथ शीलमय शील पुंज शीतल सागर।
शुद्ध रूप जिन शुचिमय शीतल शील निकेतन गुण आगर।।१।।

दशम तीर्थंकर हे जिनवर परम पूज्य शील स्वामी।
तुम समान मैं भी बन जाऊँ विनय सुनो त्रिभुवन नामी।।२।।

साम्य भाव के द्वारा तुमने निज स्वरूप का वरण किया।
पंच महाव्रत धारण कर प्रभु पर विभाव का हरण किया।।३।।

पुरी अरिष्टि पुनर्वसु नृप ने विधिपूर्वक आहार दिया।
प्रभु कर में पय धारा दे भव सिंधु सेतु निर्माण किया।।४।।

तीन वर्ष छद्मस्थ मौन रह आत्म ध्यान में लीन हुए।
चार घातिया का विनाशकर केवलज्ञान प्रवीण हुए।।५।।

ज्ञानावरणी दर्शनावरणी अन्तराय अरु मोह रहित।
दोष अठारह रहित हुए तुम छ्यालीस गुण से मण्डित।।६।।

क्षुधा तृषा, रति, खेद, स्वेद, अरु जन्म जरा चिंता विस्मय।
राग, द्वेष, मद, मोह, रोग, निन्द्रा, विषाद अरु मरण न भय।।७।।

शुद्ध, बुद्ध अरहन्त अवस्था पाई तुम सर्वज्ञ हुए।
देव अनन्त चतुष्टय प्रगटा निज में निज मर्मज्ञ हुए।।८।।

इक्यासी गणधर थे प्रभु के प्रमुख कुन्थुज्ञानी गणधर।
मुख्य आर्यिका श्रेष्ठ धारिणी श्रोता थे नृप सीमंधर।।९।।

तुम दर्शन करके हे स्वामी आज मुझे निज भान हुआ।
सिद्ध समान सदा पद मेरा अनुपम निर्मल ज्ञान हुआ।।१०।।

भक्ति भाव से पूजा करके यही कामना करता हूँ।
राग द्वेष परिणति मिट जाये यही भावना करता हूँ।।११।।

निर्विकल्प आनन्द प्राप्ति की आज हृदय में लगी लगन।
सम्यक पूजन फल पाने को तुम चरणों में हुआ मगन।।१२।।

निज चैतन्य सिंह अब जागे मोह कर्म पर जय पाऊँ।
निज स्वरूप अवलम्बन द्वारा शाश्वत शीतलता पाऊँ।।१३।।

ॐ ह्रीं श्री शीतलनाथ जिनेन्द्राय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोबा)

कल्पवृक्ष शोभित चरण शीतल जिन उर धार।
मन वच तन जो पूजते वे होते भव पार।।

।। इत्याशीर्वादः परिपुष्पांजलिं क्षिपामि ।।

ॐ ह्रीं श्री शीतलनाथ जिनेन्द्राय नमः।

श्री वासुपूज्यनाथ जिन पूजन

(छन्द)

जय श्री वासुपूज्य तीर्थंकर सुर नर मुनि पूजित जिनदेव।
ध्रुव स्वभाव निज का अवलंबन लेकर सिद्ध हुए स्वयमेव॥
घाति अघाति कर्म सब नाशे तीर्थंकर द्वादशम् सुदेव।
पूजन करता हूँ अनादि की मेटो प्रभु मिथ्यात्व कुटेव॥

ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्य जिनेन्द्र! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्य जिनेन्द्र! अत्र तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्य जिनेन्द्र! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

जल से तन बार-बार धोया पर शुचिता कभी नहीं आई।
इस हाड़-मांस-चर्म मय देह का जन्म-मरण अति दुखदाई॥
त्रिभुवन पति वासुपूज्य स्वामी प्रभु मेरी भव बाधा हर लो।
चारों गतियों के संकट हर हे प्रभु मुझको निज सम कर कर लो॥

ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्य जिनेन्द्राय जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

गुण शीतलता पाने को मैं चन्दन चर्चित करता आया।
भव चक्र एक भी घटा नहीं संताप न कुछ कम हो पाया॥ त्रिभुवन..॥

ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्य जिनेन्द्राय संसारताप विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

मुक्ता सम उज्ज्वल तंदुल से नित देह पुष्ट करता आया।
तन की जर्जरता रुकी नहीं भवकष्ट व्यर्थ भरता आया॥ त्रिभुवन..॥

ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्य जिनेन्द्राय अक्षयपद प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

पुष्पों की सुरभि सुहाई प्रभु पर निज की सुरभि नहीं भाई।
कंदर्प दर्प की चिरपीडा अबतक न शमन प्रभु हो पाई॥ त्रिभुवन..॥

ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्य जिनेन्द्राय कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

षट् रसमय विविध विविध व्यंजन जी भर-कर मैंने खाये।
पर भूख तृप्त न हो पाई दुख क्षुधा रोग के नित पाये॥ त्रिभुवन..॥

ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्य जिनेन्द्राय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दीपक नित ही प्रज्वलित किये अन्तरतम अब तक मिटा नहीं,
मोहान्धकार भी गया नहीं अज्ञान तिमिर भी हटा नहीं ।।
त्रिभुवन पति वासुपूज्य स्वामी प्रभु मेरी भव बाधा हर लो।
चारों गतियों के संकट हर हे प्रभु मुझको निज सम कर करलो ।।

ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्य जिनेन्द्राय मोहांधकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

शुभ अशुभ कर्म बंधन भाया संवर का तत्त्व कभी न मिला ।
निर्जरित कर्म कैसे हो जब दुखमय आस्रव का द्वार खुला ।। त्रिभुवन..।।

ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्य जिनेन्द्राय अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

भौतिक सुख की इच्छाओं का मैंने अब तक सम्मान किया ।
निर्वाण मुक्ति फल पाने को मैंने न कभी निज ध्यान किया ।। त्रिभुवन..।।

ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्य जिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जब तक अनर्घ्य पद मिले नहीं तब तक मैं अर्घ्य चढाऊँगा ।
निजपद मिलते ही हे स्वामी फिर कभी नहीं मैं आऊँगा ।। त्रिभुवन..।।

ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्य जिनेन्द्राय अनर्घ्यपद प्राप्ताये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

पंचकल्याणक अर्घ्य

त्यागा महा शुक्र का वैभव, माँ विजया उर में आये।
शुभ आषाढ कृष्ण षष्ठी को देवों ने मंगल गाये।।
चम्पापुर नगरी की कर रचना, नव बारह योजन विस्तृत।
वासुपूज्य के गर्भोत्सव पर हुए नगरवासी हर्षित।।१।।

ॐ ह्रीं श्री आषाढकृष्णषष्ठयां गर्भमंगलप्राप्ताय श्री वासुपूज्य जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्व..

फागुन कृष्णा चतुर्दशी को नाथ आपने जन्म लिया।
नृप वसुपूज्य पिता हर्षाये भरत क्षेत्र को धन्य किया।।
गिरि सुमेरु पर पांडुक वन में हुआ जन्मकल्याण महान।
वासुपूज्य का क्षीरोदधि से हुआ दिव्य अभिषेक प्रधान।।२।।

ॐ ह्रीं श्री फाल्गुन कृष्णचतुर्दश्या जन्ममंगलप्राप्ताय श्री वासुपूज्य जिनेन्द्राय अर्घ्यं..

फागुन कृष्ण चतुर्दशी को वन की ओर प्रयाण किया।
लौकांतिक देवर्षि सुरों ने आकर तप कल्याण किया॥
तभी नमः सिद्धेभ्यः कहकर इच्छाओं का दमन किया।
वासुपूज्य ने ध्यान लीन हो इच्छाओं का दमन किया॥३॥

ॐ ह्रीं फाल्गुनकृष्णचतुर्दश्या तपोमंगलप्राप्ताय श्री वासुपूज्य जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्व.

माघ शुक्ल की दोज मनोरम वासुपूज्य को ज्ञान हुआ।
समवशरण में खिरी दिव्यध्वनि जीवों का कल्याण हुआ॥
नाश किये घन घाति कर्म सब केवलज्ञान प्रकाश हुआ।
भव्यजनों के हृदय कमल का प्रभु से पूर्ण विकास हुआ॥४॥

ॐ ह्रीं श्री माघशुक्लद्वितीया केवलज्ञानप्राप्ताय श्री वासुपूज्य जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्व..

अंतिम शुक्ल ध्यान धर प्रभु ने कर्म अघाति किये चकचूर।
मुक्ति वधू के कंत हो गये योग मात्र को कर निज से दूर॥
भादव शुक्ला चतुर्दशी चम्पापुर से निर्वाण हुआ।
मोक्ष लक्ष्मी वासुपूज्य ने पाई जय जय गान हुआ॥५॥

ॐ ह्रीं श्री माघशुक्लचतुर्दश्यां मोक्षमंगलप्राप्ताय श्री वासुपूज्य जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्व..

जयमाला

वासुपूज्य विद्या निधि विघ्न विनाशक वागीश्वर विश्वेश।
विश्व विजेता विश्व ज्योति विज्ञानी विश्वदेव विविधेश॥
चम्पापुर के महाराज वसुपूज्य पिता विजया माता।
तुमको पाकर धन्य हुए हे वासुपूज्य मंगल दाता॥
अष्ट वर्ष की अल्प आयु में तुमने अणुव्रत धार लिया।
यौवन वय में ब्रह्मचर्य आजीवन अंगीकार किया॥
पंच मुष्टि कचलोंच किया सब वस्त्राभूषण त्याग दिये।
विमल भावना द्वादश भाई पंच महाव्रत ग्रहण किये॥
स्वयं बुद्ध हो नमः सिद्ध कह पावन संयम अपनाया।
मति, श्रुत, अवधि जन्म से था अब ज्ञान मनःपर्यय पाया॥

एक वर्ष छद्मस्थ मौन रह आत्म साधना की तुमने।
उग्र तपस्या के द्वारा ही कर्म निर्जरा की तुमने॥
श्रेणी क्षपक चढ़े तुम स्वामी मोहनीय का नाश किया।
पूर्ण अनन्त चतुष्टय पाया पद अरहंत महान लिया॥
विचरण करके देश देश में मोक्षमार्ग उपदेश दिया।
जो स्वभाव का साधन साधे, सिद्ध बने, संदेश दिया॥
प्रभु के छ्यासठ गणधर जिनमें प्रमुख श्रीमंदिर ऋषिवर।
मुख्य आर्यिका वरसेना थीं नृपति स्यवंभू श्रोतावर॥
प्रायश्चित्त व्युत्सर्ग, विनय, वैरुयावृत्त स्वाध्याय अरुध्यान।
अन्तरंग तप छह प्रकार का तुमने बतलाया भगवान॥
कहा बाह्य तप छ प्रकार उनोदर कायक्लेश अनशन।
रसपरित्याग सुव्रत परिसंख्या, विविक्त शय्यासन पावन॥
ये द्वादश तप जिन मुनियों को पालन करना बतलाया।
अणुव्रत शिक्षाव्रत गुणव्रत द्वादशव्रत श्रावक का गाया॥
चम्पापुर में हुए पंचकल्याण आपके मंगलमय।
गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान, मोक्ष कल्याण भव्यजन को सुखमय॥
परमपूज्य चम्पापुर की पावन भू को शत-शत वन्दन।
वर्तमान चौबीसी के द्वादशम् जिनेश्वर नित्य नमन॥
मैं अनादि से दुःखी, मुझे भी निज बल दो भववास हरूँ।
निज स्वरूप का अवलम्बन ले अष्टकर्म अरि नाश करूँ॥

ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्य जिनेन्द्राय गर्भजन्मतपज्ञानमोक्षकल्याण प्राप्ताय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा) महिष चिह्न शोभित चरण, वासुपूज्य उर धार।
मन वच तन जो पूजते, वे होते भव पार॥

॥ इत्याशीर्वादः परिपुष्पांजलिं क्षिपेत् ॥

जाप्यमंत्र– ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्य जिनेन्द्राय नमः।

श्री अनन्तनाथ जिन पूजन

स्थापना

जय जय जयति अनन्तनाथ प्रभु शुद्ध ज्ञानधारी भगवान।
परम पूज्य मंगलमय प्रभुवर गुण अनन्तधारी भगवान।।
केवलज्ञान लक्ष्मी के पति भव भय दुखहारी भगवान।
परम शुद्ध अव्यक्त अगोचर भव भव सुखकारी भगवान।।
जय अनन्त प्रभु अष्टकर्म विध्वंसक शिवकारी भगवान।
महामोक्षपति परम वीतरागी जग हितकारी भगवान।।

ॐ ह्रीं श्री अनंतनाथ जिनेन्द्र! अत्र अवतर अवतर संवौषट् (आह्वाननम्)।

ॐ ह्रीं श्री अनंतनाथ जिनेन्द्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः (स्थापनम्)।

ॐ ह्रीं श्री अनंतनाथ जिनेन्द्र! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् (सन्निधिकरणम्)।

मैं अनादि से जन्म मरण की ज्वाला में जलता आया।
सागर जल से बुझी न ज्वाला तो मैं सम्यक् जल लाया।।
जय जिनराज अनन्तनाथ प्रभु तुम दर्शन कर हर्षाया।
गुण अनन्त पाने को पूजन करने चरणों में आया।।

ॐ ह्रीं श्री अनंतनाथ जिनेन्द्राय जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

भव पीड़ा के दुष्कर बन्धन से न मुक्त प्रभु हो पाया।
भवाताप की दाह मिटाने मलयागिरि चंदन लाया।। जय..।।

ॐ ह्रीं श्री अनंतनाथ जिनेन्द्राय संसारताप विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

पर भावों के महाचक्र में फंसकर नित गोता खाया।
भव समुद्र से पार उतरने निज अखण्ड तंदुल लाया।। जय..।।

ॐ ह्रीं श्री अनंतनाथ जिनेन्द्राय अक्षयपद प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

कामबाण की महा व्याधि से पीड़ित हो अति दुःख पाया।
सुदृढ़ भक्ति नौका में चढ़कर शील पुष्प पाने आया।। जय..।।

ॐ ह्रीं श्री अनंतनाथ जिनेन्द्राय कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

विविध भाँति के षटरस व्यंजन खाकर तृप्त न हो पाया।
क्षुधा रोग से विनिर्मुक्ति होने नैवेद्य भेंट लाया।।
जय जिनराज अनन्तनाथ प्रभु तुम दर्शन कर हर्षाया।
गुण अनन्त पाने को पूजन करने चरणों में आया।।

ॐ ह्रीं श्री अनंतनाथ जिनेन्द्राय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पर परिणति के रूप जाल में पड़ निज रूप न लख पाया।
मिथ्या भ्रम हर ज्ञान ज्योति पाने को नवल दीप लाया।। जय..।।

ॐ ह्रीं श्री अनंतनाथ जिनेन्द्राय मोहांधकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

नरक तिर्यंच देव नर गति में भव अनन्त धर पछताया।
चहुँगति का अभाव करने को निर्मल शुद्ध धूप लाया।। जय..।।

ॐ ह्रीं श्री अनंतनाथ जिनेन्द्राय अष्टकर्म विध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

भाव शुभाशुभ दुःख के कारण इनसे कभी न सुख पाया।
संवर सहित निर्जरा द्वारा मोक्ष सुफल पाने आया।। जय..।।

ॐ ह्रीं श्री अनंतनाथ जिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

देह भोग संसार राग में रहा विराग नहीं भाया।
सिद्ध शिला सिंहासन पाने अर्घ्य सुमन लेकर आया।। जय..।।

ॐ ह्रीं श्री अनंतनाथ जिनेन्द्राय अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंचकल्याणक अर्घ्य

कार्तिक कृष्णा एकम के दिन हुआ गर्भ कल्याण महान।
माता जय श्यामा उर आये पुष्पोत्तर का त्याग विमान।।
नव बारह योजन की नगरी रची अयोध्या श्रेष्ठ महान।
जय अनन्त प्रभु मणि वर्षा की पन्द्रह मास सुरों ने आन।।१।।

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्ण प्रतिपदायां गर्भकल्याणक प्राप्ताय श्री अनंतनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं.

नगर अयोध्या सिंहसेन नृप के गृह गूंजी शहनाई।
ज्येष्ठ कृष्ण द्वादश को जन्मे सारी जगती हर्षाई।।

ऐरावत पर गिरि सुमेरु ले जा सुरपति नन्हवन किया।
जय अनन्त प्रभु सुर सुरांगनाओं ने मंगल नृत्य किया॥

ॐ ह्रीं ज्येष्ठकृष्णद्वादश्यां जन्मकल्याणक प्राप्ताय श्री अनंतनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं..

उल्कापात देखकर तुमको एक दिवस वैराग्य हुआ।
ज्येष्ठ कृष्ण द्वादश को स्वामी राज्यपाट का त्याग हुआ॥
गये सहेतुक वन में तरू अश्वस्थ निकट दीक्षा धारी।
जय अनन्त प्रभु नग्न दिगम्बर वीतराग मुद्रा धारी॥

ॐ ह्रीं ज्येष्ठकृष्ण द्वादश्यां तपकल्याणक प्राप्ताय श्री अनंतनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्व.

एक मास तक प्रतिमायोग धारकर शुक्ल ध्यान किया।
चार घातिया कर्म नाशकर तुमने केवल ज्ञान लिया॥
चैत्र मास की कृष्ण अमावस्या को शिव संदेश दिया।
जय अनन्तजिन भव्यजनों को परम श्रेष्ठ उपदेश दिया॥

ॐ ह्रीं चैत्रकृष्ण अमावस्यायां ज्ञानकल्याणक प्राप्ताय श्री अनंतनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं.

चैत्र कृष्ण की ज्येष्ठ अमावस्या तुमने निर्वाण लिया।
कूट स्वयंभू सम्मेदाचल देवों ने जय जय गाान किया॥
हो अयोग केवली योग का प्रथम समय में अन्त किया।
जय अनन्त प्रभु निज सिद्धत्व प्रकट कर पद भगवंत लिया॥

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्ण अमावस्यायां मोक्षमंगल प्राप्ताय श्री अनंतनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं.

जयमाला

चतुर्दशम् तीर्थंकर स्वामी पूज्य अनन्तनाथ भगवान।
दिव्यध्वनि के द्वारा तुमने किया भव्यजन का कल्याण॥

थे पचास गणधर जिनमें पहले गणधर थे जय मुनिवर।
सर्वश्री थी मुख्य आर्यिका श्रोता भव्य जीव सुर नर॥

चौदह जीवसमास मार्गणा चौदह तुमने बतलाये।
चौदह गुणस्थान जीवों के परिणामों के दरशये॥

बादर सूक्ष्म जीव एकेन्द्रिय पर्याप्तक व अपर्याप्तक।
दो इन्द्रिय जय इन्द्रिय चतुइन्द्रिय पर्याप्त अपर्याप्तक॥
संज्ञी और असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त अपर्याप्तक।
ये ही चौदह जीवसमास जीव के जगमें परिचायक॥
गति इन्द्रिय कषाय अरु लेश्या वेद योग संयम सम्यक्त्व।
काय आहार ज्ञान दर्शन अरु है संज्ञित्व और भव्यत्व॥
यह चौदह मार्गणा जीव की होती है इनसे पहचान।
पचानवें भेद हैं इनके जीव सदा है सिद्ध समान॥
गति है चार पाँच इन्द्रिय छह लेश्याएँ पच्चीस कषाय।
वेद तीन सम्यक्त्व भेद छह पन्द्रह योग और षटकाय॥
दो आहार चार दर्शन हैं, संयम सात अष्ट हैं ज्ञान।
दो संज्ञित्व और है दो भव्यत्व मार्गणा भेद प्रधान॥
गुणस्थान मार्गणा व जीवसमास सभी व्यवहार कथन।
निश्चय से ये नहीं जीव के इन सबसे अतीत चेतन॥
मूल प्रकृतियाँ कर्म आठ ज्ञानावरणादिक होती है।
उत्तर प्रकृति एक सौ अड़तालीस कर्म की होती है॥
गुणस्थान मिथ्यात्व प्रथम में एक शतक सत्रह का बंध।
दूजे सासादन में होता एक शतक एक का बन्ध॥
मिश्र तीसरे गुणस्थान में प्रकृति चौहत्तर का हो बन्ध।
चौथे अविरति गुस्थान में प्रकृति सतत्तर का हो बन्ध॥
पंचम देशविरति में होता उनसठ कर्म प्रकृति का बन्ध।
गुणस्थान षष्टम प्रमत्त में त्रेसठ कर्म प्रकृति का बन्ध॥
सप्तम् अप्रमत्त में होता उनसठ कर्म प्रकृति का बन्ध।
अष्ट अपूर्वकरण में हो अट्ठावन कर्म प्रकृति का बन्ध॥
नौ में अनिवृत्तिकरण में होता है बाईस प्रकृति का बन्ध।
दसवें सूक्ष्मसाम्पराय में सत्ररह कर्म प्रकृति का बन्ध॥

ग्यारहवें उपशांतमोह में एक प्रकृति साता का बन्ध।
क्षीणमोह बारहवें में है एक प्रकृति साता का बन्ध॥
है सयोग केवली त्रयोदश एक प्रकृति साता का बन्ध।
हैं अयोग केवली चतुर्दश किसी प्रकृति का कोई न बन्ध॥
अष्टम गुणस्थान से उपशम क्षपक श्रेणी होती प्रारम्भ।
उपशम तो दस ग्यारह तक है नव दस बारह क्षायक रम्य॥
अविरत गुणस्थान चौथे में होता सात प्रकृति का क्षय।
पंचम षष्टम सप्तम में होता हैं तीन प्रकृति का क्षय॥
नवमे गुणस्थान में होती है छत्तीस प्रकृति का क्षय।
दसवें गुणस्थान में होता केवल एक प्रकृति का क्षय॥
क्षीणमोह बारहवें में हो सोलह कर्म प्रकृति का क्षय।
इस प्रकार चौथे से बारहवें तक त्रेसठ प्रकृति विलय॥
गुणस्थान तेरहवें में सर्व अनन्त चतुष्टयवान।
जीवन मुक्त परम औदारिक सकल ज्ञेय ज्ञायक भगवान॥
चौदहवें में शेष प्रकृति पिच्चासी का होता है क्षय।
प्रकृति एक सौ अड़तालीस कर्म की होती पूर्ण विलय॥
ऊर्ध्व गमनकर देह मुक्त हो सिद्ध शिला लोकाग्र निवास।
पूर्ण सिद्ध पर्याय प्रगट, होता है सादि अनन्त प्रकाश॥
काल अनन्त व्यर्थ ही खोये दुःख अनन्त अब तक पाये।
द्रव्य क्षेत्र अरू काल भाव-भव परिवर्तन पाँचों पाये॥
पर भावों में मग्न रहा तो रही विकारी ही पर्याय।
निजस्वभाव का आश्रय लेता होती प्रगट शुद्ध पर्याय॥
अष्ट कर्म से रहित अवस्था पाऊँ परम शुद्ध हे देव।
शुद्ध त्रिकाली ध्रुव स्वभाव से मैं भी सिद्ध बनूँ स्वयमेव॥
इसीलिए हे स्वामी मैंने अष्ट द्रव्य से की पूजन।
तुम समान मैं भी बनजाऊँ ले निज ध्रुव का अवलंब॥

ॐ ह्रीं श्री अनंतनाथ जिनेन्द्राय गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान, निर्वाणकल्याण प्राप्ताय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सेही चिन्ह चरण में शोभित श्री अनंतप्रभु पद उर धार।
मन वच तन जो ध्यान लगाते हो जाते भव सागर पार॥

॥ इत्याशीर्वादः परिपुष्पांजलिं क्षिपामि॥

जाप्यमंत्र : ॐ ह्रीं श्री अनंतनाथ जिनेंद्राय नमः।

*

श्री शांतिनाथ जिन पूजन

शांति जिनेश्वर हे परमेश्वर परमशान्त मुद्रा अभिराम।
पंचम चक्री शान्ति सिन्धु सोलहवें तीर्थंकर सुख धाम॥
निजानन्द में लीन शांति नायक जग गुरु निश्चल निष्काम।
श्री जिन दर्शन पूजन अर्चन वंदन नित प्रति करूँ प्रणाम॥

ॐ ह्रीं श्री शांतिनाथ जिनेन्द्र! अत्र अवतर-अवतर संवौषट् (आह्वाननम्)।
ॐ ह्रीं श्री शांतिनाथ जिनेन्द्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः (स्थापनम्)।
ॐ ह्रीं श्री शांतिनाथ जिनेन्द्र! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् (सन्निधिकरणम्)।

जल स्वभाव शीतल मलहारी आत्म स्वभाव शुद्ध निर्मल।
जन्म मरण मिट जाये प्रभु जब जागे निजस्वभाव का बल॥
परम शांतिसुखदाय शांति विधायक शांतिनाथ भगवान।
शाश्वत सुख की मुझे प्राप्ति हो श्री जिनवर दो यह वरदान॥१॥

ॐ ह्रीं श्री शांतिनाथ जिनेन्द्राय जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

शीतल चंदन गुण सुगंधमय निज स्वभाव अति ही शीतल।
पर विभाव का ताप मिटाता निज स्वरूप का अंतर्बल॥परम..॥२॥

ॐ ह्रीं श्री शांतिनाथ जिनेन्द्राय संसारताप विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

भव अटवी से निकल न पाया पर पदार्थ में अटका मन।
यह संसार पार करने का निज स्वभाव ही है साधन॥परम..॥३॥

ॐ ह्रीं श्री शांतिनाथ जिनेन्द्राय अक्षयपद प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

कोमल पुष्प मनोरम जिनमें राग आग की दाह प्रबल।
निज स्वरूप की महाशक्ति से काम व्यथा होती निर्बल।।
परम शांति सुखदाय शांति विधायक शांतिनाथ भगवान।
शाश्वत सुख की मुझे प्राप्ति हो श्री जिनवर दो यह वरदान।।४।।

ॐ ह्रीं श्री शांतिनाथ जिनेन्द्राय कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

उर की क्षुधा मिटाने वाला यह चरु तो दुखदायक है।
इच्छाओं की भूख मिटाता निज स्वभाव सुखदायक है।।परम..।।५।।

ॐ ह्रीं श्री शांतिनाथ जिनेन्द्राय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अन्धकार में भ्रमते-भ्रमते भव-भव में दुख पाया है।
निजस्वरूप के ज्ञान भानु का उदय न अबतक आया है।।परम..।।६।।

ॐ ह्रीं श्री शांतिनाथ जिनेन्द्राय मोहांधकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

इष्ट अनिष्ट संयोगों में ही अब तक सुख दुःख माना है।
पूर्ण त्रिकाली ध्रुव स्वभाव का बल न कभी पहचाना है।।परम..।।७।।

ॐ ह्रीं श्री शांतिनाथ जिनेन्द्राय अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

शुद्ध भाव पीयूष त्यागकर पर को अपना मान लिया।
पुण्य फलों में रूचि करके अबतक मैंने विषपान किया।।परम..।।८।।

ॐ ह्रीं श्री शांतिनाथ जिनेन्द्राय महामोक्षफल प्राप्ताय फलं निर्वपामीति स्वाहा।

अविनश्वर अनुपम अनर्घ्यपद सिद्ध स्वरूप महा सुखकार।
मोक्ष भवन निर्माता निज चैतन्य राग नाशक अघहार।।परम..।।९।।

ॐ ह्रीं श्री शांतिनाथ जिनेन्द्राय अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंचकल्याणक अर्घ्य

भादव कृष्ण सप्तमी के दिन तज स्वार्थ सिद्धि आये।
माता ऐरा धन्य हो गयी विश्वसेन नृप हरषाये।।
छप्पन दिक्कुमारियों ने नित नवल गीत मंगल गाये।
शांतिनाथ के गर्भोत्सव पर रत्न इन्द्र ने बरसाये।।

ॐ ह्रीं भाद्रपद कृष्ण सप्तम्यां गर्भमंगल प्राप्ताय श्री शांतिनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्व..

नगर हस्तिनापुर में जन्मे त्रिभुवन में आनन्द हुआ।
ज्येष्ठ कृष्ण की चतुर्दशी को सुरगिरि पर अभिषेक हुआ।।
मंगल वाद्य नृत्य गीतों से गूंज उठा था पाण्डुक वन।
हुआ जन्म कल्याण महोत्सव शांतिनाथ प्रभु का शुभदिन।।

ॐ ह्रीं ज्येष्ठकृष्ण चतुर्दश्यां जन्ममंगल प्राप्ताय श्री शांतिनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्व..

मेघ विलय लख इस जग की अनित्यता का प्रभु भान लिया।
लौकांतिक लोगों ने आकर धन्य धन्य जयगान किया।।
कृष्ण चतुर्दशि ज्येष्ठ मास की अतुलित वैभव त्याग दिया।
शांतिनाथ ने मुनिव्रत धारा शुद्धातम अनुराग किया।।

ॐ ह्रीं ज्येष्ठकृष्ण चतुर्दश्यां तपोमंगल प्राप्ताय श्री शांतिनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्व..

पौष शुक्ल दशमी को चारों घातिकर्म चकचूर किया।
पाया केवलज्ञान जगत के सारे संकट दूर किये।।
समवशरण रचकर देवों ने किया ज्ञानकल्याण महान।
शांतिनाथ प्रभु की महिमा का गूंजा जग में जयजयगान।।

ॐ ह्रीं पौषशुक्लदशम्यां केवलज्ञानप्राप्ताय श्री शांतिनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्व..

ज्येष्ठ कृष्ण की चतुर्दशी को प्राप्त किया सिद्धत्वमहान।
कूट कुन्दप्रभु गिरि सम्मेदशिखर से पाया पद निर्वाण।।
सादि अनन्त सिद्ध पद को प्रगटाया प्रभु ने धरनिजध्यान।
जयजय शांतिनाथ जगदीश्वर अनुपम हुआ मोक्षकल्याण।।

ॐ ह्रीं ज्येष्ठ कृष्णा चतुर्दश्यां मोक्षमंगलप्राप्ताय श्री शांतिनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्व.

जयमाला

शांतिनाथ शिवनायक शांति विधायक शुचिमय शुद्धात्मा।
शुभ्र मूर्ति शरणागत वत्सल शीलस्वभावी शुद्धात्मा।।

नगर हस्तिनापुर के अधिपति विश्वसेन नृप के नन्दन।
मा ऐरा के राज दुलारे सुर नर मुनि करते वन्दन।।

कामदेव बारहवें पंचम चक्री तीन ज्ञान धारी।
बचपन में अणुव्रत धर यौवन में पाया वैभव भारी॥
भरतक्षेत्र के षट् खण्डों को जय कर हुए चक्रवर्ती।
नव निधि चौदह रत्न प्राप्त कर शासक हुए न्यायवर्ती॥
इस जग के उत्कृष्ट भोग भोगते बहुत जीवन बीता।
एक दिवस नभ में घन का परिवर्तन लख निज मन रीता॥
यह संसार असार जानकर तपधारण का किया विचार।
लौकांतिक देवर्षि सुरों ने किया हर्ष से जय जयकार॥
वन में जाकर दीक्षाधारी पंच मुष्टि कचलोंच किया।
चक्रवर्ति की अतुल सम्पदा क्षण में त्याग विराग लिया॥
मन्दिरपुर के जप सुमित्र ने भक्तिपूर्वक दान दिया।
प्रभु कर में पय धारा दे भव सिंधु सेतु निर्माण किया॥
उच्च तपस्या से तुमने कर्मों की कर निर्जरा महान।
सोलह वर्ष मौन तप करके ध्याया शुद्धातम का ध्यान॥
श्रेणी क्षपक चढ़े स्वामी केवलज्ञानी सर्वज्ञ हुए।
दिव्य ध्वनि से जीवों को उपदेश दिया विश्वज्ञ हुए॥
गणधर थे छत्तीस आपके चक्रायुद्ध पहले गणधर।
मुख्य आर्यिका हरिषेणा थी श्रोता पशु नर सुर मुनिवर॥
कर विहार जग पे जगती के जीवों का कल्याण किया।
उपादेय है शुद्ध आत्मा यह संदेश महान दिया॥
पाप-पुण्य शुभ-अशुभ आस्रव जग में भ्रमण कराते हैं।
जो संवर धारण करते हैं परम मोक्ष पद पाते हैं॥
सात तत्व की श्रद्धा करके जो भी समकित धरते हैं।
रत्नत्रय का अवलम्बन ले मुक्ति वधू को वरते हैं॥
सम्मेदाचल के पावन पर्वत पर आप हुए आसीन।
कूट कुन्दप्रभ से अघातिया कर्मों से भी हुए विहीन॥

महामोक्ष निर्वाण प्राप्तकर गुण अनन्त से युक्त हुए।
शुद्ध बुद्ध अविरुद्ध सिद्ध पद पाया भव से मुक्त हुए।।१६।।

हे प्रभु शांतिनाथ मंगलमय मुझको भी ऐसा वर दो।
शुद्ध आत्मा की प्रतीति मेरे उर में जाग्रत कर दो।।१७।।

पाप ताप संताप नष्ट हो जाये सिद्ध स्वपद पाऊँ।
पूर्ण शांतिमय शिवसुख पाकर फिर न लौट भव में आऊँ।।१८।।

ॐ ह्रीं श्री शांतिनाथ जिनेन्द्राय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चरणों में मृग चिन्ह सुशोभित शांति जिनेश्वर का पूजन।
भक्ति भाव से जो करते हैं वे पाते हैं मुक्ति गगन।।

।। इत्याशीर्वादः परिपुष्पांजलिं क्षिपेत् ।।

जाप्यमंत्र – ॐ ह्रीं श्री शांतिनाथ जिनेद्राय नमः।

*

श्री नेमिनाथ जिनपूजा

जय श्री नेमिनाथ तीर्थंकर बाल ब्रह्मचारी भगवान।
हे जिनराज पर उपकारी करुणा सागर दया निधान।।
दिव्यध्वनि के द्वारा हे प्रभु तुमने किया जगत कल्याण।
श्री गिरनार शिखर से पाया तुमने सिद्ध स्व पद निर्वाण।।
आज तुम्हारे दर्शन करके निज स्वरूप का आया ध्यान।
मेरा सिद्ध समान सदा पद यह दृढ़ निश्चय हुआ महान।।

ॐ ह्रीं श्री नेमिनाथ जिनेन्द्र! अत्र अवतर अवतर संवौषट् (आह्वाननम्)।
ॐ ह्रीं श्री नेमिनाथ जिनेन्द्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः (स्थापनम्)।
ॐ ह्रीं श्री नेमिनाथ जिनेन्द्र! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट (सन्निधिकरणम्)।

समकित जल की धारा से तो मिथ्या भ्रम घुल जाता है।
तत्त्वों का श्रद्धान स्वयं को शाश्वत मंगल दाता है।।

नेमिनाथ स्वामी तुम पद पंकज की करता हूँ पूजन।
वीतराग तीर्थंकर तुमको कोटि–कोटि मेरा वंदन।।
ॐ ह्रीं श्री नेमिनाथ जिनेन्द्राय मिथ्यात्वमल विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

सम्यक् श्रद्धा का पावन चन्दन भव ताप मिटाता है।
क्रोध कषाय नष्ट होती है निज की अरुचि हटाता है।। नेमिनाथ.।।
ॐ ह्रीं श्री नेमिनाथ जिनेन्द्राय क्रोधकषाय विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

भाव शुभाशुभ का अभिमानी मान कषाय बढाता है।
वस्तु स्वभाव जान जाता तो मान कषाय मिटाता है।। नेमिनाथ.।।
ॐ ह्रीं श्री नेमिनाथ जिनेन्द्राय मानकषाय विनाशनाय अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

चेतन छल से पर भावों का माया जाल बिछाता है।
भव भव की माया कषाय को समकित पुष्प मिटाता है।। नेमिनाथ.।।
ॐ ह्रीं श्री नेमिनाथ जिनेन्द्राय मायाकषाय विनाशनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

तृष्णा की ज्वाला से लोभी कभी नहीं सुख पाता है।
सम्यक् चरू से लोभ नाश कर यह शुचिमय हो जाता है।। नेमिनाथ.।।
ॐ ह्रीं श्री नेमिनाथ जिनेन्द्राय लोभकषाय विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अन्धकार अज्ञान जगत में भव–भव भ्रमण कराता है।
समकित दीप प्रकाशित हो तो ज्ञान नेत्र खुल जाता है।। नेमिनाथ.।।
ॐ ह्रीं श्री नेमिनाथ जिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

पर विभाव परिणति में फंसकर निज का धुआं उडाता है।
निज स्वरूप की गंध मिले तो परकी गन्ध जलाता है।। नेमिनाथ.।।
ॐ ह्रीं श्री नेमिनाथ जिनेन्द्राय विभावपरिणति विनाशनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

निज स्वभाव फल पाकर चेतन महा मोक्ष फल पाता है।
चहुंगति के बन्धन कटते हैं सिद्ध स्वपद पा जाता है।। नेमिनाथ.।।
ॐ ह्रीं श्री नेमिनाथ जिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल फलादि वसु द्रव्य अर्घ्य से लाभ न कुछ हो पाता है।
जब तक निज स्वभाव में चेतन मग्न नहीं हो जाता है।। नेमिनाथ.।।
ॐ ह्रीं श्री नेमिनाथ जिनेन्द्राय अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंचकल्याणक अर्घ्य

कार्तिक शुक्ला षष्ठी के दिन शिवा देवी उर धन्य हुआ।
अपराजित विमान से चलकर आये मोद अनन्य हुआ॥
स्वप्न फलों को जान सभी के मन में अति आनन्द हुआ।
नेमिनाथ स्वामी का गर्भोत्सव मंगल सम्पन्न हुआ॥

ॐ ह्रीं श्री नेमिनाथ जिनेन्द्राय कार्तिकशुक्लषष्ठ्यां गर्भमंगलमंडिताय अर्घ्यं निर्व..

श्रावण शुक्ला षष्ठी के दिन शौर्यपुरी में जन्म हुआ।
नृपति समुद्र विजय आंगन में सुर सुरपति का नृत्य हुआ॥
मेरु सुदर्शन पर क्षीरोदधि जल से अभिषेक हुआ।
जन्म महोत्सव नेमिनाथ का परम हर्ष अतिरेक हुआ॥

ॐ ह्रीं श्री नेमिनाथ जिनेन्द्राय श्रावणशुक्लषष्ठ्यां जन्ममंगलमंडिताय अर्घ्यं निर्व..

श्रावण शुक्ल षष्ठमी की प्रभु पशुओं पर करुणा आई।
राजमती तज सहस्राम्र वन में जा जिन दीक्षा पाई॥
इन्द्रादिक ने उठा पालकी हर्षित मंगलाचार किया।
नेमिनाथ प्रभु के तप कल्याणक पर जय–जयकार किया॥

ॐ ह्रीं श्री नेमिनाथ जिनेन्द्राय श्रावणशुक्लषष्ठ्यां तपोमंगलमंडिताय अर्घ्यं निर्व..

अश्विन शुक्ला एकम को प्रभु हुआ ज्ञान कल्याण महान।
उर्जजयंत पर समवसरण में दिया भव्य उपदेश प्रधान॥
ज्ञानावरण, दर्शनावरणी मोहनीय का नाश किया।
नेमिनाथ ने अन्तराय क्षय कर कैवल्य प्रकाश लिया॥

ॐ ह्रीं श्री नेमिनाथ जिनेन्द्राय आश्विनशुक्लप्रतिपदायाम् ज्ञानमंगलमंडिताय अर्घ्यं..

श्री गिरनार क्षेत्र पर्वत से महा मोक्ष पद को पाया।
जगती ने आषाढ शुक्ल सप्तमी दिवस मंगल गाया॥
वेदनीय अरु आयु नाम अरु गोत्र कर्म अवसान किया।
अष्ट कर्म हर नेमिनाथ ने परम पूर्ण निर्वाण लिया॥

ॐ ह्रीं श्री नेमिनाथ जिनेन्द्राय आषाढशुक्लासप्तम्यां मोक्षमंगलमंडिताय अर्घ्यं निर्व..

जयमाला

जय नेमिनाथ नित्योदित जिन, जय नित्यानन्द नित्य चिन्मय।
जय निर्विकल्प निश्चल निर्मल, जय निर्विकार नीरज निर्भय।।

नृपराज समुद्र विजय के सुत माता शिवा देवी के नन्दन।
आनन्द शौर्यपुर में छाया जय–जयसे गूंजा पाण्डुक वन।।

बालकपन में क्रीडा करते तुमने धारे अणुव्रत सुखमय।
द्वारिकापुरी में रहे अवस्था पाई सुन्दर यौवन वय।।

आमोद–प्रमोद तुम्हारे लख पूरा यादव कुल हर्षाता।
तब श्रीकृष्ण नारायण ने जूनागढ़ से जोड़ा नाता।।

राजुल से परिणय करने को जूनागढ पहुंचे वर बनकर।
जीवों की करुण पुकार सुनी जागा उर में वैराग्य प्रखर।।

पशुओं को बन्धन मुक्त किया कंगन विवाह का तोड़ दिया।
राजुल के द्वारे आकर भी स्वर्णिम रथ पीछे मोड़ लिया।।

रथ त्याग चढे गिरनारी पर जा पहुंचे सहस्त्राम्र वन में।
वस्त्राभूषण सब त्याग दिये जिन दीक्षा धारी तन मन में।।

फिर उग्र तपस्या के द्वारा निश्चय स्वरूप मर्मज्ञ हुए।
घातिया कर्म चारों नाश छप्पन दिन में सर्वज्ञ हुए।।

तीर्थंकर प्रकृति उदय आई सुर हर्षित समवशरण रचकर।
प्रभु गन्धकुटी में अन्तरीक्ष आसीन हुए पद्मासन धर।।

ग्यारह गणधर में थे पहले गणधर वरदत्त महा ऋषिवर।
थी मुख्य आर्यिका राजमती श्रोता थे अगणित भव्य प्रवर।।

दिव्य ध्वनि खिरने लगी शाश्वत ओंकार घन–गर्जन सी।
शुभ बारह सभा बनी अनुपम सौन्दर्य प्रभा मणिकंचनसी।।

जग जीवों का उपकार किया भूलों को शिव पथ बतलाया।
निश्चय रत्नत्रय की महिमा का परम मोक्ष फल दर्शाया।।

कर प्राप्त चतुर्दश गुणस्थान योगों का पूर्ण अभाव किया।
कर उर्ध्व गमन सिद्धत्व प्राप्त कर सिद्धलोक आवास लिया॥

गिरनार शैल से मुक्त हुए तन के परमाणु उड़े सारे।
पावन मंगल निर्वाण हुआ सुरगण के गूंजे जयकारे॥

नख केश शेष थे देवों ने मायामय तन निर्माण किया।
फिर अग्निकुमार सुरों ने आ मुकुटानल से तन भस्म किया॥

पावन भस्मी का निज—निज के मस्तक पर सबने तिलक किया।
मंगल वाद्यों की ध्वनि गूंजी निर्वाण महोत्सव पूर्ण किया॥

कर्मों के बन्धन टूट गये पूर्णत्व प्राप्त कर सुखी हुए।
हम तो अनादि से हे स्वामी! भव दुःख बन्धन से दुखी हुए॥

ऐसा अन्तर बल दो स्वामी हम भी सिद्धत्व प्राप्त कर लें।
तुम पद चिन्हों पर चल प्रभुवर शुभ-अशुभ विभावों को हर लें॥

परिणाम शुद्ध का अर्चन कर हम अन्तर ध्यानी बन जावें।
घातिया चार कर्मों को हर हम केवलज्ञानी बन जावें॥

शाश्वत शिव पद पाने स्वामी हम पास तुम्हारे आ जाये।
अपने स्वभाव के साधन से हम तीन लोक पर जय पाये॥

निज सिद्ध स्वपद पाने को प्रभु हर्षित चरणों में आया हूँ।
वसु द्रव्य सजाकर नेमीश्वर प्रभु पूर्ण अर्घ्य मैं लाया हूँ॥

ॐ ह्रीं श्री नेमिनाथ जिनेन्द्राय अनर्घ्यपद प्राप्ताय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

शंख चिह्न चरणों में शोभित जय—जय नेमि जिनेश महान।
मन वच तन जो ध्यान लगाये वे हो जाते सिद्ध समान॥

॥ इत्याशीर्वादः परिपुष्पांजलिं क्षिपेत् ॥

जाप्यमंत्र : ॐ ह्रीं श्री नेमिनाथ जिनेन्द्राय नमः।

*

श्री पार्श्वनाथ जिन पूजन

तीर्थंकर श्री पार्श्वनाथ प्रभु के चरणों में करूँ नमन।
अश्वसेन के राजदुलारे वामादेवी के नंदन।।
बाल ब्रह्मचारी भवतारी योगीश्वर जिनवर वंदन।
श्रद्धा भाव विनय से करता श्री चरणों का मैं अर्चन।।

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्र! अत्र अवतर अवतर संवौषट् (आह्वाननम्)।

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः (स्थापनम्)।

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्र! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् (सन्निधिकरणम्)।

समकित जल से तो अनादि की मिथ्या भ्रांति हटाऊँ मैं।
निज अनुभव से जन्ममरण का अन्त सहज पा जाऊँ मैं।।
चिन्तामणि प्रभु पार्श्वनाथ की पूजन कर हर्षाऊँ मैं।
संकटहारी मंगलकारी श्री जिनवर गुण गाऊँ मैं।।

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

तन की तपन मिटाने वाला चन्दन भेट चढाऊँ मैं।
भव आताप मिटाने वाला समकित चन्दन पाऊँ मैं।। चिन्ता.।।

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय संसारताप विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

अक्षत चरण समर्पित करके निजस्वभाव में आऊँ मैं।
अनुपम शान्त निराकुल अक्षय अविनश्वर पद पाऊँ मैं।। चिन्ता.।।

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अक्षयपद प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

अष्ट अंगयुत सम्यक् दर्शन पाऊँ पुष्प चढाऊँ मैं।
कामबाण विध्वंस करूँ निज शील स्वभाव सजाऊँ मैं।। चिन्ता.।।

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

इच्छाओं की भूख मिटाने सम्यक् पथ पर आऊँ मैं।
समकित का नैवेद्य मिले तो क्षुधारोग हर पाऊँ मैं।। चिन्ता.।।

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मिथ्यातम के नाश हेतु यह दीपक तुम्हें चढाऊँ मैं।
समकित दीप जले अन्तर में ज्ञान ज्योति प्रगटाऊँ मैं।। चिन्ता.।।

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय मोहांधकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

समकित धूप मिले तो भगवन शुद्ध भाव में आऊँ मैं।
भाव शुभाशुभ धूम्र बने उड़ जाये धूप चढाऊँ मैं।। चिन्ता.।।

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अष्टकर्म विध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

उत्तम फल चरणों में अर्पित आत्मध्यान ही ध्याऊँ मैं।
समकित का फल महामोक्ष फल प्रभु अवश्य पा जाऊँ।। चिन्ता.।।

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्ताय फलं निर्वपामीति स्वाहा।

अष्ट कर्म क्षय हेतु अष्ट द्रव्यों का अर्घ्य बनाऊँ मैं।
अविनाशी अविकारी अष्टम वसुधापति बन जाऊँ मैं।। चिन्ता.।।

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंचकल्याणक अर्घ्य

प्राणत स्वर्ग त्याग आये माता वामा के उर श्रीमान।
कृष्ण दूज वैशाख सलोनी सोलह स्वप्न दिखे छविमान।।
पन्द्रह मास रत्न बरसे नित मंगलमयी गर्भ कल्याण।
जय जय पार्श्व जिनेश्वर प्रभु परमेश्वर जय जय दयानिधान।।

ॐ ह्रीं वैशाखकृष्ण द्वितीया गर्भकल्याणक प्राप्ताय श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं..

पौष कृष्ण एकादशमी को जन्मे, हुआ जन्म कल्याण।
ऐरावत गजेन्द्र पर आये तब सौधर्म इन्द्र ईशान।।
गिरि सुमेरू पर क्षीरोदधि से किया दिव्य अभिषेक महान।
जय जय पार्श्व जिनेश्वर प्रभु परमेश्वर जय जय दया निधान।।

ॐ ह्रीं पौषकृष्णएकादश्यां जन्मकल्याणकप्राप्त श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्व..

बाल ब्रह्मचारी व्रतधारी उर छाया वैराग्य प्रधान।
लौकांतिक देवों ने आकर किया आपका जय जय गान।।

पौष कृष्ण एकादशमी को हुआ आपका तप कल्याण।
जय जय पार्श्व जिनेश्वर प्रभु परमेश्वर जय जय दया निधान।।

ॐ ह्रीं पौषकृष्णएकादश्यां तपकल्याणकप्राप्त श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्व..

कमठ जीव ने अहिक्षेत्र पर किया घोर उपसर्ग महान।
हुए न विचलित शुक्ल ध्यानधर श्रेणी चढ़े हुए भगवान।।
चैत्र कृष्ण की चौथ हो गई पावन प्रगट केवलज्ञान।
जय जय पार्श्व जिनेश्वर प्रभु परमेश्वर जय जय दयानिधान।।

ॐ ह्रीं चैत्रकृष्ण चतुर्थीदिने ज्ञानकल्याणक प्राप्ताय श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं..

श्रावण शुक्ल सप्तमी के दिन बने अयोगी हे भगवान।
अन्तिम शुक्ल ध्यानधर सम्मेदाचल से पाया पद निर्वाण।।
कूट सुवर्णभद्र पर इन्द्रादिक ने किया मोक्ष कल्याण।
जय जय पार्श्व जिनेश्वर प्रभु परमेश्वर जय जय दया निधान।।

ॐ ह्रीं श्रावणशुक्ल सप्तम्यां मोक्षकल्याणक प्राप्ताय श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं..

जयमाला

तेईसवें तीर्थंकर प्रभु परम ब्रह्ममय परम प्रधान।
प्राप्त महा कल्याण पंच पार्श्वनाथ प्रणतेश्वर प्राण।।
वाराणसी नगर अति सुन्दर शिवसेन नृप उदार।
वामादेवी के घर जनमे जग में छाया हर्ष अपार।।
मति श्रुति अवधि ज्ञान के धारी बाल ब्रह्मचारी विभुवान।
अल्प आयु में दीक्षा धर कर पंच महाव्रत धरे महान।।
चार मास छद्मस्थ मौन रह वीतराग अरहन्त हुए।
आत्म ध्यान के द्वारा प्रभु सर्वज्ञ देव भगवन्त।।
बैरी कमठ जीव ने तुमको नौ भव तक दुख पहुँचाया।
इस भव में भी संवर सुर हो महा विघ्न करने आया।।
किया अग्निमय घोर उपद्रव भीषण झंझावात चला।
जल प्लावित हो गई धरा पर ध्यान आपका नहीं हिला।।

यक्षी पद्मावती यक्ष धरणेन्द्र विघ्न हरने आये।
पूर्व जन्म के उपकारों से हो कृतज्ञ तत्क्षण आये।।

प्रभु उपसर्ग निवारण के हित शुभ परिणाम हृदय छाये।
फण मण्डप अरु सिंहासन रच जय जय जय प्रभु गुण गाये।।

देव आपने साम्य भाव धर निज स्वरूप को प्रगटाया।
उपसर्गों पर जय पाकर प्रभु निज कैवल्य स्वपद पाया।।

कमठ जीव की माया विनशी वह भी चरणों में आया।
समवशरण रचकर देवों ने प्रभु का गौरव प्रगटाया।।

जगत जनों को ओंकार ध्वनिमय प्रभु ने उपदेश दिया।
शुद्ध बुद्ध भगवान आत्मा सबको यह संदेश दिया।।

दश गणधर थे जिनमें पहले मुख्य स्वयंभू गणधर थे।
मुख्य आर्यिका सुलोचना थीं श्रोता महासेन वर थे।।

जीव, अजीव, आस्रव, संवर बन्ध निर्जरा मोक्ष महान।
ज्यों का त्यों श्रद्धान तत्त्व का सम्यक दर्शन श्रेष्ठ प्रधान।।

जीव तत्त्व तो उपादेय है, अरु अजीव तो है सब ज्ञेय।
आस्रव बन्ध हेय है साधन संवर निर्जर मोक्ष उपेय।।

सात तत्त्व ही पाप पुण्य मिल नव पदार्थ हो जाते हैं।
तत्त्व ज्ञान बिन जग के प्राणी भव-भव में दुख पाते हैं।।

वस्तु तत्त्व को जान स्वयं के आश्रय में जो आते है।
आत्म चिंतवन करके वे ही श्रेष्ठ मोक्ष पद पाते हैं।।

हे प्रभु! यह उपदेश आपका में निज अन्तर में लाऊँ।
आत्मबोध की महा शक्ति से में निर्वाण स्वपद पाऊँ।।

अष्ट कर्म को नष्ट करूँ मैं तुम समान प्रभु बन जाऊँ।
सिद्ध शिला पर सदा विराजूं निज स्वभाव में मुस्काऊँ।।

इसी भावना से प्रेरित हो हे प्रभु! की है यह पूजन।
तुव प्रसाद से एक दिवस में पा जाऊँगा मुक्ति सदन॥

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय गर्भ-जन्म-तप-ज्ञान-निर्वाणकल्याणक प्राप्तये पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

सर्प चिन्ह शोभित चरण पार्श्वनाथ उर धार।
मन-वच-तन जो पूजते वे होते भव पार॥

॥ इत्याशीर्वादः परिपुष्पांजलिं क्षिपेत् ॥

जाप्यमंत्र – ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय नमः।

*

पार्श्वनाथ (रविव्रत) पूजन

स्थापना

हे पार्श्वनाथ हे पार्श्वनाथ, तुमने हमको यह बतलाया।
निज पार्श्वनाथ में थिरता से निश्चय सुख होता सिखलाया॥
तुमको पाकर मैं तृप्त हुआ ठुकराऊँ जग की निधि नामी।
हे रवि स्व-पर प्रकाशक प्रभु मम हृदय विराजो हे स्वामी॥

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्र! अत्र अवतर अवतर संवौषट् (आह्वाननम्)।

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः (स्थापनम्)।

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्र! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् (सन्निधिकरणम्)।

जड जल से प्यास न शांत हुई, अतएव इसे मैं यहीं तजूँ।
निर्मल जल-सा प्रभु निज स्वभाव पहिचान उसी में लीन रहूँ॥
तन मन धन निज से भिन्न मान लौकिक वांछा नहिं लेश रखूँ।
तुम जैसा वैभव पाने को प्रभु, तब निर्मल चरण कमल अर्चूं।

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

चंदन से शांति नहीं होगी, यह अंतर्दहन जलाता है।
निज अमल भाव रूपी चंदन ही, राग ताप मिटाता है।।
तन मन धन निज से भिन्न मान लौकिक वांछा नहिं लेश रखूँ।
तुम जैसा वैभव पाने को प्रभु, तब निर्मल चरण कमल अर्चूं।

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय संसाताप विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

उज्ज्वल अनुपम निज स्वभाव ही एक मात्र जग में अक्षत।
कितने संयोग वियोग तथा संयोगी भाव सभी विक्षत।। तन मन..।।

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अक्षयपद प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

पुष्प काम-वर्द्धक ही हैं इन से तो शांति नहीं होती।
निज समयसार की सुमन माल ही काम व्यथा सारी खोती।। तन मन..।।

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

जड़ व्यंजन क्षुधा न नाश करें भोजन से बंध अशुभ होता।
अरु उदय में होने भूख अतः निज ज्ञानअशन अब मैं करता। तन मन..।

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जड दीपक से तो दूर रहो रवि से नहिं आत्म दिखाई दे।
निज सम्यक् ज्ञानमयी दीपक ही मोह तिमिर को दूर करे।। तन मन..।।

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय मोहांधकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

जब ध्यान अग्नि प्रज्वलित होय कर्मों का इंधन जले सभी।
दशधर्ममयी अतिशय सुगंध त्रिभुवन में फैलेगी तभी।। तन मन..।।

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

जो जैसी करनी करता है, वह फल भी वैसा पाता है।
जो हो कर्तृत्व-प्रमाद रहित, वह महा मोक्षफल पाता है।। तन मन..।।

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

है निज आत्म स्वभाव अनुपम स्वाभाविक सुख भी अनुपम है।
अनुपम सुखमय शिवपद पाऊँ अतएव यह अर्घ्य समर्पित है। तन मन..।

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंचकल्याणक अर्घ्य

दूज कृष्ण वैशाख को प्राणत स्वर्ग विहाय।
वामा माता उर बसे पूजूं शिव सुखदाय॥

ॐ ह्रीं वैशाखकृष्णद्वितीयां गर्भमंगलमंडिताय श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्व..

पौष कृष्ण एकादशी सुतिथि महा सुखकार।
अंतिम जन्म लियो प्रभु इन्द्र किया जयकार॥

ॐ ह्रीं पौषकृष्ण एकादश्यां जन्ममंगल प्राप्तये श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्व..

पौष कृष्ण एकादशी बारह भावन भाय।
केशलोंच करके प्रभु धरो योग शिव दाय॥

ॐ ह्रीं पौषकृष्ण एकादश्यां तपोमंगलमंडिताय श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्व..

शुक्ल ध्यान में होय थिर जित उपसर्ग महान।
चैत्र कृष्ण शुभ चौथ को पायो केवलज्ञान।

ॐ ह्रीं चैतकृष्ण चतुर्थ्यां केवलज्ञानमंडिताय श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्व..

श्रावण शुक्ला सप्तमी पायो पद निर्वाण।
सम्मेदाचल विहित हे तव निर्वाण सथान॥

ॐ ह्रीं श्रावण शुक्ला सप्तभ्यां मोक्षमंगलमंडिताय श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्व..

जयमाला

हे पार्श्वनाथ प्रभु मैं शरण आयो दर्शकर अति सुख लियो।
चिंता सभी मिट गयी मेरी कार्य सब पूरण भयो॥

चिंतामणि चिंतत मिले तरु कल्प मांगे देत हैं।
तुम पूजते सब पाप भागे सहज सब सुख हेत हैं॥

हे वीतरागी नाथ! तुमको भी सरागी मानकर।
मांगे अज्ञानी भोग वैभव जगत में सुख जानकर॥

तब भक्ति वांछा और शंका आदि दोषों रहित है।
वे पुण्य को भी होम करते भोग फिर क्यों चहत हैं॥

जब नाग और नागिन तुम्हारे वचन धर सुर भये।
जो आपकी भक्ति करें वे दास उनके भी भये॥
वे पुण्यशाली भक्त जन की, सहज बाधा को हरे।
आनंद से पूजा करें, वांछा न पूजा की करें॥
हे प्रभो तब नासाग्रदृष्टि, यह बताती है हमें।
सुख आत्मा में प्राप्त कर ले, व्यर्थ बाहर में भ्रमें॥
है आप सम निज आत्म लखकर, आत्म में थिरता धरूँ।
हर आशा तृष्णा से रहित, अनुपम अतीन्द्रिय सुख भरूँ॥
जब तक नहीं यह दशा होती, आपकी मुद्रा लखूँ।
जिन वचन चिंतन करूँ व्रत शील संयम रस चखूँ॥
सम्यक्त्व को नित दृढ करूँ पापादि को नित परिहरूँ।
राग को भी हेय जानूँ लक्ष्य उसका नहीं करूँ॥
शुभ स्मरण ज्ञायक का सदा, विस्मरण पुद्गल का करूँ।
मैं निराकुल निज पद को पाऊँ, अन्य कुछ नहीं चहूँ॥

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा) पूज्य ज्ञान वैराग्य है, पूजक श्रद्धावान।
पूजा गुण अनुराग अरु फल है सुख अम्लान।

॥ इत्याशीर्वादः परिपुष्पांजलिं क्षिपेत् ॥

जाप्यमंत्र – ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय नमः।

भक्ति

जिन बैन सुनत मोरी भूल भगी॥टेक॥
कर्मस्वभाव भाव चेतन को, भिन्न पिछानन सुमति जगी।१।
निज अनुभूति सहज ज्ञायकता, सो चिर रुष-तुष-मैल पगी।२।
स्याद्वाद धुनि निर्मल जलतैं, विमल भई समभाव लगी।३।
संशय-मोह-भरमता विघटी, प्रकटी आतम सोंज सगी।४।
'दौल' अपूरव मंगल पायो, शिवसुख लेन होंस उमगी।५।

भक्ति

आओ जिनमंदिर में आओ,
श्री जिनवर के दर्शन पाओ।
जिन शासन की महिमा गाओ,
आया-आया रे अवसर आनंद का ।।टेक।।

हे जिनवर तव शरण में सेवक आया आज।
शिवपुरपथ दरशाय के दीजे निज पद राज।।

प्रभु अब शुद्धातम बतलाओ,
चहुगति दुःख से शीघ्र छुडाओ
दिव्यध्वनि अमृत बरसाओ,
आया प्यासा मैं सेवक आनंद का ।।१।।

जिनवर दर्शन कीजिये, आतम दर्शन होय,
मोहमहातम नाशि के, भ्रमण चतुर्गति खोय।
शुद्धातम को लक्ष्य बनाओ,
निर्मल भेद ज्ञान प्रकटाओ।
अब विषयों से चित्त हटाओ,
पाओ-पाओ रे मार्ग निर्वाण का ।।२।।

चिदानंद चैतन्यमय, शुद्धातम को जान,
निज स्वरूप में लीन हो पाओ केवलज्ञान।
नव केवल लब्धि प्रकटाओ,
फिर योगों को नष्ट कराओ,
अविनाशी सिद्ध पद को पाओ,
आया-आया रे अवसर आनंद का ।।३।।

श्री महावीर पूजन

(स्थापना)

जो मोह माया मान मत्सर, मदन मर्दन वीर हैं।
जो विपुल विघ्नों बीच में भी, ध्यान धारण धीर हैं।
जो तरण-तारण भव-निवारण, भव-जलधि के तीर हैं।
वे वन्दनीय जिनेश, तीर्थंकर स्वयं महावीर हैं।।

ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्र! अत्र अवतर अवतर संवौषट् (आह्वाननम्)।
ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः (स्थापनम्)।
ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्र! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् (सन्निधिकरणम्)।

जिनके गुणों का स्तवन पावन करन अम्लान है।
मल-हरन निर्मल-करन भागीरथी नीर-समान है।।
संतप्त मानस शान्त हों जिनके गुणों के गान में।
वे वर्द्धमान महान जिन विचरें हमारे ध्यान में।।

ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

लिपटे रहें विषधर तदपि-चन्दन विटप निर्विष रहें।
त्यों शान्त शीतल ही रहो रिपु विघन कितने ही करें।।संतप्त.।।

ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्राय संसारताप विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

सुख-ज्ञान-दर्शन-वीर जिन अक्षत समान अखण्ड हैं।
हैं शान्त यद्यपि तदपि जो दिनकर समान प्रचण्ड हैं।।संतप्त.।।

ॐ ह्रीं श्री महावीर जिनेन्द्राय अक्षयपद प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

त्रिभुवनजयी अविजित कुसुमसर सुभट मारन सूर हैं।
पर–गन्ध से विरहित तदपि निज–गन्ध से भरपूर हैं।।संतप्त.।।

ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्राय कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

यदि भूख हो तो विविध व्यंजन मिष्ट इष्ट प्रतीत हों।
तुम क्षुधा-बाधा रहित जिन! क्यों तुम्हें उनसे प्रीत हो? संतप्त.।।

ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्राय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

युगपद् विशद् सकलार्थ झलकें नित्य केवलज्ञान में।
त्रैलोक्य-दीपक वीर-जिन दीपक चढाऊँ क्या तुम्हें।।
संतप्त-मानस शान्त हों जिनके गुणों के गान में।
वे वर्द्धमान महान जिन विचरें हमारे ध्यान में।।

ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

जो कर्म इंधन दहन पावन पुंज पवन समान हैं।
जो हैं अमेय प्रमेय पूरण ज्ञेय ज्ञाता ज्ञान हैं।।संतप्त.।।

ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्राय अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

सारा जगत फल भोगता नित पुण्य एवं पाप का।
सब त्याग समरस निरत जिनवर सफल जीवन आपका।।संतप्त.।।

ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

इस अर्घ्य का क्या मूल्य है अनर्घ्य पद के सामने।
उस परम-पद को पा लिया हे पतितपावन! आपने।।संतप्त.।।

ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंचकल्याणक अर्घ्य

(सोरठा)

सित छठवीं आषाढ, माँ त्रिशला के गर्भ में।
अन्तिम गर्भावास, यही जान प्रणमूँ प्रभो।।

ॐ ह्रीं आषाढशुक्लषष्ठ्यां गर्भमंगलमंडिताय श्री महावीरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तेरस दिन सित चैत, अन्तिम जन्म लियो प्रभू।
नृप सिद्धार्थ निकेत, इन्द्र आय उत्सव कियो।।

ॐ ह्रीं चैत्रशुक्लत्रयोदश्यां जन्ममंगलमंडिताय श्री महावीरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दशमी मगसिर कृष्ण, वर्द्धमान दीक्षा धरी।
कर्म कालिमा नष्ट, करने आत्मरथी बने।।

ॐ ह्रीं मार्गशीर्षकृष्णदशम्यां तपोमंगलमंडिताय श्री महावीरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्व..

सित दशमी वैसाख, पायो केवलज्ञान जिन।
अष्ट द्रव्यमय अर्घ्य, प्रभुपद पूजा करें हम॥

ॐ ह्रीं वैशाखशुक्लदशम्यां ज्ञानमंगलमंडिताय श्री महावीरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कार्तिक मावस श्याम, पायो प्रभु निर्वाण तुम।
पावा तीरथधाम, दीपावली मनाय हम॥

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णअमावस्यायां मोक्षमंगलमंडिताय श्री महावीरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

यद्यपि युद्ध नहीं कियो, नाहिं रखे असि-तीर।
परम अहिंसक आचरण, तदपि बने महावीर॥

(पद्धरि)

हे मोह-महादलदलन वीर, दुद्धर-तप संयम धरण धीर।
तुम हो अनन्त आनन्दकन्द, तुम रहित सर्व जग द्वंद–फंद॥

अघकरन करन-मन-हरन-हार, सुखकरन हरन भवदुख अपार।
सिद्धार्थ तनय तनरहित देव, सुर-नर-किन्नर सब करत सेव॥

मतिज्ञान रहित सन्मति जिनेश, तुम राग-द्वेष जीते अशेष।
शुभ-अशुभ राग की आग त्याग, हो गये स्वयं तुम वीतराग॥

षट् द्रव्य और उनके विशेष, तुम जानत हो प्रभुवर अशेष।
सर्वज्ञ–वीतरागी जिनेश, जो तुम को पहचाने विशेष॥

वे पहचानें अपना स्वभाव, वे करें मोह–रिपु का अभाव।
वे प्रकट करें निज–पर विवेक, वे ध्यावें निज शुद्धात्म एक॥

निज आतम में ही रहें लीन, चारित्र–मोह को करें क्षीण।
उनका हो जाये क्षीण राग, वे भी हो जायें वीतराग॥

जो हुए आज तक अरीहंत, सबने अपनाया यही पंथ।
उपदेश दिया इस ही प्रकार, हो सबको मेरा नमस्कार।।

जो तुमको नहिं जाने जिनेश, वे पायें भव–भव–भ्रमण क्लेश।
वे माँगें तुमसे धन–समाज, वैभव पुत्रादिक राज–काज।।

जिनको तुम त्यागे तुच्छ जान, वे उन्हें मानते हैं महान।
उनमें ही निशदिन रहें लीन, वे पुण्य–पाप में ही प्रवीण।।

प्रभु पुण्य–पाप से पार आप, बिन पहिचाने पायें संताप।
संतापहरण सुखकरण सार, शुद्धात्मस्वरूपी समयसार।।

तुम समयसार हम समयसार, सम्पूर्ण आत्मा समयसार।
जो पहचानें अपना स्वरूप, वे हो जायें परमात्मरूप।।

उनको ना कोई रहे चाह, वे अपना लेवें मोक्ष राह।
वे करें आत्मा को प्रसिद्ध, वे अल्पकाल में होय सिद्ध।।

ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपद प्राप्तये जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

भूतकाल प्रभु आपका, वह मेरा वर्तमान।
वर्तमान जो आपका, वह भविष्य मम जान।।

(पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

जाप्य – ॐ ह्रीं श्री महावीर जिनेन्द्राय नमः।

भक्ति

मुख ओंकार धुनि सुनि अर्थ गणधर विचारै।
रचि-रचि आगम उपदिसै भविक जीव संशय निवारै।।
सो सत्यारथ शारदा, तासु भक्ति उर आन।
छंद भुजंगप्रयागतैं अष्टक कहौं बखान।।

श्री वर्धमान जिन पूजन

वर्धमान सन्मति सुवीर प्रभु, महावीर मंगलदाता।
वर्तमान चौबीसों के, अंतिम तीर्थंकर विख्याता।।
वीतराग सर्वज्ञ जिनेश्वर, त्रिभुवनपति भव दुःख घाता।
महामोक्ष कल्याण प्रदायक जगदउद्धारक जग त्राता।।

ॐ ह्रीं श्री वर्धमान जिनेन्द्र! अत्र अवतर अवतर संवौषट् (आह्वाननम्)।

ॐ ह्रीं श्री वर्धमान जिनेन्द्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः (स्थापनम्)।

ॐ ह्रीं श्री वर्धमान जिनेन्द्र! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् (सन्निधिकरणम्)।

नित चरण चढ़ाऊँ देव निर्मल जल धारा।
रागादिक मल का नाश मैं कर दूँ सारा।।
हे वर्धमान भगवान तुम पद ध्याता हूँ।
हो जाऊँ आप समान मन में भाता हूँ।।

ॐ ह्रीं श्री वर्धमान जिनेन्द्राय जन्म-जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

चिर शीतलता के हेतु लाया हूँ चंदन।
हो आत्म शक्ति से नष्ट चहुँगति का क्रन्दन।। हे वर्धमान० ।।

ॐ ह्रीं श्री वर्धमान जिनेन्द्राय संसारताप विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

शुभ अशुभ विकार विभाव आस्रव दुःखदायक।
है शुद्ध भाव ही सार अक्षय सुखदायक।। हे वर्धमान० ।।

ॐ ह्रीं श्री वर्धमान जिनेन्द्राय अक्षयपद प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

दुःखदायी मदन अनंग इसका गर्व हरूँ।
सुखदायी शील अभंग हे प्रभु प्राप्त करूँ।। हे वर्धमान० ।।

ॐ ह्रीं श्री वर्धमान जिनेन्द्राय कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

जग के वैभव की भूख पर अब जय पाऊँ।
तृष्णाओं का कर अंत निज वैभव ध्याऊँ।। हे वर्धमान० ।।

ॐ ह्रीं श्री वर्धमान जिनेन्द्राय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सम्यक् प्रकाश से मोह मिथ्यातम भागे।
अंतर में हो आलोक केवल रवि जागे।।
हे वर्धमान भगवान तुम पद ध्याता हूँ।
हो जाऊँ आप समान मन में भाता हूँ।।

ॐ ह्रीं श्री वर्धमान जिनेन्द्राय मोहांधकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

आठों ही कर्म विचित्र भव भव दुःखकारी।
हों ध्यान अग्नि में नष्ट लूँ पद सुखकारी।। हे वर्धमान० ।।

ॐ ह्रीं श्री वर्धमान जिनेन्द्राय अष्टकर्म विध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

निर्वाण महाफल हेतु शुभफल ध्वान्त करूँ।
यह पुण्य पाप की आग हे प्रभु शान्त करूँ।। हे वर्धमान० ।।

ॐ ह्रीं श्री वर्धमान जिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

पाऊँ अनर्घ्य पद देव अविनश्वर अविचल।
अविकारी अमल अनूप अजर अमर अविकल।। हे वर्धमान० ।।

ॐ ह्रीं श्री वर्धमान जिनेन्द्राय अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा।

पंचकल्याणक अर्घ्य

षष्ठी शुक्ल अषाढ़ की, हुई पवित्र महान।
त्रिशला माँ उर अवतरे, हुआ गर्भ कल्याण।।

ॐ ह्रीं आषाढ़ शुक्ल षष्ठ्यां गर्भमंगल मण्डिताय श्री वर्धमान जिनेन्द्राय अर्घ्यम्..

शुक्ल त्रयोदशि चैत्र की हुआ जन्म कल्याण।
गिरि सुमेरु पर इन्द्र ने उत्सव किया महान।।

ॐ ह्रीं चैत्र शुक्ल त्रयोदश्यां जन्ममंगल मण्डिताय श्री वर्धमान जिनेन्द्राय अर्घ्यम्..

दशमी मगसिर कृष्ण की पावन तप कल्याण।
भव तन भोग विरक्त हो लिया महाव्रत यान।।

ॐ ह्रीं मार्गशीर्ष कृष्ण दशम्यां तपोमंगल मण्डिताय श्री वर्धमान जिनेन्द्राय अर्घ्यम्..

शुक्ल दशम वैशाख की पाया केवल ज्ञान।
घाति कर्म क्षय कर हुए श्री अरहंत महान।।

ॐ ह्रीं वैशाख शुक्ल दशम्यां ज्ञानमंगल मण्डिताय श्री वर्धमान जिनेन्द्राय अर्घ्यम्..

कृष्ण अमावस कार्तिकी ध्याया अन्तिम ध्यान।
अष्ट कर्म अवसान कर हुए सिद्ध भगवान।।

ॐ ह्रीं कार्तिक कृष्ण अमावस्यां मोक्षमंगल मण्डिताय श्री वर्धमान जिनेन्द्राय अर्घ्यम्

जयमाला

सुत सिद्धार्थ जिनेश को वन्दूँ वारम्वार।
वीतराग विज्ञान पा करू आत्म उद्धार।।

जय जय वर्धमान जिन स्वामी; महावीर प्रभु अंतर्यामी।।
जय अतिवीर वीर गुणधामी; वैशालिक सुवीर शिवनामी।।

जय जय सन्मति सन्मतिदाता; जय जगदीश्वर दृष्टा ज्ञाता।।
जय सर्वेश मोक्ष सुखकारी; जय जिनेन्द्र जय दुर्गति हारी।।

बाल ब्रह्मचारी भवतारी; है त्रिकाल वन्दना हमारी।।
चार कर्म घनघाति निवारक; अष्ट कर्म अरि के संहारक।।

स्वपर प्रकाशक केवलज्ञानी; ध्यान ध्येय ध्याता विज्ञानी।।
चिदानंद चैतन्य विलासी; मंगलमय चेतन अविनाशी।।

निज स्वभाव साधन के द्वारा; स्वयं तरे औरों को तारा।।
राग मात्र को हेय बताया; शुद्धातम ही श्रेय जताया।।

भवतन भोग रोग अघ नाशूँ; निज स्वरूप चैतन्य प्रकाशूँ।।
पाप पुण्य आस्रव विनशाऊँ; संवर भाव सहज प्रगटाऊँ।।

वस्तु स्वरूप करें हृदयंगम; तत्त्व भावना भाऊँ हरदम।।
निज शुद्धात्मतत्त्व को जानूँ; सर्वोत्कृष्ट स्वपद पहचानूँ।।

अब मैं सम्यक दर्शन पाऊँ; सम्यक् ज्ञान सहज उर लाऊँ।।
सम्यक् चारित को विकसाऊँ; मोक्षमार्ग पर मैं आ जाऊँ।।

एक शुद्ध परिपूर्ण त्रिकाली; ज्ञायक मैं अनंत गुणशाली।।
सर्व कषाय भाव जय कर लूँ; मोहक्षीण कर निज पद वर लूँ।।

प्रभु पुजन का यह फल पाऊँ; फिर न लौटकर भव में भाऊँ।।
यही विनय है त्रिभुवन नामी; तुम समान बन जाऊँ स्वामी।।

ॐ ह्रीं श्री वर्धमान जिनेन्द्राय महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सिंह सुशोभित चरण में, वर्धमान जिनराज।
मन वच तन जो पूजते पाते निज पद राज।।

।। इत्याशीर्वादः परिपुष्पांजलिं क्षिपेत् ।।

जाप्य – ॐ ह्रीं श्री वर्धमान जिनेन्द्राय नमः।

*

श्री शान्ति-कुन्थु-अरनाथ जिन पूजन

जय शान्तिनाथ हे शान्तिमूर्ति जय कुन्थुनाथ आनन्द रूप।
जय अरहनाथ अरि कर्मजयी तीनों तीर्थंकर विश्वभूप।।
तुम कामदेव अतिशय महान सम्राट चक्रवर्ती अनूप।
भव भोग देह से हो विरक्त पाया निज सिद्ध स्वपद स्वरूप।।

ॐ ह्रीं श्री शांति-कुन्थु-अरनाथ जिनेन्द्र! अत्र अवतर अवतर संवौषट आह्वाननम्।

ॐ ह्रीं श्री शांति-कुन्थु-अरनाथ जिनेन्द्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्।

ॐ ह्रीं श्री शांति-कुन्थु-अरनाथ जिनेन्द्र! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्।

पावन निर्मल नीर समुज्ज्वल श्री चरणों मे अर्पित है।
जन्म मरण नाशो हे स्वामी सादर हृदय समर्पित है।।
शान्ति कुन्थु अरनाथ जिनेश्वर तीर्थंकर मंगलकारी।
कामदेव सम्राट चक्रवर्ती पद त्यागी बलिहारी।।

ॐ ह्रीं श्री शांति कुन्थु अरनाथ जिनेन्द्राय जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जलं निर्व..

तन का ताप विनाशक चंदन श्री चरणों में अर्पित है।
भव आताप मिटाओ स्वामी सादर हृदय समर्पित है।। शान्ति..।।

ॐ ह्रीं श्री शांति कुन्थु अरनाथ जिनेन्द्राय संसारताप विनाशनाय चंदनं निर्व...

अक्षय तन्दुल पुंज मनोहर श्री चरणों में अर्पित है।
अनुपम अक्षय निज पद दो प्रभु सादर हृदय समर्पित है।।
शान्ति कुन्थु अरनाथ जिनेश्वर तीर्थंकर मंगलकारी।
कामदेव सम्राट चक्रवर्ती पद त्यागी बलिहारी।।

ॐ ह्रीं श्री शांति कुन्थु अरनाथ जिनेन्द्राय अक्षयपद प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति..

अतिशय सुन्दर भाव पुष्प शुभ श्री चरणों में अर्पित है।
काम रोग विध्वंस करो प्रभु सादर हृदय समर्पित है।। शान्ति..।।

ॐ ह्रीं श्री शांति कुन्थु अरनाथ जिनेन्द्राय कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति...

मन भावन नैवेद्य सुहावन श्री चरणों में अर्पित है।
क्षुधा व्याधि नाशो हे स्वामी सादर हृदय समर्पित है।। शान्ति..।।

ॐ ह्रीं श्री शांति कुन्थु अरनाथ जिनेन्द्राय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति...

अन्धकार नाशक जड़दीपक श्री चरणों में अर्पित है।
मोह तिमिर हर लो हे स्वामी सादर हृदय समर्पित है।। शान्ति..।।

ॐ ह्रीं श्री शांति कुन्थु अरनाथ जिनेन्द्राय मोहांधकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति

महा सुगन्धित धूप निशकित श्री चरणों में अर्पित है।
अष्ट कर्म अरि ध्वंस करो प्रभु सादर हृदय समर्पित है।। शान्ति..।।

ॐ ह्रीं श्री शांति कुन्थु अरनाथ जिनेन्द्राय अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति...

पुण्य भाव का सारा शुभफल श्री चरणों में अर्पित है।
परम मोक्ष फल दो हे स्वामी सादर हृदय समर्पित है।। शान्ति..।।

ॐ ह्रीं श्री शांति कुन्थु अरनाथ जिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति..

अष्ट द्रव्य का अर्घ्य अष्ट विधि श्री चरणों में अर्पित है।
निज अनर्घ्य पद दो हे स्वामी सादर हृदय समर्पित है।। शान्ति..।।

ॐ ह्रीं श्री शांति कुन्थु अरनाथ जिनेन्द्राय अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति...

श्री शान्तिनाथ जी

नगर हस्तिनापुर के अधिपति विश्वसेन नृप परम उदार।
माता ऐरा देवी के सुत शान्तिनाथ मंगल दातार।।

कामदेव बारहवें पंचम चक्री सोलहवें तीर्थेश।
भरत क्षेत्र को पूर्ण विजयकर स्वामी आप हुए चक्रेश॥
नभ में नाशवान बादल लख उर में जागा ज्ञान विशेष।
भव भोगों से उदासीन हो ले वैराग्य हुये परमेश॥
निज आत्मानुभूति के द्वारा वीतराग अर्हन्त हुए।
मुक्त हुए सम्मेद शिखर से परम सिद्ध भगवन्त हुए॥

ॐ ह्रीं श्री शांतिनाथ जिनेन्द्राय गर्भजन्मतपज्ञाननिर्वाण पंचकल्याणक प्राप्ताय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्री कुन्थुनाथ जी

नगर हस्तिनापुर के राजा सूर्य सेन के प्रिय नन्दन।
राजदुलारे श्रीमती देवी रानी के सुत वन्दन॥
कामदेव तेरहवें तीर्थंकर सतरहवें कुन्थु महान।
छठे चक्रवर्ती बन पाई षट खण्डों पर विजय प्रधान॥
भोतिक वैभव त्याग मुनीश्वर बन स्वरूप में लीन हुए।
भाव शुभाशुभ का अभाव कर शुक्ल ध्यान तल्लीन हुए॥
ध्यान अग्नि से कर्म दग्ध कर केवलज्ञान स्वरूप हुए।
सिद्ध हुए सम्मेद शिखर से तीन लोक के भूप हुए॥

ॐ ह्रीं श्री कुन्थुनाथ जिनेन्द्राय गर्भजन्मतपज्ञाननिर्वाण पंचकल्याणक प्राप्ताय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्री अरनाथ जी

नगर हस्तिनापुर के पति नृपराज सुदर्शन पिता महान।
माता मित्रा देवी की आखों के तारे हे भगवान॥
कामदेव चौदहवें सप्तम चक्री श्री अरनाथ जिनेश।
अष्टादशम तीर्थंकर जिन परम पूज्य जिनराज महेश॥
छहखडों पर शासन करते करते जग अनित्य पाया।
भव तन भोगों से विरक्तिमय उर वैराग्य उमड़ आया॥

पंच महाव्रत धारण करके निज स्वभाव में हुए मगन।
पा कैवल्य श्री सम्मेद शिखर से पाया मुक्ति गगन।।

ॐ ह्रीं श्री अरनाथ जिनेन्द्राय गर्भजन्मतपज्ञाननिर्वाण पंचकल्याणक प्राप्ताय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

शान्ति कुन्थु अरनाथ जिनेश्वर के चरणों में नित वन्दन।
विमल ज्ञान आशीर्वाद दो काट सकू मैं भव बन्धन।।१।।

सम्यक् दर्शन ज्ञान चरितमय लिया पथ निर्ग्रन्थ महान।
सोलह वर्ष रहे छद्मस्थ अवस्था में तीनों भगवान।।२।।

परम तपस्वी परम संयमी मौनी महाव्रती निजराज।
निज स्वभाव के साधन द्वारा पाया तुमने निज पद राज।।३।।

शुक्ल ध्यान के द्वारा स्वामी पाया तुमने केवलज्ञान।
दे उपदेश भव्य जीवों को किया सकल जग का कल्याण।।४।।

मैं अनादि से दुखिया व्याकुल मेरे संकट दूर करो।
पाप ताप संताप लोभ भय मोह क्षोभ चकचूर करो।।५।।

सम्यक् दर्शन प्राप्त करूँ मैं निज परिणति में रमण करूँ।
रत्नत्रय का अवलम्बन ले मोक्ष मार्ग का ग्रहण करूँ।।६।।

वीतराग विज्ञान ज्ञान की महिमा उर में छा जाए।
भेद ज्ञान हो निज आश्रय से शुद्ध आत्मा दर्शाए।।७।।

यही विनय है यही भावना विषय कषाय अभाव करूँ।
तुम समान मुनि बन हे स्वामी निज चैतन्य स्वभाव वरूँ।।८।।

ॐ ह्रीं श्री शांति-कुन्थु-अरनाथ जिनेन्द्राय अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मृग, अज, मीन चिन्ह चरणों में प्रभु प्रतिमा जो करे नमन।
जन्म जन्म के पातक क्षय हो मिट जाता भव दुःख न्दन।।

रोग शोक दारिद्र आदि पापों का होता शीघ्र शमन।
भव समुद्र से पार उतरते जो नित करते प्रभु पूजन॥

॥ इत्याशीर्वादः परिपुष्पांजलिं क्षिपेत् ॥

जाप्य मंत्र – ॐ ह्रीं श्री शांति कुन्थु अरनाथ जिनेन्द्राय नमः।

भक्ति

ऐसे मुनिवर देखे वन में, जाके राग द्वेष नहीं तन में।टेक।
ग्रीष्म ऋतु शिखर के उपर, मग्न रहे ध्यानन में।१।
चातुर्मास तरुतल ठाडे, बूंद सहे छिन-छिन में।२।
शीत मास दरिया के किनारे, धीरज धारें ध्यानन में।३।
ऐसे गुरु को मैं शीश नवाऊँ, नित देत ढोक चरणन में।४।

*

श्री शान्ति-कुन्थु-अरनाथ जिन पूजन

(छन्द-वीर)

हो चक्रवर्ती अरु कामदेव, प्रभु तीर्थंकर पदवी धारी।
हे शांति-कुन्थु-अरनाथ! सदा, मैं करूँ वंदना अविकारी॥
आकर आप समीप जिनेश्वर, आनन्द उर न समाया है।
तव दर्शन पाकर नाथ आज, निजदर्शन मैंने पाया है॥

ॐ ह्रीं श्री शांतिनाथ-कुन्थुनाथ-अरनाथजिनेन्द्रसमूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट् (इत्याह्वाननम्)।

ॐ ह्रीं श्री शांतिनाथ-कुन्थुनाथ-अरनाथजिनेन्द्रसमूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः (स्थापनम्)।

ॐ ह्रीं श्री शांतिनाथ-कुन्थुनाथ-अरनाथजिनेन्द्रसमूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् (सन्निधिकरमण्)।

(छंद-अवतार)

मिथ्यामल धोने आज, सम्यक् जल पाया।
प्रभु जन्म-मरण से शून्य, ज्ञायक दिखलाया।।
हे शांति-कुन्थु-अरनाथ, चरणन शिर नाऊँ।
है महामहिम निजभाव, प्रभुता प्रगटाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री शांतिनाथ-कुन्थुनाथ-अरनाथजिनेन्द्रेभ्यो जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जलं...

संताप रहित निज भाव, निज में दरशाया।
भव ताप नशावन हेतु, चन्दन सम पाया।। हे शांति..।।

ॐ ह्रीं श्री शांतिनाथ-कुन्थुनाथ-अरनाथजिनेन्द्रेभ्यो भवाताप विनाशनाय चंदनं निर्व..

शाश्वत अक्षत निजभाव, दृष्टि में आया।
क्षत् रागादिक विनशाय, अक्षय पद ध्याया।। हे शांति..।।

ॐ ह्रीं श्री शांतिनाथ-कुन्थुनाथ-अरनाथजिनेन्द्रेभ्यो अक्षयपद प्राप्तये अक्षतान् निर्व..

निष्काम रूप लख देव, काम पलाया है।
सम्यक् श्रद्धा का पुष्प, आज चढाया है।। हे शांति..।।

ॐ ह्रीं श्री शांतिनाथ-कुन्थुनाथ-अरनाथजिनेन्द्रेभ्यः कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्व.

दर्शन कर निज में नाथ, तृप्ति पायी है।
भव-भव की क्षुधा जिनेश, आज नशायी है।। हे शांति..।।

ॐ ह्रीं श्री शांतिनाथ-कुन्थुनाथ-अरनाथजिनेन्द्रेभ्यः क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्व.

तिहूँ जग का जाननहार, आज जनाया है।
आलोकित है निज लोक, मोह भगाया है।। हे शांति..।।

ॐ ह्रीं श्री शांतिनाथ-कुन्थुनाथ-अरनाथजिनेन्द्रेभ्यो मोहांधकार विनाशनाय दीपं निर्व.

प्रभु आत्म ध्यान की अग्नि, अब सुलगाई है।
पर-परिणति की दुर्गन्ध, सर्व जलाई है।।हे शांति..।।

ॐ ह्रीं श्री शांतिनाथ-कुन्थुनाथ-अरनाथजिनेन्द्रेभ्यो अष्टकर्म- दहनाय धूपं निर्व..

फल की अभिलाषा नाहिं, निज पद पाया है।
पूर्णत्व स्वयं में देख, आनन्द छाया है।।हे शांति..।।

ॐ ह्रीं श्री शांतिनाथ-कुन्थुनाथ-अरनाथजिनेन्द्रेभ्यो मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्व..

प्रभु वीतराग विज्ञानमय शुभ अर्घ्य लिया।
निज में अनर्घ्य पद नाथ, निज से प्राप्त किया।।
हे शांति-कुन्थु-अरनाथ, चरणन शिर नाऊँ।
है महामहिम निजभाव, प्रभुता प्रगटाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री शांतिनाथ-कुन्थुनाथ-अरनाथजिनेन्द्रेभ्यो अनर्घ्यपद प्राप्तये-अर्घ्यं निर्व..

जयमाला

(दोहा)

जग जड़ वैभाव त्यागकर, निज वैभव प्रगटाय।
शांति-कुन्थु-अरनाथ की, नित जयमाला गाय।।

(छन्द-जोगीरासा)

शांति जिनेश्वर दर्शन कर, निज शांति स्वरूप लखाया।
धन्य परम उपकारी निज सुख, निज में मुझे दिखाया।।टेक।।
चाह दाह में भटका अब तक, सुख का लेश न पाया।
मंद कषायों द्वारा अंतिम, ग्रैवियक तक तक हो आया।।
काललब्धि जागी प्रभुवर, मैं पास आपके आया।।धन्य.।।
आत्मा तो स्वभाव से सुखमय, दिव्य रहस्य बताया।
दीन दुखी पामर मैं हूँ, ये भ्रम का रोग मिटाया।।
अन्तर में प्रत्यक्ष देख सुख, अब विश्वास जगाया।।धन्य.।।
निज चैतन्य विभूती देखी, शक्ति अनन्त निहारी।
प्रभु सम प्रभुता लखकर खुद ही भाव हुए अविकारी।।
होना नहीं सदा हूँ सुखमय, सम्यक् ज्ञान उपाया।।धन्य.।।
अब तो यही भावना प्रभुवर, निज में ही रम जाऊँ।
स्वानुभूतिमय परिणति में ही, काल अनन्त बिताऊँ।।
निज में ही संतुष्ट, कामनाओं का हुआ सफाया।।धन्य.।।
कुन्थुनाथ स्तुति करते, गणधर इन्द्रादिक हारे।
तुम महिमा वर्णन करने में, हम तो मंद विचारे।।
निजस्वभाव साधन द्वारा ही, प्रभु मुक्ति पद पाया।।धन्य.।।

कुन्थु आदि सूक्ष्म जीवों के, प्रति भी दया सिखाई।
परम अहिंसामयी धर्म की, ध्वजा प्रभो! फहराई।।
चलूँ आपके पद चिह्नों पर आज यही मन भाया।।धन्य.।।
धर्मचक्र के अर स्वरूप, सार्थक प्रभु नाम तुम्हारा।
प्रभो आपका दर्शन पाकर, जागा भाग्य हमारा।।
भव का फेरा मिटा सहज ही, शिवपथ मैंने पाया।।धन्य.।।
चक्री का साम्राज्य आपने, तृणवत् क्षण में छोड़ा।
हो निर्ग्रन्थ प्रभो उपयोग सु, निज ज्ञायक में जोडा।।
सकलकर्म का नाश किया प्रभु, अविचल शिवपद पाया।।धन्य.।।
कहूँ कहाँ तक भाव बहुत हैं, अल्प शक्ति है मेरी।
तुम सम ही प्रभुतामय निस्पृह, परिणति होवे मेरी।।
चाहूँ कुछ नहिं सहजभाव से, सविनय शीश नवाया।।धन्य.।।

ॐ ह्रीं श्री शांतिनाथ-कुन्थुनाथ-अरनाथ-जिनेन्द्रेभ्यो अनर्घ्यपद प्राप्तये जयमाला-पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।

(दोहा) मंगलमय मंगलकरण, आत्मस्वरूप महान।
शुद्धातम में मग्न हो, प्रगटे पद निर्वाण।।

।। इत्याशीर्वादः परिपुष्पाञ्जलिं क्षिपामि।।

जाप्य मंत्र – ॐ ह्रीं श्री शांति कुन्थु अरनाथ जिनेन्द्राय नमः।

*

श्री पंच बालयति जिन पूजन

जय प्रभु वासुपूज्य तीर्थंकर मल्लिनाथ प्रभु नेमि जिनेश।
जय श्री पार्श्वनाथ परमेश्वर जय जय महावीर योगेश।।
राग द्वेष हर मोह क्षोभहर मंगलमय हे जिन तीर्थेश।
पंच बालयति परम पूज्य प्रभु बाल ब्रह्मचारी ब्रह्मेश।।

ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्य मल्लिनाथ नेमिनाथ पार्श्वनाथ महावीर पंचबालयति जिनेन्द्र! अत्र अवतर अवतर संवौषट् (आह्वाननम्)।

ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्य मल्लिनाथ नेमिनाथ पार्श्वनाथ महावीर पंचबालयति जिनेन्द्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः (स्थापनम्)।

ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्य मल्लिनाथ नेमिनाथ पार्श्वनाथ महावीर पंचबालयति जिनेन्द्र! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् (सन्निधिकरणम्)।(पुष्पाञ्जलि क्षिपेत्)

इस जल में इतनी शक्ति नहीं जो अतरमल को धो डाले।
शुद्धातम का जो अनुभव ले वह पूर्ण शुद्धता को पा ले।।
वासुपूज्य श्री मल्लि नेमि प्रभु पारस महावीर भगवान।
पाप ताप संताप विनाशक पंच बालयति पूज्य महान।।

ॐ ह्रीं श्री पंचबालयति जिनेन्द्रेभ्यो जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति..

चन्दन में इतनी शक्ति सही जो अन्तर ज्वाला शान्त करे।
शुद्धातम का जो अनुभव ले वह भव की पीड़ा शान्त करे।।वासुपूज्य.।।

ॐ ह्रीं श्री पंचबालयति जिनेन्द्रेभ्यो संसापताप विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति..

तन्दुल में इतनी शक्ति नहीं जो निज अखण्ड पट प्रगटाये।
शुद्धातम का जो अनुभव ले वह निश्चित अक्षय पद पाये।। वासुपूज्य.।।

ॐ ह्रीं श्री पंचबालयति जिनेन्द्रेभ्यो अक्षयपद प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

पुष्पों में इतनी शक्ति नहीं जो शील स्वभाव प्रकाश करें।
शुद्धातम का जो अनुभव ले वह काम भाव नाश करें।। वासुपूज्य.।।

ॐ ह्रीं श्री पंचबालयति जिनेन्द्रेभ्यो कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

ऐसा नैवेद्य नहीं जग में जो तृष्णा व्याधि मिटा डाले।
शुद्धातम का जो अनुभव ले तो क्षुधा अनादि हटा डाले।। वासुपूज्य.।।

ॐ ह्रीं श्री पंचबालयति जिनेन्द्रेभ्यो क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

ऐसा दीपक न कहीं जग में जो अन्तर के तम को हर ले।
शुद्धातम का जो अनुभव ले वह अन्तर आलोकित कर ले।। वासुपूज्य.।।

ॐ ह्रीं श्री पंचबालयति जिनेन्द्रेभ्यो मोहांधकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति...

जड़ रूप धूप में शक्ति नहीं जो कर्म शक्ति का हरण करें।
शुद्धातम का जो अनुभव ले वह निज स्वरूप का वरण करे।वासुपूज्य.।

ॐ ह्रीं श्री पंचबालयति जिनेन्द्रेभ्यो अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

तरु फल में ऐसी शक्ति नहीं जो अन्तर पूर्ण शान्ति छाये।
शुद्धातम का जो अनुभव ले वह महा मोक्ष फल को पाये।। वासुपूज्य.।।

ॐ ह्रीं श्री पंचबालयति जिनेन्द्रेभ्यो महामोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

यह अर्घ्य न ऐसा शक्तिवान् जो सिद्ध लोक तक पहुँचाये।
शुद्धातम का जो अनुभव ले वह निज अनर्घ्य पद को पाये।। वासुपूज्य.।।

ॐ ह्रीं श्री पंचबालयति जिनेन्द्रेभ्यो अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्घ्यावलि

श्री वासुपूज्य स्वामी

चम्पापुर राजा वसुपूज्य सुमाता विजया के नन्दन।
पन्द्रह मास रतन बरसाये सुरपति ने माँ के आँगन।।

दिक्कुमारियों ने सेवा कर मां का किया मनोरंजन।
सोलह स्वप्न लखे माता ने निद्रा में सोते इक दिन।।

जन्म लिया तुमने कुमार वय में ही की दीक्षा धारण।
चार घातिया कर्म नाश कर केवलज्ञान लिया पावन।।

भादव शुक्ला चतुर्दशी को चम्पापुर से मुक्त हुए।
परम पूज्य प्रभु हर अघातिया, मुक्ति रमा से युक्त हुए।।

महिष चिह्न चरणों में शोभित वासुपूज्य को करूँ नमन।
शुद्ध आत्मा की प्रतीति कर मैं भी पाऊँ मुक्ति सदन।।

ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्य जिनेन्द्राय गर्भजन्मतपज्ञानमोक्ष कल्याण प्राप्ताय अर्घ्यं निर्व..

श्री मल्लिनाथ स्वामी

मिथिलापुर नगरी के अधिपति कुम्भराज गृह जन्म लिया।
माता प्रभावती हर्षायी देवों ने आनन्द किया।।

ऐरावत गज पर ले जाकर गिरि सुमेर अभिषेक किया।
मात-पिता को सौप इन्द्र ने हर्षित नाटक नृत्य किया।।

लघु वय में ही दीक्षा धारी पंच मुष्टि कच-लोच किया।
छह दिन ही छद्मस्थ रहे फिर तुमने केवलज्ञान लिया।।

संबल कूट शिखर सम्मेदाचल पर जय जय गान हुआ।
फागुन शुक्ल पंचमी के दिन महा मोक्ष कल्याण हुआ।।

कलश चिह्न चरणों में शोभित मल्लिनाथ को करूँ नमन।
मन वच तन प्रभु के गुण गाऊँ मैं भी पाऊँ सिद्ध सदन।।

ॐ ह्रीं श्री मल्लिनाथ जिनेन्द्राय गर्भजन्मतपज्ञानमोक्ष कल्याण प्राप्ताय अर्घ्यं निर्व..

श्री नेमिनाथ स्वामी

नृपति समुद्र विजय हर्षाये शिवा देवी उर धन्य किया।
नेमिनाथ तीर्थंकर तुमने शौर्यपुरी में जन्म लिया।।

नगर द्वारिका से विवाह हित जूनागढ़ को किया प्रयाण।
पशुओं की करुणा पुकार सुन उर छाया वैराग्य महान।।

भव तन भोगों से विरक्त हो पंच महाव्रत ग्रहण किया।
शीघ्र अनन्त चतुष्टय प्रगटा, पर विभाव सब हरण किया।।

ले कैवल्य मोक्ष सुख पाया, पाया शिवपद अविकारी।
शुभ आषाढ शुक्ल अष्टम को धन्य हो गई गिरनारी।।

शंख चिह्न चरणों में शोभित नेमिनाथ को करूँ नमन।
निज स्वभाव के साधन द्वारा मैं भी पाऊँ मुक्ति सदन।।

ॐ ह्रीं श्री नेमिनाथ जिनेन्द्राय गर्भजन्मतपज्ञानमोक्षकल्याणक प्राप्ताय अर्घ्यं निर्व..

श्री पार्श्वनाथ स्वामी

वाराणसी नगर अति सुन्दर अश्वसेन नृप के नन्दन।
माता वामादेवी के सुत पार्श्वनाथ प्रभु जग वन्दन।।

तुम कुमार वय में ही दीक्षित होकर निज में हुए मगन।
कमठ शत्रु कर सका न कुछ भी यदपि किया उपसर्ग सघन।।

केवलज्ञान प्राप्त होते ही रचा इन्द्र ने समवशरण।
दे उपदेश भव्य जीवों को मुक्ति वधू का किया वरण॥
श्रावण शुक्ल सप्तमी के दिन अष्ट कर्म का किया हनन।
कूट स्वर्णभद्र सम्मेद शिखर से पाया सिद्ध सदन॥
सर्प चिन्ह चरणों में शोभित पार्श्वनाथ को करूँ नमन।
त्रैकालिक ज्ञायक स्वभाव से मैं भी पाऊँ मोक्ष भवन॥

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय गर्भजन्मतपज्ञानमोक्षकल्याणक प्राप्ताय अर्घ्यं निर्व..

श्री महावीर स्वामी

कुण्डलपुर वैशाली नृप सिद्धार्थ पुत्र श्री वीर जिनेश।
प्रियकारिणी मात त्रिशला के उर से जन्मे महा महेश॥
अविवाहित रह राजपाट सब ठुकराया मुनिव्रत धारे।
द्वादश वर्ष तपस्या करके कर्म शिथिल सब कर डारे॥
केवल लब्धि प्रगट कर स्वामी जगती को उपदेश दिया।
तीस वर्ष तक कर विहार प्रभु मोक्षमार्ग संदेश दिया॥
कार्तिक कृष्ण अमावस्या को अष्ट कर्म अवसान किया।
पावापुर के महोद्यान से सिद्ध स्वपद निर्वाण लिया॥
सिंह चिन्ह चरणों में शोभित वर्धमान को करूँ नमन।
ध्रुव चैतन्य स्वरूप लक्ष्य में ले मैं भी पाऊँ मुक्ति भवन॥

ॐ ह्रीं श्री महावीर जिनेन्द्राय गर्भजन्मतपज्ञानमोक्षकल्याणक प्राप्ताय अर्घ्यं निर्व..

जयमाला

जय प्रभु वासुपूज्य जिन स्वामी मल्लिनाथ जय नेमि महान।
जय श्री पार्श्वनाथ प्रभु जिनवर जय जय महावीर भगवान॥
पर परिणति तज निज परिणति से चारों गति हर हुए महान।
पाँचों तीर्थंकर प्रभु तुमने पाई पंचम गति निर्वाण॥

अब वैराग्य जगे मन मेरे भव भोगों में रमूँ नहीं।
भाव शुभाशुभ के प्रपंच में और अधिक अब थमूँ नहीं।।
भक्ति भाव से यही विनय हैं निज अटूट बल दो स्वामी।
चिंतामणि रत्नत्रय पाकर बन जाऊँ शिव पथ गामी।।
मैं पाचों समवाय प्राप्त कर निज पाँचों स्वाध्याय करूँ।
पंचम करण लब्धि को पाकर भेदज्ञान पुरुषार्थ करूँ।।
वर्ण पंच रस पंच गंध दो, स्पर्श अष्ट मुझ में न कही।
पाँच वर्गणा पुद्गल की पर्यायों से संबंध नहीं।।
पंचभेद मिथ्यात्व त्यागकर समकित अंगीकार करूँ।
पंच पाप तज एकदेश पाँचों अणुव्रत स्वीकार करूँ।।
पंचेन्द्रिय के पंच विषय तज पंच प्रमाद विनाश करूँ।
पंच महाव्रत पंच समिति धर पंचाचार प्रकाश करूँ।।
पंच प्रकार भाव आस्रव का बंध नहीं होने पाए।
पंचोत्तर के वैभव का भी लोभ नहीं उर में आए।।
संयम पाँच प्रकार ग्रहण कर में पांचों चारित्र धरूँ।
पंचम यथाख्यात चारित पा कर्मघातिया नाश करूँ।।
पंचम भाव पारिणामिक से पाऊँ स्वामी पंचम ज्ञान।
पंच परावर्तन अभाव कर पाऊँ पंचम गति भगवान।।
पंच बालयति तुम चरणों में यही विनय है बारम्बार।
सादि अनंत सिद्ध पद पाऊँ नित्य निरंजन शिवसुखकार।।

ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्य मल्लिनाथ नेमिनाथ पार्श्वनाथ महावीर पंच बालयति जिनेन्द्रेभ्यो पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंच बालयति प्रभु चरण, भाव सहित उर धार।
मन वच तज जो पूजते, वे होते भव पार।।

।। इत्याशीर्वादः परिपुष्पांजलिं क्षिपेत् ।।

जाप्य मंत्र – ॐ ह्रीं श्री पंच बालयति जिनेन्द्राय नमः।

श्री पंच-बालयति पूजन

(स्थापना) **(छन्द-मत्तसवैया)**

हे ब्रह्मचर्य के धनी ब्रह्ममय, परम पूज्य त्रिभुवन स्वामी।
हे पंच बालयति तीर्थंकर, तुम सम परिणति हो जगनामी।।
आनन्दमयी निज परम ब्रह्म, मैंने प्रत्यक्ष निहारा है।
उल्लास हृदय में छाया प्रभु, जब मैंने तुम्हें चितारा है।।
ज्यों दर्पण सन्मुख हो जग में, मोही तन रूप सजाते हैं।
त्यों तुम पूजन कर हे विभुवर, हम अपना भाव बढाते हैं।।

(सोरठा)

वासुपूज्य मल्लि नेमि पार्श्व प्रभु, महावीर जिन।
नमत होय सुख चैन, द्रव्य-दृष्टि धर पूज हूँ।।

ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्य-मल्लिनाथ-नेमिनाथ-पार्श्वनाथ-महावीर-पंचबालयतितीर्थंकराः! अत्र अवतर अवतर संवौषट् (आह्वाननम्)।

ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्य-मल्लिनाथ-नेमिनाथ-पार्श्वनाथ-महावीर-पंचबालयतितीर्थंकराः! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः (स्थापनम्)।

ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्य-मल्लिनाथ-नेमिनाथ-पार्श्वनाथ-महावीर-पंचबालयतितीर्थंकराः अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् (सन्निधिकरणम्)।

(वीर छन्द)

निज में जुड़ती है दृष्टि जभी, समता का सहज प्रवाह बहे।
आनन्द अपूर्व प्रकट होवे, तब जन्म-जरा-मृत नहीं रहे।।
है जन्म-जरा-मृत रहित प्रभु! मम आज दृष्टि में आया है।
समरस से तृप्त रहूँ विभुवर, मैंने जल यहाँ चढाया है।।
अतिशय है ब्रह्म भाव मेरा, कामादिक दुर्मति भागी है।
प्रभु ब्रह्मचर्य परमानन्द पा, अतिशय प्रतीति उर जागी है।।

ॐ ह्रीं श्री पंचबालयति-तीर्थंकरेभ्यो जन्म-जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति..

निज परम शांति शीतलता से, आपूर्ण सरोवर मम प्रभु है।
भव रहित जहाँ भव ताप नहीं, सर्वोत्कृष्ट सुखमय विभु है।।

जब ताप नहीं तब चंदन का भी, काम नहीं कुछ शेष रहा।
चन्दन प्रभु यहीं चढाया है, निष्पाप-ताप निज रूप गहा।।
अतिशय है ब्रह्म भाव मेरा, कामादिक दुर्मति भागी है।
प्रभु ब्रह्मचर्य परमानन्द पा, अतिशय प्रतीति उर जागी है।।

ॐ ह्रीं श्री पंचबालयति-तीर्थंकरेभ्यो संसारताप विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति...

छिलके से ढका हुआ अक्षत, छिलका हटते ही प्रकट हुआ।
पर्याय दृष्टि हटते ही त्यों, मम अक्षय प्रभु प्रत्यक्ष हुआ।।
निज अक्षय प्रभु के आश्रय से ही, राग-द्वेष का होवे क्षय।
ये अक्षत यहाँ चढाये हैं, मैंने पाया है पद अक्षय।।अतिशय..।।

ॐ ह्रीं श्री पंचबालयति-तीर्थंकरेभ्यो अक्षयपद प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

निष्काम पूर्ण निज वैभव का, मैं तृप्त हो गया दर्शन कर।
संकल्प विकल्प प्रवेश न हों, रहते सीमा से ही बाहर।।
अद्‌भुत रहस्य यह पाया है, इच्छाओं की उत्पत्ति नहीं।
बस निज स्वभाव में मग्न रहूँ, ये पुष्प चढाता आज यहीं।।अतिशय..।।

ॐ ह्रीं श्री पंचबालयति-तीर्थंकरेभ्यो कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

समरस अमृत का सागर है, क्षुत् पीडा का अस्तित्व नहीं।
त्यागोपादान शून्य पर से, कुछ ग्रहण त्याग कर्तृत्व नहीं।।
जो निज स्वभाव से च्युत होकर तन के आश्रय से भूख लगी।
नैवेद्य समर्पित यहीं प्रभो! स्वाश्रय से भव की भूख भगी।।अतिशय..।।

ॐ ह्रीं श्री पंचबालयति-तीर्थंकरेभ्यो क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रकाशत्व शक्ति शाश्वत मेरी है, सहज प्रकाशित मम स्वभाव।
सब बाह्य प्रकाश अनावश्यक, उसमें नहिं दिखता निज स्वभाव।।
बाहर की दृष्टि छोड़ अहो! स्वसन्मुख चिन्मय ज्योति जगे।
ये दीपक यहीं विसर्जित है, अन्तर लौ से तम मोह भगे।।अतिशय..।।

ॐ ह्रीं श्री पंचबालयति-तीर्थंकरेभ्यो मोहांधकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

दश धर्ममयी शाश्वत सुगन्ध चेतन नंदन में महक रही।
दुर्गन्धित भाव विकारों का, किंचित् भी है अस्तित्व नहीं।।
यह धूप यहीं प्रभु छोड़ रहा, अब पर से दृष्टि हटाई है।
स्वसन्मुख होकर अब प्रभु सम, स्वधर्म सुरभि शुभ पायी है।।
अतिशय है ब्रह्म भाव मेरा, कामादिक दुर्मति भागी है।
प्रभु ब्रह्मचर्य परमानन्द पा, अतिशय प्रतीति उर जागी है।।

ॐ ह्रीं श्री पंचबालयति-तीर्थंकरेभ्यो अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।।

प्रभु मुक्त स्वरूप सहज पाया, आनन्द अपूरव छाया है।
शिवफल की भी वांछा न रही, अन्तर पुरुषार्थ जगाया है।।
ज्ञानी तो फल वाँछा त्यागे, पर मूढ़ त्याग का फल चाहे।
फल चढा रहा हूँ हे जिनवर, बस ये विकल्प भी नहिं आये।।अतिशय..।।

ॐ ह्रीं श्री पंचबालयति-तीर्थंकरेभ्यो मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रभु सर्व विशुद्ध स्वतत्त्व लखा, अब दृष्टि न पल भी हटती है।
होता उपयोग जभी बाहर, एकाग्र भावना जगती है।।
एकाग्र रहे उपयोग सदा, यह ही निश्चय से अर्घ्य कहा।
जिससे अविचल अनर्घ्यपद हो, प्रबु बाह्य अर्घ्य इसलिये तजा।अतिशय.।

ॐ ह्रीं श्री पंचबालयति-तीर्थंकरेभ्योऽनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

वासुपूज्य श्री मल्लिजिन, नेमि पार्श्व महावीर।
बाल ब्रह्मचारी सुजिन, नमत मिटै भवपीर।।

(छन्द-पद्धरि)

जय वासुपूज्य देवाधिदेव, मंगलमय मंगलकरन एव।
जय चिदानन्द चिद्रूप सार, धारी निज महिमा निर्विकार।।

पूरवभव में तुमने स्वामी, सुन युगमंधर प्रभु की वाणी।
नित आत्मभावना भाई थी, तीर्थंकर प्रकृति बंधाई थी।।

तप कर महाशुक्र विमान गये, चय नृप वसुपूज्य के पुत्र भये।
कल्याणक देव मनाये थे, पर निज में आप समाये थे॥
भोगों को नहीं स्वीकार किया, दूरहि से प्रभुवर छोड़ दिया।
हो बालयति दीक्षा धारी, प्रकटाया निज पद सुखकारी॥
कर रहा अर्चना मल्लिनाथ, भवि दर्शन कर होते सनाथ।
वट वृक्ष विशाल गिरा लख कर, पूरव भव में दीक्षा धरकर॥
तीर्थंकर पद का बन्ध किया, अपराजित स्वर्ग प्रयाण किया।
तँहतैं चयकर अवतार लिया, शादी के समय वैराग लिया॥
छह दिन छद्मस्थ रहे स्वामी, नव-केवल लब्धि रमा पायी।
भव्यों को शिवपथ दर्शाया, सम्मेदशिखर से शिव पाया॥
जय नेमीश्वर महिमा महान, सुन पशु क्रन्दन वैराग्य ठान।
छोडे पशु अरु राजुल छोडी, भवबन्धन की कड़ियाँ तोड़ी॥
जग को अनुपम आदर्श दिया, प्रभु धर्म अहिंसा प्रकट किया।
गिरनार शिखर से शिव पाया, प्रभु चरणों में हम सिर नाया॥
जय पार्श्वनाथ तव गुण अपार, गणधर भी पावें नहीं पार।
इक दिवस सभा में विराज रहे, साकेत नरेश की भेंट लिये॥
इक दूत वहाँ आया था, साकेत विभव दरशाया था।
ऋषभादि प्रभु स्मरण हुआ, वैराग्य हृदय में जाग उठा॥
दीक्षा ले निज में मग्न हुए, तब कमठ घोर उपसर्ग किये।
अप्रभावित अचल रहे जिनवर, परमात्म दशा प्रगटी सत्वर॥
ऐसी स्थिरता प्रभु पाऊँ, बस परम ब्रह्म में रम जाऊँ।
हे महावीर विभु परम धीर, महिमा सागर से गम्भीर॥
शादी प्रसंग जब आया था, प्रभुवर तुमने ठुकराया था।
दीक्षा ले द्वादश वर्ष प्रभो, दुर्द्धर तप धारा आप विभो॥
निज ध्यान अग्नि द्वारा जिनेश, कर्मों को ध्वस्त किया अशेष।
अन्तिम तीर्थंकर अभिरामी, मैं करूँ वन्दना जगनामी॥

तव दर्शन करके हे स्वामी, मैंने निज महिमा पहिचानी।
प्रभु प्रबल पराक्रम प्रगटाऊँ, रागादि भाव पर जय पाऊँ।।

जो तीर्थ आपने प्रगटाया, वह ही स्वामी मुझको भाया।
कीचड़ लपेट तन धोना क्या, अरु कूद अग्नि में रोना क्या ?

श्रद्धान परम जागा मन में, सुख शान्ति सदा है अन्तर में।
परमाणु मात्र भी नहीं पर में, मेरा सर्वस्व सदा मुझमें।।

उपयोग नहीं पर में भागे, अतिचार नहीं किंचित् लागे।
प्रभुवर ! निज में ही रम जाऊँ, निज परम ब्रह्मचर्य प्रगटाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री पंचबालयति-तीर्थंकरेभ्योऽनर्घ्यपद प्राप्तये जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति..

(दोहा) परम ब्रह्म आनन्दमय, चित् स्वभाव अविकार।
समयसार में लीन हो, होऊँ भव से पार।।

।। पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि ।।

जाप्य मंत्र – ॐ ह्रीं श्री पंच बालयति जिनेन्द्राय नमः।

भक्ति

चरणों में आ पड़ा हूँ, हे द्वादशांग वाणी।
मस्तक झुका रहा हूँ, हे द्वादशांग वाणी।।टेक।।

मिथ्यात्व को नशाया, निज तत्त्व को प्रकाशा।
आपा-पराया-भासा, हो भानु के समानी।।

षट् द्रव्य को बताया, स्याद्वाद को जताया।
भवफंद से छुड़ाया, सच्ची जिनेन्द्र वाणी।।

रिपु चार मेरे मग में, जंजीर ड़ाले पग में।
ठाड़े है मोक्ष मग में, तकरार मोंसो ठानी।।

दे ज्ञान मुझ को माता, इस जग से तोड़ूँ नाता।
होवे 'सुदर्शन' साता, नहि जग में तेरी सानी।।

श्री जिनवाणी पूजन

जय जय श्री जिनवाणी जय जग कल्याणी जय जय जय।
तीर्थंकर की दिव्यध्वनि जय, गुरु गणधर गुम्फित जय जय॥
स्याद्वाद पीयूषमयी जय लोकालोक प्रकाशमयी।
द्वादशांग श्रुत ज्ञानमयी जय वीतराग ज्ञानमयी।
श्री जिनवाणी के प्रताप से मैं अनादि मिथ्यात्व हरूँ।
श्री जिनवाणी मस्तक धारूँ बारम्बार प्रणाम करूँ॥

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्‌भव सरस्वती वाग्वादिनी! अत्र अवतर अवतर संवौषट् (आह्वाननम्)।

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्‌भव सरस्वती वाग्वादिनी! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः (स्थापनम्)।

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्‌भव सरस्वती वाग्वादिनी! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् (सन्निधिकरणम्)।

मिथ्यात्वकलुषता के कारण पाया ना बिन्दु समता जल का।
अपने ज्ञायकस्वभाव का भी अब तक प्रतिभास नहीं झलका॥
मैं श्री जिनवाणी चरणों में मिथ्यातम हरने आया हूँ।
श्री महावीर की दिव्यध्वनि हृदयंगम करने आया हूँ॥

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्‌भव सरस्वतीदेव्यै जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति..

श्रद्धा विपरीत रही मेरी निज पर का ज्ञान नहीं भाया।
चन्दन सम शीतलतामय हूँ इतना भी ध्यान नहीं आया॥मैं श्री ..॥

ॐ ह्रीं श्री जिन मुखोद्‌भव सरस्वतीदेव्यै संसारताप विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति..

यह आधि व्याधि पर की उपाधि भव भ्रमण बढ़ाती आई है।
अक्षय अखंड़ निज की समाधि अबतक न कभी भी पाई है॥मैं श्री ..॥

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्‌भव सरस्वतीदेव्यै अक्षयपद प्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति..

एकत्व बुद्धि करके पर में कर्तापन का अभिमान किया।
मैं निज का कर्ता भोक्ता हूँ ऐसा न कभी भी मान किया॥मैं श्री ..॥

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्‌भव सरस्वतीदेव्यै कामबाण विध्वंनाय पुष्पं निर्वपामीति..

---

(११) समयसार-१५५ जीवादि पदार्थों का श्रद्धान सम्यक्दर्शन है।

यह माया अनन्तानुबन्धी प्रति समय जाल उलझाती है।
चारों कषाय की यह तृष्णा उलझन न कभी सुलझती है।।
मैं श्री जिनवाणी चरणों में मिथ्यातम हरने आया हूँ।
श्री महावीर की दिव्यध्वनि हृदयंगम करने आया हूँ।।
ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भव सरस्वतीदेव्यै क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति..
तत्वों के सम्यक निर्णय बिन श्रद्धा की ज्योति न जल पाई।
अज्ञान अंधेरा हटा नहीं सन्मार्ग न देता दिखलाई।।मैं श्री ..।।
ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भव सरस्वतीदेव्यै मोहांधकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति..
होकर अनन्त गुण का स्वामी, पर का ही दास रहा अबतक।
निजगुण की सुरभि नहीं भाई भवदधि में कष्ट सहा अबतक।।मैं श्री ..।।
ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भव सरस्वतीदेव्यै अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।
मैं तीन लोक का नाथ पुण्य धूल के पीछे पागल हूँ।
चिन्तामणि रत्न छोड़कर मैं रागों में आकुल-व्याकुल हूँ।।मैं श्री ..।।
ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भव सरस्वतीदेव्यै महामोक्षफल प्राप्ताय फलं निर्वपामीति...
अब तक का जितना पुण्य शेष हर्षित हो अर्पण करता हूँ।
अनुपम अनर्घ्य पद पा जाऊँ मैं यही भावना भाता हूँ।।मैं श्री ..।।
ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भव सरस्वतीदेव्यै अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

जय जय जय ओंकार दिव्यध्वनि योगीजन नित करते ध्यान।
मोहतिमिर मिथ्यात्व विनाशक ज्ञान प्रकाशक सूर्य समान।।१।।
वस्तु स्वरूप प्रकाशक निज पर भेद ज्ञान की ज्योति महान।
सप्तभंग, स्याद्वाद नयाश्रित द्वादशांग शत ज्ञान प्रमाण।।२।।
द्वादश अंग पूर्व चौदह परिकर्म सूत्र से शोभित है।
पथ चूलिका चौ अनुयोग प्रकीर्णक चौदह भूषित है।।३।।
जय जय आचारांग प्रथम जय सूत्रकृतांग द्वितीय नमन।
स्थानांग तृतीय नमन जय चौथा समवायांग नमन।।४।।

जय व्याख्याप्रज्ञप्ति पाँचवाँ षष्टम ज्ञातृधर्मकथांग।
उपासकाध्ययनांग सातवाँ अष्टम अन्तःकृतदशांग ।।५।।
अनुत्तरोत्पादक दशांग नौ प्रश्न व्याकरणअंग दशम।
जय विपाकसूत्रांग ग्यारहवाँ दृष्टिवाद द्वादशाम परम ।।६।।
दृष्टिवाद के चौदह भेद रूप है चौदह पूर्व महान।
ग्यारह अंगपूर्व नौ तक का द्रव्य लिंगी कर सकता ज्ञान ।।७।।
पहला है उत्पाद पूर्व दूजा अग्रायणीय जानो।
तीजा हे वीर्यानुवाद चौथा है अस्तिनास्ति मानो ।।८।।
पंचम ज्ञान प्रवाद कि षष्टम सत्यप्रवाद पूर्व जानो।
सप्तम आत्मप्रवाद आठवाँ कर्मप्रवाद पूर्व मानो ।।९।।
नवमा प्रत्याख्यानप्रवाद सु दशवाँ विद्यानुवाद जान।
ग्यारहवाँ कल्याणवाद बारहवाँ प्राणानुवाद महान ।।१०।।
तेरहवाँ क्रियाविशाल चौदहवाँ लोकबिन्दु है सार।
अंग प्रविष्ट अरु अंग बाह्य के भेद प्रभेद सदा सुखकार ।।११।।
दृष्टिवाद का भेद पाँचवाँ पंच चूलिका नाम यथा।
जलगत थलगत मायागत अरु रुपगता आकाशगता ।।१२।।
पाँच भेद परिकर्म उपांग के प्रथम चन्द्र प्रज्ञप्ति महान।
दूजा सूर्यप्रज्ञप्ति तीसरा जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति प्रधान ।।१३।।
चौथा द्वीप-समूह प्रज्ञप्ति पंचम व्याख्या प्रज्ञप्ति जान।
सूत्र आदि अनुयोग अनेकों है उपांग धन धन श्रुत ज्ञान ।।१४।।
तत्त्वों के सम्यक् निर्णय से होता शुद्धातम का ज्ञान।
सरस्वती माँ के आश्रय से होता है शाश्वत कल्याण ।।१५।।
इसीलिए जिनवाणी का अध्ययन चिंतन मैं कर लूँ।
काल लब्धि पाकर अनादि अज्ञान निविडतम को हर लूँ ।।१६।।
नव पदार्थ छह द्रव्य काल त्रय, सात तत्व को मैं जानूँ।
तीन लोक, पंचास्तिकाय, छह लेश्याओं को पहचानूँ ।।१७।।

षट्कायिक का दया पालकर समिति गुप्ति व्रत को पा लूँ।
द्रव्य भाव चारित्र धार कर तप संयम को अपना लूँ।।१८।।
निज स्वभाव में लीन रहूं मैं निज स्वरूप में मुस्काऊँ।
क्रम-क्रम से मैं चार घातिया नाश करूँ निज पद पाऊँ।।१९।।
प्राप्त चतुर्दश गुणस्थान कर पूर्ण अयोगी बन जाऊँ।
निज सिद्धत्व प्रगट कर सिद्ध शिला पर सिद्ध स्वपद पाऊँ।।२०।।
यह मानव पर्याय धन्य हो जाये माँ ऐसा बल दो।
सम्यक् दर्शन ज्ञान चरित रत्नत्रय पावन निर्मल दो।।२१।।
भव्य भावना जगा हृदय में जीवन मंगलमय कर दो।
हे जिनवाणी माता मेरा अन्तर ज्योतिर्मय कर दो।।२२।।

ॐ ह्रीं श्री जिन मुखोद्भव सरस्वतीदेव्यै जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा) जिनवाणी का सार है, भेद-ज्ञान सुखकार।
जो अन्तर में धारते हो जाते भवपार।।

।। इत्याशीर्वादः परिपुष्पांजलिं क्षिपेत् ।।

जाप्यमंत्र– ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भूत श्रुतज्ञानाय नमः ।।

*

श्री समयसार पूजन

जय जय जय ग्रन्थाधिराज श्री समयसार जिन श्रुत वन्दन।
कुन्दकुन्द आचार्य रचित परमागम को सादर वन्दन।।
द्वादशांग जिनवाणी का है इसमें सार परम पावन।
आत्म तत्त्व की सहज प्राप्ति का है अपूर्व अनुपम साधन।।
सीमंधर प्रभु की दिव्यध्वनि इसमें गूँज रही प्रतिक्षण।
इसको हृदयंगम करते ही हो जाता सम्यक्दर्शन।।
समयसार का सार प्राप्त कर सफल करूँ मानव जीवन।
सब सिद्धों का वन्दन करके करता विनय सहित पूजन।।

ॐ ह्रीं श्री परमागम समयसाराय पुष्पांजलिं क्षिपामि।

निज स्वरूप को भूल आज तक चारों गति में किया भ्रमण।
जन्म मरण क्षय करने को अब निज स्वरूप में करूँ रमण।।
समयसार का करूँ अध्ययन समयसार का करूँ मनन।
कारण समयसार को ध्याऊँ समयसार को करूँ नमन।।

ॐ ह्रीं श्री परमागम समयसाराय जन्म-जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति...

भव ज्वाला में प्रतिपल जल जल करता रहा करुण क्रन्दन।
निज स्वभाव ध्रुव का आश्रय ले काटूँगा जग के बन्धन।।समयसार.।।

ॐ ह्रीं श्री परमागम समयसाराय संसारताप विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।।

पुण्य पाप के मोह जाल में बढ़ी सदा भव की उलझन।
संवर भाव जगा उर में तो, भव समुद्र का हुआ पतन।।समयसार.।।

ॐ ह्रीं श्री परमागम समयसाराय अक्षयपद प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

कामभोग बन्धन की कथनी सुनी अनन्तों बार सघन।
चिर परिचित जिनश्रुत अनुभूति न जागी मेरे अंतर्मन।।समयसार.।।

ॐ ह्रीं श्री परमागम समयसाराय कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

क्षुधारोग की औषधि पाने का न किया है कभी जतन।
आत्मभान करके ही महका वीतरागता का उपवन।।समयसार.।।

ॐ ह्रीं श्री परमागम समयसाराय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

भ्रम अज्ञान तिमिर के कारण पर में माना अपनापन।
सत्य बोध होते ही पाई ज्ञान सूर्य की दिव्य किरण।।समयसार.।।

ॐ ह्रीं श्री परमागम समयसाराय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

आर्त रौद्र ध्यानों में पड़कर पर भावों में रहा मगन।
शुचिमय ध्यान धूप देखी तो धर्म ध्यान की लगी लगन।।समयसार.।।

ॐ ह्रीं श्री परमागम समयसाराय अष्टकर्म विनाशनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।।

भव तरु के विषमय फल खाकर करता आया भाव मरण।
सिद्ध स्वपद की चाह जगी तो यह पर्याय हुई धनधन।।समयसार.।।

ॐ ह्रीं श्री परमागम समयसाराय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।।

आस्रव बंध भाव का कारण मिटा राग का एक न कण।
द्रव्य दृष्टि बनते ही पाया निज अनर्घ्य पद का दर्शन।।समयसार.।।

ॐ ह्रीं श्री परमागम समयसाराय अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

समयसार के ग्रन्थ की महिमा अगम अपार।
निश्चय नय भूतार्थ है अभूतार्थ व्यवहार।।

दुर्नय तिमिर निवारण कारण समयसार को करूँ प्रणाम।
हूँ अबद्धस्पृष्ट नियत अविशेष अनन्य मुक्ति का धाम।।

सप्त तत्त्व अरूँ नव पदार्थ का इसमें सुन्दर वर्णन है।
जो भूतार्थ आश्रय लेता पाता सम्यक्दर्शन है।।

जीव अजीव अधिकार प्रथम में भेद ज्ञान की ज्योति प्रधान।
[१]"जो पस्सदि अप्पाणं" णियदं हो जाता सर्वज्ञ महान।।

कर्ता कर्म अधिकार समझकर कर्ताबुद्धि विनाश करूँ।
[२]"सम्मदंसणं णाणं एसो" निज शुद्धात्म प्रकाश करूँ।।

पुण्य पाप अधिकार जान दोनों में भेद नहीं मानूँ।
ये विभाव परिणति से हैं उत्पन्न बंधमय ही जानूँ।।

[३]"रत्तो बंधदि कम्मं" जानूँ उर विराग ले कर्म हरूँ।
राग शुभाशुभ का निषेध कर निज स्वरूप को प्राप्त करूँ।।

मैं आस्रव अधिकार जानकर राग द्वेष अरु मोह हरूँ।
भिन्न द्रव्य आस्रव से होकर भावास्रव को नष्ट करूँ।।

---

१. स.सा. १५ अपनी आत्मा को ... नियत देखता है।

२. स.सा. १४४ सम्यक्दर्शन ज्ञान ऐसी संज्ञा मिलती है।

३. समयसार १५०-रागी जीव कर्म बांधता है।

मैं संवर अधिकार समझकर संवरमय ही भाव करूँ।
[१]"अप्पाणं झायंतो" दर्शन ज्ञानमयी निज भाव करूँ॥

मैं अधिकार निर्जरा जानूँ पूर्ण निर्जरावन्त बनूँ।
पूर्व उदय में सम रहकर मैं चेतन ज्ञायक मात्र रहूँ॥

[२]"अपरिग्गहो अणिच्छो भणिदो" सारे कर्म झराऊँगा।
मैं रतिवन्त ज्ञान में होकर, शाश्वत शिव सुख पाऊँगा॥

बन्ध अधिकार, बन्ध की ही तो सकल प्रक्रिया बतलाता।
बिना समकित जप तप व्रत संयम बंध मार्ग है कहलाता॥

राग-द्वेष भावों से विरहित जीव बन्ध से रहता दूर।
[३]"णिच्छय णया सिदापुणणिणो" अष्टकर्म करता चकचूर॥

जान मोक्ष अधिकार शीघ्र ही नष्ट करूँ विष-कुम्भ-विभाव।
आत्म स्वरूप प्रकाशित करके प्रकटाऊँ परिपूर्ण स्वभाव॥

शुद्ध आत्मा ग्रहण करूँ मैं सर्व बंध का कर छेदन।
निशंकित होकर पाऊँगा मुक्ति शिला का सिंहासन॥

सर्व विशुद्ध ज्ञान का है अधिकार अपूर्व अमूल्य महान।
पर कर्तृत्व नष्ट हो जाता होता शिव पथ पर अभियान॥

कर्म फलों को मूढ़ भोगता ज्ञानी उनका ज्ञाता है।
इसीलिये अज्ञानी दुख पाता ज्ञानी सुख पाता है॥

भाव भासना नौ अधिकारों से कर निज में वास करूँ।
[४]"मिच्छत्तं अविरमणं कसाय जोग" की सत्ता नाश करूँ॥

कुन्दकुन्द ने समयसार मंदिर का किया दिव्य निर्माण।
वीतराग सर्वज्ञ देव की दिव्य-ध्वनि का इसमें ज्ञान॥

---

१. समयसार १८६-आत्मा को ध्याता हुआ।
२. समयसार २१०-११-१२-१३—अनिच्छुक को अपरिग्रही कहा है।
३. समयसार १७२-निश्चय नयाश्रित मुनि मोक्ष प्राप्त करते हैं।
४. समयसार १६४-मिथ्यात्व अविरति कषाय योग से आस्रव है।

सर्व चार सौ पन्द्रह गाथाएँ प्राकृत भाषा में जान।
सारभूत निज समयसार को ही अनुभव लूँ भव्य महान॥
अमृतचन्द्राचार्य देव ने आत्मख्याति टीका लिखकर।
कलश चढाये दो सौ अठ्हत्तर स्वर्णिम अनुपम सुन्दर॥
श्री जयसेनाचार्य स्वामी की सरस तात्पर्यवृत्ति टीका।
ऋषि मुनि विद्वानों ने लिक्खा वर्णन समयसारजी का॥
ज्ञानी ध्यानी मुनियों ने भी तोरण द्वार सजाये हैं।
समयसार के मधुर गीत गा वन्दनवार चढ़ाये हैं॥
भिन्न-भिन्न भाषाओं में इसके अनुवाद हुए सुन्दर।
काव्य अनेकों लिखे गये हैं समयसारजी पर मनहर॥
श्री कानजी स्वामी ने भी करके समयसार प्रवचन।
समयसार मन्दिर पर सविनय हर्षित किया ध्वजारोहण॥
समयसार पढ़ सम्यक्दर्शन ज्ञान चारित्र प्रकटाऊँगा।
[८]''तिव्वं मंद सहावं'' क्षयकर वीतराग पद पाऊँगा॥
पंच परावर्तन अभाव कर सिद्ध लोक में जाऊँगा।
काल लब्धि आई है मेरी परम मोक्ष पद पाऊँगा॥
भक्ति भाव से समयसार की मैंने पूजन की है देव।
कारण समयसार की महिमा उर में जाग उठी स्वयमेव॥
नमः समयसाराय स्वानुभव ज्ञान चेतनामयी परम।
एक शुद्ध टंकोत्कीर्ण, चिन्मात्र पूर्ण चिद्रूप स्वयम्॥
नय पक्षों से रहित आत्मा ही है समयसार भगवान।
समयसार ही सम्यक्दर्शन समयसार ही सम्यग्ज्ञान॥

ॐ ह्रीं श्री परमागम समयसाराय अनर्घ्यपद प्राप्तये जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति..

समयसार के भाव को जो लेते उर धार।
निज अनुभव को प्राप्त कर हो जाते भव पार॥

॥ इत्याशीर्वादः परिपुष्पांजलिं क्षिपेत्॥

जाप्यमंत्र – ॐ ह्रीं श्री परमागम समयसाराय नमः।

८. स.सा. २८८ बन्धन के तीव्र मन्द स्वभाव को।

श्री कुंदकुंदाचार्य पूजन

कुन्दकुन्द आचार्य देव के चरण कमल में करूँ नमन।
कुन्दकुन्द आचार्य देव की वाणी के उर धरूँ सुमन।।
कुन्दकुन्द आचार्य देव की भाव सहित करके पूजन।
निज स्वभाव के साधन द्वारा मोक्ष प्राप्ति का करूँ यतन।।
[१]''परिणामो बंधो परिणामो मोक्खो'' करूँ आत्म दर्शन।
सिद्ध स्वपद की प्राप्ति हेतु मैं निज स्वरूप में करूँ रमन।।

ॐ ह्रीं श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव चरणाग्रेषु पुष्पांजलि क्षिपामि।

समयसार वैभव के जल से उर में उज्ज्वलता लाऊँ।
[२]''दंसण मूलो धम्मो'' सम्यक्‌दर्शन निज में प्रगटाऊँ।।
कुन्दकुन्द आचार्य देव के चरण पूज निज को ध्याऊँ।
सब सिद्धों को वंदन कर ध्रुव अचल सु अनुपमगति पाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेवाय जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

समयसार वैभव चन्दन से निज सुगन्ध को विकसाऊँ।
[३]''वत्थु सहावो धम्मो'' सम्यक्‌ज्ञान सूर्य को प्रगटाऊँ।।कुन्द..।।

ॐ ह्रीं श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेवाय संसारताप विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

समयसार वैभव के उत्तम अक्षत गुण निज में लाऊँ।
[४]''चारित्तं खलु धम्मो'' सम्यक्‌चारित रथ पर चढ जाऊँ।।कुन्द..।।

ॐ ह्रीं श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेवाय अक्षयपद प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

समयसार वैभव के पावन पुष्पों में मैं रम जाऊँ।
[५]''दाणं पूजा मुख्खयसावयधम्मो'' शील स्वगुण पाऊँ।।कुन्द..।।

ॐ ह्रीं श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेवाय कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

समयसार वैभव के मनभावन नैवेद्य हृदय लाऊँ।
[६]'जो जाणदि अरिहंत' निज ज्ञायक स्वभाव आश्रय पाऊँ।।कुन्द..।।

ॐ ह्रीं श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेवाय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

---

१. परिणामों से वध और परिणामों से मोक्ष होता है। २. अष्टपाहुड २-धर्मका मूल सम्यग्दर्शन है। ३. वस्तु स्वभाव ही धर्म है। ४. प्रवचनसार-७—चारित्र ही धर्म है।
५. रयणसार-१०—श्रावक धर्म में दान पूजा मुख्य है।
६. प्रवचनसार ८०—जो अरहंत को जानता है।

समयसार वैभव के ज्योतिर्मय दीपक उर में लाऊँ।
[७]"दंसण भट्ठा भट्ठा" मिथ्या मोह तिमिर हर सुख पाऊँ।।कुन्द..।।

ॐ ह्रीं श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेवाय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

समयसार वैभव की शुचिमय ध्यान धूप उर में ध्याऊँ।
[८]"ववहारोऽभूयत्थो" निश्चय आश्रित हो शिवपद पाऊँ।।कुन्द..।।

ॐ ह्रीं श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेवाय अष्टकर्म विध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

समयसार वैभव के भव्य अपूर्व मनोरम फल पाऊँ।
[९]"णियमं मोक्ख उवायो" द्वारा महा मोक्ष पद प्रगटाऊँ।।कुन्द..।।

ॐ ह्रीं श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेवाय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

समयसार वैभव का निर्मल भाव अर्घ्य उर में लाऊँ।
[१०]"अहमेक्को खलु सुद्धो" चिंतन कर अनर्घ्यपद को पाऊँ।।कुन्द..।।

ॐ ह्रीं श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेवाय अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

मंगलमय भगवान वीर प्रभु मंगलमय गौतम गणधर।
मंगलमय श्री कुन्दकुन्द मुनि, मंगलमय जैन धर्म सुखकर।।

कन्नड़ प्रान्त बड़ा दक्षिण में कोण्ड कुण्ड था ग्राम अपूर्व।
कुन्दकुन्द ने जन्म लिया था दो सहस्र वर्षों के पूर्व।।

ग्यारह वर्ष आयु थी जब तुमने स्वामी वैराग्य लिया।
श्रेष्ठ महाव्रत धारण करके मुनि पद का सौभाग्य लिया।।

एक दिवस जंगल में बैठे घोर तपस्या में थे लीन।
कंचन सी काया तपती थी आत्म ध्यान में थे तल्लीन।।

---

७. अष्टपाहुड ३—जो पुरुष दर्शन से भ्रष्ट है, वे भ्रष्ट है।

८. समयसार ११—व्यवहार नय अभूतार्थ है।

९. नियमसार ४—(रत्नत्रयरूप) नियम मोक्ष का उपाय है।

१०. समयसार १८, ७३ में निश्चय से एक हूँ, शुद्ध हूँ।

उसी समय इक पूर्व जन्म का मित्र देव व्यंतर आया।
देख तपस्यारत भू पर आ श्रद्धा से मस्तक नाया॥
ध्यान पूर्ण होने पर मुनि ने, जब अपनी आंखे खोली।
देखा देव पास बैठा है, बोले तब हित मित बोली॥
धर्म वृद्धि हो, धर्म वृद्धि हो, धर्म वृद्धि हो, तुम हो कौन।
हर्षित पुलकित गद्गद् होकर, तोडा तब व्यन्तर ने मौन॥
नमस्कार कर भक्ति भाव से पूर्व जन्म का दे परिचय।
पिछले भव में परम मित्र थे, क्षमा करें मेरी अविनय॥
सीमंधर स्वामी के दर्शन को विदेह भू जाता हूँ।
यही प्रार्थना चलें आप भी नम्र विनय मन लाता हूँ॥
चिर इच्छा साकार हुई, मुनिवर ने स्वर्ण समय जाना।
बोले श्री जिनवाणी सुनकर मुझे लौट भारत आना॥
मुनि को साथ लिया उसने आकाश मार्ग से गमन किया।
तीर्थंकर सर्वज्ञ देव को जा विदेह में नमन किया॥
सीमन्धर के समवसरण को देखा मन में हर्षाये।
जन्म-जन्म के पातक क्षय कर अनुपम ज्ञान रत्न पाये॥
सीमन्धर प्रभु के चरणों में झुक कर किया विनय वन्दन।
प्रभु की शांत मधुर छवि लखकर धन्य हुए भारत नन्दन॥
प्रभु से प्रश्न हुआ लघु मुनिवर कौन कहाँ से आये हैं।
खिरी दिव्यध्वनि, 'कुन्दकुन्द मुनि भरत क्षेत्र से आये हैं'॥
सीमन्धर ने दिव्यध्वनि में कुन्दकुन्द का नाम लिया।
भव–भव के अघ नष्ट हो गये, मुनि ने विनय प्रणाम किया॥
विनयी होकर कुन्दकुन्द ने जिनवाणी का पान किया।
अष्ट दिवस रह समवशरण में, द्वादशांग का ज्ञान लिया॥
अक्षय ज्ञान उदधि मन में भर और हृदय में प्रभु का नाम।
सीमन्धर तीर्थंकर प्रभु को करके बारम्बार प्रणाम॥
फिर विदेह से चले और नभ पथ से भारत में आये।
तीर्थंकर वाणी का सागर मन–मन्दिर में लहराये॥

जो सुनकर आये जिनवाणी फिर उसको लिपि रूप दिया।
जगत जीव कल्याण करें निज ऐसा शास्त्र स्वरूप दिया॥
राग मात्र को हेय बताया उपादेय निज शुद्धातम।
भाव शुभाशुभ का अभाव कर होता चेतन परमातम॥
समयसार में निश्चय–नय का पावनमय सन्देश भरा।
श्री पंचास्तिकाय को रचकर द्रव्य तत्त्व उपदेश भरा॥
प्रवचनसार बनाया तुमने भेदज्ञान को बतलाया।
मूलाचार लिखा मुनिजन हित साधु मार्ग को दर्शाया॥
नियमसार की रचना अनुपम, रयणसार गूँथा चित लाय।
लघु सामायिक पाठ बनाया, लिखा सिद्ध प्राभृत सुखदाय॥
श्री अष्टपाहुड षट्प्राभृत द्वादशानुप्रेक्षा के बोल।
चौरासी पाहुड लिक्खे जो ज्ञात नहीं हमको अनमोल॥
ताड़पत्र पर लिखे ग्रन्थ सब सफल हुई चिर अभिलाषा।
जन–जन की वाणी कल्याणी धन्य हुई प्राकृत भाषा॥
जीवों के प्रति करुणा जागी मोक्षमार्ग उपदेश दिया।
और तपस्याभूमि बनाकर गिरि कुंद्रादि पवित्र किया॥
अमृतचन्द्राचार्य देव की टीका आत्मख्याति विख्यात।
पद्मप्रभमलधारि देव की टीका नियमसार प्रख्यात॥
श्री जयसेनाचार्य रचित तात्पर्यवृत्ति टीका पावन।
श्री कानजी स्वामी के भी अनुपम समयसार प्रवचन॥
पद्मनन्दि गुरु वक्रग्रीव मुनि एलाचार्य आपके नाम।
गृद्धपृच्छ आचार्य यतीश्वर कुन्दकुन्द हे गुण के धाम॥
हे आचार्य आपके गुण वर्णन करने की मुझमें शक्ति नहीं।
पथ पर चलें आपके ऐसी भी तो अभी विरक्ति नहीं॥
भक्ति विनय के सुमन तुम्हारे चरणों में अर्पित हैं देव।
भव्य भावना यही एक दिन मैं सर्वज्ञ बनूँ स्वयमेव॥

[११] ''जीवादि सद्दहणं सम्मत्तं'' पाऊँ प्रभु करूँ प्रणाम।
इन चरणों की पूजन का फल पाऊँ सिद्धपुरी का धाम।।

ॐ ह्रीं श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेवाय अनर्घ्यपद प्राप्तये महार्घ्य निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा) कुन्दकुन्द मुनि के वचन, भाव सहित उरधार।
निज आतम जो ध्यावते, पाते ज्ञान अपार।।

(ईत्याशीर्वादः पुष्पांजलि क्षिपेत्)

जाप्यमन्त्र– ॐ ह्रीं श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेवाय नमः।

*

श्री पंचमेरु पूजन

स्थापना

मध्यलोक में ढाई द्वीप के पंचमेरु को करूँ प्रणाम।
मेरु सुदर्शन, विजय, अचल, मंदिर, विद्युन्माली अधिराम।।
मेरु सुदर्शन एक लाख योजन ऊँचा है महिमावान।
शेष मेरु योजन चौरासी सहस्र उच्च हैं दिव्य महान।।
पाँचों मेरु अनादि निधन हैं स्वर्णमयी सुन्दर सुविशाल।
इन पर अस्सी जिन चैत्यालय वन्दूं सदा झुकाऊँ भाल।।
इनका पूजन वन्दन करके मैं अनादि अघ तिमिर हरूँ।
मन वच काया शुद्धिपूर्वक श्री जिनवर को नमन करूँ।।

ॐ ह्रीं श्री सुदर्शन विजय अचल मंदर विद्युन्माली पंचमेरु सम्बन्धी जिन चैत्यालयस्थ जिनप्रतिमा समूह! अत्र अवतर अवतर संवोषट् (आह्वाननम्)।

ॐ ह्रीं श्री सुदर्शन विजय अचल मंदर विद्युन्माली पंचमेरु सम्बन्धी जिन चैत्यालयस्थ जिनप्रतिमा समूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः (स्थापनम्)।

ॐ ह्रीं श्री सुदर्शन विजय अचल मंदर विद्युन्माली पंचमेरु सम्बन्धी जिन चैत्यालयस्थ जिनप्रतिमा समूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् (सन्निधिकरणम्)।

---

११. ....

यह अथाह भव सागर जल पीकर भी तृषा न शांत हुई।
जन्म मरण के चक्कर में पड़कर मेरी मति भ्रान्त हुई।।
पंचमेरु के अस्सी जिन चैत्यालय को वन्दन कर लूँ।
भक्ति भाव से पूजन करके मैं भवसागर दुःख हर लूँ।।

ॐ ह्रीं श्री सुदर्शन विजय अचल मंदर विद्युन्माली पंचमेरु सम्बन्धी जिन चैत्यालयस्थ जिनबिंबेभ्यो जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

भव दावानल की भीषण ज्वाला में जल जल दुख पाया।
ताप निकंदन निजगुण चन्दन शीतलता पाने आया।।पंचमेरु.।।

ॐ ह्रीं श्री पंचमेरु सम्बन्धी जिन चैत्यालयस्थ जिनबिंबेभ्यो संसारताप विनाशनाय चंदनं.

भव समुद्र की चारों गतिमय भंवरों में गोता खाया।
अक्षयपद पाने को हे प्रभु कभी न अक्षत गुण भाया।।पंचमेरु.।।

ॐ ह्रीं श्री पंचमेरु सम्बन्धी जिन चैत्यालयस्थ जिनबिंबेभ्यो अक्षयपद प्राप्तये अक्षतं.

काम भाव से भव दुःख की श्रृंखला बढ़ाता ही आया।
महाशील के सुमन प्राप्त करने को देवशरण आया।।पंचमेरु.।।

ॐ ह्रीं श्री पंचमेरु सम्बन्धी जिन चैत्यालयस्थ जिनबिंबेभ्यो कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं..

जग के अनगिनती द्रव्यों को पाकर तृप्त न हो पाया।
इसीलिए निर्लोभ वृत्ति नैवेद्य प्राप्त करने आया।।पंचमेरु.।।

ॐ ह्रीं श्री पंचमेरु सम्बन्धी जिन चैत्यालयस्थ जिनबिंबेभ्यो क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं..

अंधकार में मार्ग भूलकर भटक भटक अति दुख पाया।
सम्यकज्ञान प्रकाश प्राप्त करने को यह दीपक लाया।।पंचमेरु.।।

ॐ ह्रीं श्री पंचमेरु सम्बन्धी जिन चैत्यालयस्थ जिनबिंबेभ्यो मोहांधकार विनाशनाय दीपं..

विकट जगत जंजाल कर्ममय इसको तोड़ नहीं पाया।
आत्म ध्यान की ध्यान अग्नि में कर्म जलाने मैं आया।।पंचमेरु.।।

ॐ ह्रीं श्री पंचमेरु सम्बन्धी जिन चैत्यालयस्थ जिनबिंबेभ्यो अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्व..

भव अटवी में अटका अब तक नहीं धर्म का फल पाया।
चिदानंद चैतन्य स्वभावी मोक्ष प्राप्त करने आया।।पंचमेरु.।।

ॐ ह्रीं श्री पंचमेरु सम्बन्धी जिन चैत्यालयस्थ जिनबिंबेभ्यो मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्व.

क्षमा शील संयम व्रत तप शुचि विनयसत्य उर में लाया।
निज अनंतसुख पाने को प्रभु मैं वसुद्रव्य अर्ध लाया।।पंचमेरु.।।

ॐ ह्रीं श्री पंचमेरु सम्बन्धी जिन चैत्यालयस्थ जिनबिंबेभ्यो अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्व..

अर्घ्यावलि

जम्बूद्वीप सुमेरु सुदर्शन परम पूज्य अति मन भावन।
भू पर भद्रशाल वन, पाँच शतक योजन पर नन्दन वन।।
साढें बासठ सहस्र योजन ऊँचा है सौमनस सुवन।
फिर छत्तीस सहस्र योजन की ऊँचाई पर पांडुक वन।।
चारों वन की चार दिशा में एक एक जिन चैत्यालय।
सोलह चैत्यालय हैं अनुपम विनय सहित वन्दू जय जय।।

ॐ ह्रीं श्री जम्बूद्वीपसुदर्शनमेरु सम्बन्धी षोडशजिनचैत्यालयस्थ जिनबिंबेभ्यो अर्घ्यं निर्व..

खण्ड धातकी पूर्व दिशा में विजय मेरु पर्वत पावन।
भू पर भद्रशाल वन पाँच शतक योजन पर नंदन वन।।
साढ़े पचपन सहस्र योजन ऊँचा है सौमनस सुवन।
अट्ठाईस सहस्र योजन की ऊँचाई पर पांडुक वन।।चारों.।।

ॐ ह्रीं श्री धातकीखण्डद्वीप पूर्वदिशा विजयमेरु सम्बन्धी षोडशजिनचैत्यालयस्थ जिनबिंबेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

खण्ड धातकी पश्चिम दिशि में अचल पेरु पर्वत सुन्दर।
विजय मेरु सम इस पर भी हैं सोलह चैत्यालय मनहर।।
प्रातिहार्य आठों वसु मंगल द्रव्यों से जिन गृह शोभित।
देव इन्द्र विद्याधर चक्री दर्शन कर होते हर्षित।।चारों.।।

ॐ ह्रीं श्री धातकीखण्डद्वीप पश्चिमदिशा अचलमेरु सम्बन्धी षोडशजिनचैत्यालयस्थ जिनबिंबेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पुष्करार्ध की पूर्व दिशा में मंदिर मेरु महासुखमय।
विजय मेरु सम इसकी रचना सोलह चैत्यालय जय जय।।
चन्द्र सूर्य सम कान्ति सहित हैं रत्नमयी प्रतिमा से युक्त।
दस प्रकार के कल्पवृक्ष की मालाओं से हैं संयुक्त।।चारों.।।

ॐ ह्रीं श्री पुष्करार्धद्वीप पूर्वदिशा मंदिरमेरु सम्बन्धी षोडशजिनचैत्यालयस्थ जिनबिंबेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पुष्करार्ध की पश्चिम दिशि में विद्युन्माली मेरु महान।
विजय मेरु सम ही रचना है सोलह चैत्यालय छविमान।।
सुर विद्याधर असुर सदा ही पूजन करने आते हैं।
चारण ऋद्धि धारी मुनि भी दर्शन को आते जाते हैं।।चारों.।।

ॐ ह्रीं श्री पुष्करार्धद्वीप पश्चिमदिशा विद्युन्मालीमेरु सम्बन्धी षोडश जिनचैत्यालयस्थ जिनबिंबेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

एक लाख योजन का जम्बूद्वीप लोक के मध्य प्रधान।
चार लाख योजन का सुन्दर द्वीप धातकी खण्ड महान।।
सोलह लाख सुयोजन का है पुष्कर द्वीप अपूर्व ललाम।
इनमें पंचमेरु हैं अनुपम परम सुहावन हैं शुभ नाम।।
सूर्य चन्द्र देते प्रदक्षिणा करते निशदिन सतत प्रणाम।
एक मेरु सम्बन्धी सोलह पंचमेरू अस्सी जिन धाम।।
एक शतक अर अर्ध शतक योजन लम्बे चौड़े जिन धाम।
पौन शतक योजन ऊँचे हैं बने अकृतिम भव्य ललाम।।
एक एक में बिम्ब एक सौ आठ विराजित हैं मनहर।
आठ सहस्र छ सौ चालीस हैं श्री अरहंत मूर्ति सुन्दर।।
धनुष पांच सौ पद्मासन हैं गूंज रहा है जय जय गान।
नृत्य वाद्य गीतों से झंकृत दशों दिशायें महिमावान।।
तीर्थंकर के जन्मोत्सव की सदा गूंजती जय जयकार।
धन्य धन्य श्री जिन शासन की महिमा जग में अपरम्पार।।
नहीं शक्ति हममें जाने की यहीं भाव पूजन करते।
पुष्पांजलि व्रत को महिमा से भव-भव के पातक हरते।।
पंचमेरु की पूजा करके निज स्वभाव में आ जाऊँ।
भेद ज्ञान की नवल ज्योति से सम्यक्दर्शन प्रगटाऊँ।।

सम्यकज्ञान चरित्र धार मुनि बन स्वरूप में रम जाऊँ।
वसु कर्मों का सर्वनाश कर सिद्ध शिला पर जम जाऊँ।।
पंचमेरु जिन धाम की महिमा अगम अपार।
पुष्पांजलि व्रत जो करें हो जाये भव पार।।

ॐ ह्रीं श्री ढाईद्वीपसम्बन्धी सुदर्शन विजय अचल मंदर विद्युन्माली पंचमेरुसम्बन्धी अस्सीजिन चैत्यालयस्थ जिनबिम्बेभ्यो पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जाप्यमंत्र : ॐ ह्रीं श्री पंचमेरुसम्बन्धी चैत्यालयस्थ जिनबिम्बेभ्यो नमः।

*

षोडशकारण पूजन

षोडशकारण पर्व धर्म का करूँ धर्म आराधना।
मुक्ति सुनिश्चित यदि इस व्रत की हो निजात्म में साधना।।
दुःखी जगत के जीव मात्र का हित हो निज कल्याण हो।
अविनश्वर लक्ष्मी से परिणय मोक्ष प्रकाश महान हो।।
पूर्ण ज्ञान कैवल्य अनन्तानत गुणों का वास हो।
तीर्थंकर पद दाता सोलहकारण धर्म विकास हो।।

ॐ ह्रीं श्री दर्शनविशुद्धयादि षोडशकारणेभ्यो षोडश कारणानि धर्म अत्र अवतर अवतर संवौषट् (आह्वाननम्)।

ॐ ह्रीं श्री दर्शनविशुद्धयादि षोडशकारणेभ्यो षोडश कारणानि धर्म अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः (स्थापनम्)।

ॐ ह्रीं श्री दर्शनविशुद्धयादि षोडशकारणेभ्यो षोडश कारणानि धर्म अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् (सन्निधिकरणम्)।

जल की उज्जवल निर्मलता से मिथ्यामैल न धो सका।
आकुलतामय जन्म मरण से रहित न अब तक हो सका।।
निर्विकल्प अविकल सुखदायक सोलहकारण भावना।
जय जय तीर्थंकरपद दायक सोलहकारण भावना।।

ॐ ह्रीं श्री दर्शनविशुद्धयादि षोडशकारणेभ्यो जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जलं निर्व..

भाव मरण प्रति समय किया है मैंने काल अनादि से।
भव संताप बढ़ाया चलकर उल्टी चाल अनादि से॥
निर्विकल्प अविकल सुखदायक सोलहकारण भावना।
जय जय तीर्थंकरपद दायक सोलहकारण भावना॥

ॐ ह्रीं श्री दर्शनविशुद्धयादि षोडशकारणेभ्यो संसारताप विनाशनाय चंदनं निर्व..

मुक्त नहीं हो पाया अब तक पर भावों के जाल से।
यह संसार चक्र मिट जाये धर्म चक्र की चाल से॥निर्विकल्प..॥

ॐ ह्रीं श्री दर्शनविशुद्धयादि षोडशकारणेभ्यो अक्षयपद प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति.

काम वेदना भव पीड़ामय पर परणति दुखदायिनी।
काम विनाशक निज चेतन पद निज परणति सुखदायिनी॥निर्विकल्प..॥

ॐ ह्रीं श्री दर्शनविशुद्धयादि षोडशकारणेभ्यो कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्व..

जग तृष्णा की व्याधि हजारों आकुल करती है मुझे।
क्षुधा रोग की माया नागिन भव भव डसती हैं मुझे॥निर्विकल्प..॥

ॐ ह्रीं श्री दर्शनविशुद्धयादि षोडशकारणेभ्यो क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्व..

आत्मज्ञान रवि ज्योति प्रकाशित हो अब स्वपर प्रकाशिनी।
शुद्ध परमपद प्राप्ति भावना तम नाशक भव नाशिनी॥निर्विकल्प..॥

ॐ ह्रीं श्री दर्शनविशुद्धयादि षोडशकारणेभ्यो मोहांधकार विनाशनाय दीपं निर्व..

एक भूल कर्मों की संगति भव वन में उलझा रही।
अग्नि लोहे की संगति करके घन की चोटें खा रही॥निर्विकल्प..॥

ॐ ह्रीं श्री दर्शनविशुद्धयादि षोडशकारणेभ्यो अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति...

निज स्वभाव बिन हुई सदा ही अष्टकर्म की जीत ही।
महामोक्ष फल पाने का पुरुषार्थ किया विपरीत ही॥निर्विकल्प..॥

ॐ ह्रीं श्री दर्शनविशुद्धयादि षोडशकारणेभ्यो मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति..

जल फलादि वसु द्रव्य अर्घ्य का अर्थ कभी आया नहीं।
अविचल अविनश्वर अनर्घ्य पद इसीलिए पाया नहीं॥निर्विकल्प..॥

ॐ ह्रीं श्री दर्शनविशुद्धयादि षोडशकारणेभ्यो अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति..

जयमाला

भव्य भावना षोडशकारण विमल मुक्ति निर्वाण पथ।
तीर्थंकर पदवी पाने का द्रुत गतिवान प्रयाण रथ॥
रागादिक मिथ्यात्व रहित समकित हो निज की प्रीतिमय।
दोष रहित दर्शनविशुद्धि भावना मुक्ति संगीतमय॥
मन वच काया शुद्धि पूर्वक रत्नत्रय आराध ले।
तप का आदर परम विनय सम्पन्न भावना साध ले॥
पंचव्रत सहित शील स्वगुण परिपूर्ण शीलमय आचरण।
निरतिचार भावना शीलव्रत दोषहीन अशरण शरणा॥
शास्त्र पठन गुरु नमन पाठ उपदेश स्तवन ध्यानमय।
हो अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग भावना हृदय में ज्ञानमय॥
मित्र भ्रात पत्नी सुत आदिक और विषय संसार के।
इनमें पूर्ण विरक्ति रखे संवेग भावना धार के॥
हम उत्तम मध्यम जघन्य सत् पात्रों को पहिचान लें।
चार दान दे नित्य शक्तितप त्याग भावना जान लें॥
मुक्ति प्राप्ति हित आत्म आचरण शक्ति भक्ति अनुरूप हो।
द्वादश विधि से तपश्चरण भावना शक्ति तप रूप हो॥
इष्ट वियोग अनिष्ट योग उपसर्ग मरण या रोग हो।
साधु समाधि भावना अनुपम कभी न दुःखमय योग हो॥
रोगी मुनि की भक्ति पूर्वक सेवा सुश्रुषा करे।
भव्य भावना वैयावृत्यकरण मन मंजूषा भरे॥
मन वच काया से विजयी हो करे भक्ति अरहन्त की।
निर्मल अर्हद भक्ति भावना शुद्ध रूप भगवन्त की॥
गुरु निर्ग्रन्थ चरण वन्दन पूजन नित विनय प्रणाम हो।
नमस्कार आचार्य भक्ति भावना हृदय वसु याम हो॥

लोकालोक प्रकाशक जिन श्रुत व्याख्यान अनुरूप हो।
बहु श्रुत भक्तिभावना मन में उपाध्याय मुनि रूप हो।।

सप्त तत्व पंचास्तिकाय छह द्रव्य आदि सत् जान लें।
जिन आगम का पढ़ना प्रवचन भक्ति भावना मान ले।।

कार्योत्सर्ग प्रतिक्रमण समता स्वाध्याय वन्दन विमल।
देव स्तुतिषट कृत्य भावना आवश्यक निर्मल सरल।।

जिन अभिषेक नृत्य गीतों वाद्यों से पूजन अर्चना।
श्रुत प्रवचन मार्गप्रभावना जिनालयों की चर्चना।।

शीलवान चारित्रवान जिन मुनियों का आदर करे।
मृदुल भावना प्रवचन वत्सल मुनि चरणों में शिर धरे।।

इनके बाह्य आचरण ही से स्वर्ग सम्पदा झिल मिले।
आभ्यन्तर आचरण किया तो मोक्ष लक्ष्मी फल मिले।।

जितना अंश शुद्धि का होगा उतनी आत्म विशुद्धि रे।
सतत जाग्रत हो निजात्म में मुक्ति प्राप्ति की बुद्धि रे।।

पूर्ण शुद्धि होगी निजात्म में तब होगा निर्वाण रे।
ज्ञानानन्दी गुण अनन्तयय स्वयं सिद्ध भगवान रे।।

ॐ ह्रीं श्री दर्शनविशुद्धयादि षोडशकारणेभ्यो पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सोलह कारण भावना हरे जगत दुःख द्वन्द्व।
तीर्थंकर पद प्राप्त कर करो सदा आनन्द।।

।। इत्याशीर्वादः परिपुष्पांजलिं क्षिपेत् ।।

जाप्यमंत्र – ॐ ह्रीं श्री दर्शनविशुद्धयादि षोडशकारण भावनाभ्यो नमः।

*

श्री दशलक्षण धर्म पूजन

उत्तम क्षमा आत्मा का गुण उत्तम मार्दव विनय स्वरूप।
उत्तम आर्जव माया नाशक उत्तम शौच लोभहर भूप।।
उत्तम सत्य स्वभाव ज्ञानमय उत्तम संयम संवर रूप।
उत्तम तप निर्जरा कर्म की उत्तम त्याग स्वरूप अनूप।।
उत्तम आकिंचन विरागमय उत्तम ब्रह्मचर्य चिद्रूप।
धन्य धन्य दशधर्म परम पद दाता सुखमय मोक्ष स्वरूप।।

ॐ ह्रीं श्री उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, शौच, सत्य, संयम, तप, त्याग, आकिंचन, ब्रह्मचर्य दशलक्षण धर्म अत्र अवतर अवतर संवौषट्। (आह्वाननम्)

ॐ ह्रीं श्री उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, शौच, सत्य, संयम, तप, त्याग, आकिंचन, ब्रह्मचर्य दशलक्षण धर्म अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः। (स्थापनम्)

ॐ ह्रीं श्री उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, शौच, सत्य, संयम, तप, त्याग, आकिंचन, ब्रह्मचर्य दशलक्षण धर्म अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् (सन्निधिकरणम्)

जल स्वभाव शीतल निर्मल पीकर भी प्यास न बुझ पाई।
जन्म मरण का चक्र मिटाने आज धर्म की सुधि आई।।
उत्तम क्षमा मार्दव आर्जव शौच सत्य संयम तप त्याग।
आकिंचन ब्रह्मचर्य धर्म के दशलक्षण से हो अनुराग।।

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमादि दशधर्मांगाय जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति...

दाह निकंदन चंदन पाकर भी तो दाह न मिट पाई।
राग आग की ज्वाल बुझाने आज धर्म की सुधि आई।।उत्तम.।।२।।

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमादि दशधर्मांगाय संसारताप विनाशनाय चंदन निर्वपामीति...

शुभ्र अखंडित तन्दुल पाकर भी निज रुचि न सुहा पाई।
अजर अमर अक्षय पद पाने आज धर्म को सुधि पाई।।उत्तम.।।३।।

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमादि दशधर्मांगाय अक्षयपद प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

अगणित पुष्प सुवासित पाकर काम व्याधि न मिट पाई।
अब कन्दर्प दर्प हरने को आज धर्म की सुधि आई।।उत्तम.।।४।।

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमादि दशधर्मांगाय कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

जड की रुचि के कारण अब तक निज की तृप्ति न हो पाई।
सहज तृप्त चेतन पद पाने आज धर्म की सुधि आई।।
उत्तम क्षमा मार्दव आर्जव शौच सत्य संयम तप त्याग।
आकिंचन ब्रह्मचर्य धर्म के दशलक्षण से हो अनुराग।।

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमादि दशधर्मांगाय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मिथ्या भ्रम की चकाचौंध में दृष्टि शुद्ध न हो पाई।
मोह तिमिर का अन्त कराने आज धर्म की सुधि आई।।उत्तम.।।६।।

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमादि दशधर्मांगाय मोहांधकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति..

आर्त रौद्र ध्यानों में रहकर धर्म ध्यान छवि ना भाई।
अष्ट कर्म विध्वंस कराने आज धर्म की सुधि आई।।उत्तम.।।७।।

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमादि दशधर्मांगाय अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

राग हेय परिणति फल पाकर निज परिणति ना मिल पाई।
फल निर्वाण प्राप्त करने को आज धर्म की सुधि आई।।उत्तम.।।८।।

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमादि दशधर्मांगाय महामोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

चौरासी के क्रूर चक्र में उलझा शान्ति न मिल पाई।
निज अमरत्व प्राप्त करने को आज धर्म की सुधि आई।।उत्तम.।।९।।

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमादि दशधर्मांगाय अनर्घ्यपदप्राप्ताय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।

१. उत्तम क्षमा

उत्तम क्षमा धर्म है सुख का सागर तीन लोक में सार।
जन्म मरण दुःख का अभाव कर शीघ्र नाश करता संसार।।
क्रोध कषाय विनाशक दुर्गति नाशक मुनियों द्वारा पूज्य।
व्रत संयम को सफल बनाता सुगति प्रदाता है अतिपूज्य।।
जहाँ क्षमा है वही धर्म है स्व-पर दया का मूल महान।
जय जय उत्तम क्षमा धर्म की जो है जग में श्रेष्ठ प्रधान।।१।।

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमाधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।

२. उत्तम मार्दव

उत्तम मार्दव धर्म ज्ञानमय वसु मद रहित परम सुखकार।
मानकषाय नष्ट करता है विनय गुणों का है भंडार।।
विनय बिना तत्त्वों का हो सकता न कभी सम्यक् श्रद्धान।
दर्शन ज्ञान चरित्र विनय तप बिना न होता सम्यक्ज्ञान।।
जहाँ मार्दव वही धर्म है वही मोक्ष नगरी का द्वार।
उत्तम मार्दव धर्म हमारा विनय भाव की जय जयकार।।२।।

ॐ ह्रीं श्री उत्तममार्दवधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

३. उत्तम मार्दव

उत्तम मार्दव धर्म कुटिलता से विरहित ऋजुता से पूर्ण।
निज आतम का परम मित्र है करता माया शल्य विचूर्ण।।
लेशमात्र भी मायाचारी कुगति प्रदायक अति दुःखकार।
सरल भाव चेतन गुण धारी टंकोत्कीर्ण महा सुखकार।।
शिवमय शाश्वत मोक्ष प्रदाता मंगलमय अनमोल परम।
उत्तम आर्जव धर्म आत्मा का अभय रूप निश्चल अनुपम।।३।।

ॐ ह्रीं श्री उत्तमआर्जवधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

४. उत्तम शौच

उत्तम शौच धर्म सुखकारी मन वच काया करता शुद्ध।
लोभ कषाय नाश कर देता समकित होता परम विशुद्ध।।
ऋद्धि सिद्धि का लोभ न किंचित् इसके कारण हो पाता।
जो संतोषामृत पीता है वही आत्म को ध्याता।।
शौच धर्म पावन मंगलमय से हो जाता है निर्वाण।
उत्तम शौच धर्म ही जग में करता है सबका कल्याण।।४।।

ॐ ह्रीं श्री उत्तमशौचधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

५. उत्तम सत्य

उत्तम सत्य धर्म हितकारी निज स्वभाव शीतल पावन।
वचन गुप्ति की धारी मुनिवर ही पाते है मुक्ति सदन।।
सब धर्मों में यह प्रधान है भव तम नाशक सूर्य समान।
सुगति प्रदायक भव सागर से पार उतरने को जलयान।।
सत्य धर्म से अणुव्रत और महाव्रत होते है निर्दोष।
जय जय उत्तम सत्य धर्म त्रिभुवन में गूंज रहा जयघोष।।५।।

ॐ ह्रीं श्री उत्तमसत्यधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

६. उत्तम संयम

उत्तम संयम तीन लोक में दुर्लभ, सहज मनुज गति में।
दो क्षण को पाने की क्षमता, देवों में न सुरपति में।।
पंचेन्द्रिय मन वश में करना, त्रस थावर रक्षा करना।
अनुकंपा आस्तिक्य प्रशम संवेग धार मुनिपद धरना।।
धन्य धन्य संयम की महिमा तीर्थंकर तक अपनाते।
उत्तम संयम धर्म जयति जय हम पूजन कर हर्षाते।।६।।

ॐ ह्रीं श्री उत्तमसंयमधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

७. उत्तम तप

उत्तम तप है धर्म परम पावन स्वरूप का मनन जहाँ।
यही सुतप है अष्ट कर्म की होती है निर्जरा जहाँ।।
पंचेन्द्रिय का दमन सर्व इच्छाओं का निरोध करना।
सम्यक् तप धर निज स्वभाव से भाव शुभाशुभ को हरना।।
धन्य धन्य बाह्यन्तर द्वादश तप विध धन्य धन्य मुनिराज।
उत्तम तप जो धारण करते हो जाते है श्री जिनराज।।७।।

ॐ ह्रीं श्री उत्तमतपधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

८. उत्तम त्याग

उत्तम त्याग धर्म है अनुपम पर पदार्थ का निश्चय त्याग।
अभय शास्त्र औषधि आहार है चारों दान सरल शुभ राग॥
सरल भाव से प्रेम पूर्वक करते हैं जो चारों दान।
एक दिवस गृह त्याग साधु हो करते है निज का कल्याण॥
अहो दान की महिमा तीर्थंकर प्रभु तक लेते हैं आहार।
उत्तम त्याग धर्म की जय जय जो है स्वर्ग मोक्ष दातार॥८॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तमत्यागधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

९. उत्तम आकिंचन

उत्तम आकिंचन है धर्म स्वरूप ममत्व भाव से दूर।
चौदह अंतरंग दश बाहर के हैं जहां परिग्रह चूर॥
तृष्णाओं को जीता पर द्रव्यों से राग नहीं किंचित्।
सर्व परिग्रह त्याग मुनीश्वर विचरें वन में आत्माश्रित॥
परम ज्ञानमय परम ध्यानमय सिद्ध स्वपद का दाता है।
उत्तम आकिंचन व्रत जग में श्रेष्ठ धर्म विख्याता है॥९॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तमआकिंचनधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

१०. उत्तम ब्रह्मचर्य

उत्तम ब्रह्मचर्य दुर्धर व्रत है सर्वोत्कृष्ट जग में।
काम वासना नष्ट किये बिन नहीं सफलता शिव जग में॥
विषय भोग अभिलाषा तज जो आत्मध्यान में रम जाते।
शील स्वभाव सजा दुर्मतिहर काम शत्रु पर जय पाते॥
परमशील की पवित्र महिमा ऋषि गणधर वर्णन करते।
उत्तम ब्रह्मचर्य के धारी ही भव सागर से तिरते॥१०॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तमब्रह्मचर्यधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

उत्तम क्षमा धर्म को धारूँ क्रोध कषाय विनाश करूँ।
पर पदार्थ को इष्ट अनिष्ट न मानूँ आत्म प्रकाश करूँ॥

उत्तम मार्दव धर्म ग्रहण कर विनय स्वरूप विकास करूँ।
पर कर्तृत्व मान्यता त्यागूँ अहंकार का नाश करूँ॥

उत्तम आर्जव धर्मधार माया कषाय संहार करूँ।
कपट भाव से रहित शुद्ध आतम का सदा विचार करूँ॥

उत्तम शौच धर्म धारण कर लोभ कषाय विनष्ट करूँ।
शुचिमय चेतन से अशुद्ध ये चार घातिया कर्म हरूँ॥

उत्तम सत्य धर्म से निर्मल निज स्वरूप को सत्य करूँ।
हितमित प्रिय सच बोलूँ नित निज परिणति के संग नृत्य करूँ॥

उत्तम संयम धर्म सभी जीवों के प्रति करुणा धारूँ।
समिति गुप्ति व्रत पालन करके निज आतम गुण विस्तारूँ॥

उत्तम तप धर शुक्ल ध्यान से आठों कर्मों को जारूँ।
अंतरंग बहिरंग तपों से निज आतम को उजियारूँ॥

उत्तम त्याग पांच पापों का सर्वदेश में त्याग करूँ।
योग्य पात्र को योग्य दान दे उर में सहज विराग भरूँ॥

उत्तम आकिंचन रागादिक भावों का परिहार करूँ।
सर्व परिग्रह से विमुक्त हो मुनिपद अंगीकार करूँ॥

उत्तम ब्रह्मचर्य उर धारूँ आत्म ब्रह्म में लीन रहूँ।
कामबाण विध्वंस करूँ मैं शील स्वभावाधीन रहूँ॥

दशलक्षणव्रत की महिमा का नित प्रति जयजयगान करूँ।
दश धर्मों का पालन करके महामोक्ष निर्वाण वरूँ॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, शौच, सत्य, संयम, तप, त्याग, आकिंचन, ब्रह्मचर्य दशधर्मेभ्यो पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥

(दोहा) **श्री दशलक्षण धर्म की महिमा अगम अपार।**
जो भी इसको धारते होते भव पार॥

॥ इत्याशीर्वादः परिपुष्पांजलिं क्षिपेत् ॥

जाप्यमंत्र—ॐ ह्रीं श्री उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, शौच, सत्य, संयम, तप, त्याग, आकिंचन, ब्रह्मचर्य धर्मांगाय नमः।

जिनवाणी भक्ति

साची तो गंगा यह वीतरागवाणी।
अविच्छिन्न धारा निजधर्म की कहानी॥टेक॥

जामें अति ही विमल अगाध ज्ञानपानी।
जहाँ नहीं संशयादि पंक की निशानी॥१॥

सप्तभंग जहं तरंग उछलत सुखदानी।
संत चित मराल वृंद रमैं नित्य ज्ञानी॥२॥

जाकें अवगाहनतैं शुद्ध होय प्राणी।
'भागचंद' निहचै घटमाहिं या प्रमानी॥३॥

श्री रत्नत्रयधर्म पूजन

जय जय सम्यक् दर्शन पावन मिथ्या भ्रम नाशक श्रद्धान।
जय जय सम्यक् ज्ञान तिमिर हर जय जय वीतराग विज्ञान॥
जय जय सम्यक् चारित निर्मल मोह क्षोभ हर महिमावान।
अनुपम रत्नत्रय धारण कर मोक्ष मार्ग पर करूँ प्रयाण॥

ॐ ह्रीं श्री सम्यक्-रत्नत्रय धर्म! अत्र अवतर अवतर संवौषट् (आह्वाननम्)।

ॐ ह्रीं श्री सम्यक्-रत्नत्रय धर्म! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः (स्थापनम्)।

ॐ ह्रीं श्री सम्यक्-रत्नत्रय धर्म! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् (सन्निधिकरणम्)।

सम्यक् सरिता सलिल जल द्वारा मिथ्याभ्रम प्रभु दूर हटाव।
जन्म मरण का क्षय कर डालूँ साम्य भाव रस मुझे पिलाव॥
दर्शन ज्ञान चरित्र साधना से पाऊँ निज शुद्ध स्वभाव।
रत्नत्रय की पूजन करके राग द्वेष का करूँ अभाव॥

ॐ ह्रीं श्री सम्यक्-रत्नत्रयधर्माय जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति...

शुभ भावों का चंदन घिस-घिस निज से किया सदा अलगाव।
भव ज्वाला शीतल हो जाये ऐसी आत्म प्रतीत जगाव॥दर्शन.॥

ॐ ह्रीं श्री सम्यक्-रत्नत्रयधर्माय संसारताप विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

भव समुद्र की भवरों में फंस टूटी अब तक मेरी नाव।
पुण्योदय से तुमसा नाविक पाया मुझको पार लगाव॥दर्शन.॥

ॐ ह्रीं श्री सम्यक्-रत्नत्रयधर्माय अक्षयपद प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

काम क्रोध मद मोह लोभ से मोहित हो करता पर भाव।
दृष्टि बदल जाये तो सृष्टि बदल जाये यह सुमति जगाव॥दर्शन.॥

ॐ ह्रीं श्री सम्यक्-रत्नत्रयधर्माय कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

पुण्य भाव की रुचि में रहता इच्छाओं का सदा कुभाव।
क्षुधा रोग हरने को केवल निज की रुचि ही श्रेष्ठ उपाव॥दर्शन.॥

ॐ ह्रीं श्री सम्यक्-रत्नत्रयधर्माय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

ज्ञान ज्योति बिन अंधकार में किये अनेकों विविध विभाव।
आत्मज्ञान की दिव्य विभा से मोहतिमिर का करें अभाव॥दर्शन.॥

ॐ ह्रीं श्री सम्यक्-रत्नत्रयधर्माय मोहांधकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

घाति कर्म ज्ञानावरणादि निज स्वरूप घातक दुर्भाव।
ध्रुव स्वभावमय शुद्ध दृष्टि दो अष्टकर्म से मुझे बचाव॥दर्शन.॥

ॐ ह्रीं श्री सम्यक्-रत्नत्रयधर्माय अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

निज श्रद्धान ज्ञान चारित्रमय निजपरिणति से पा निज ठांव।
महामोक्ष फल देने वाले धर्म वृक्ष की पाऊँ छांव॥दर्शन.॥

ॐ ह्रीं श्री सम्यक्-रत्नत्रयधर्माय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

दुर्लभ नर तन फिर पाया है चूक न जाऊँ अन्तिम दांव।
निज अनर्घ्य पद पाकर नाश करूँगा मैं अनादि का घाव॥
दर्शन ज्ञान चरित्र साधना से पाऊँ निज शुद्ध स्वभाव।
रत्नत्रय की पूजन करके राग द्वेष का करूँ अभाव॥

ॐ ह्रीं श्री सम्यक्-रत्नत्रयधर्माय अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सम्यक् दर्शन

आत्मतत्व की प्रतीत निश्चय सप्ततत्त्व श्रद्धा व्यवहार।
सम्यक् दर्शन से हो जाते भव्य जीव भव सागर पार॥
विपरीताभिनिवेश रहित अधिगमज निसर्गज समकित सार।
औपशमिक क्षायिक क्षयोपशम होता है यह तीन प्रकार॥
आर्ष, मार्ग, बीज, उपदेश, सूत्र, संक्षेप अर्थ विस्तार।
समकित है अवगाढ़ और परमावगाढ़ दश भेद प्रकार॥
जिन वर्णित तत्वों में शंका लेश नहीं, निशंकित अंग।
सुर पद या लौकिक सुख वांछा लेश नहीं, निःशंकित अंग॥
अशुचि पदार्थों में न ग्लानि हो शुचिमय निर्विचिकित्सा अंग।
देव शास्त्र गुरु धर्मात्माओं में रुचि अमूढ़दृष्टि सुअंग॥
पर दोषों को ढ़कना स्वगुण वृद्धि करना उपगूहन अंग।
धर्म मार्ग से विचलित को थिर रखना स्थितिकरण सुअंग॥
साधर्मी में गौ बच्चघ सम पूर्ण प्रीति वात्सल्य सुअंग।
जिन पूजा तप दया दान मन से करना प्रभावना अंग॥
आठ अंग पालन से होता है सम्यक् दर्शन निर्मल।
सम्यक् ज्ञान चरित्र उसी के कारण होता है उज्ज्वल॥
शंका कांक्षा विचिकित्सा अरु मूढ़दृष्टि अनउपगूहन।
अस्थितिकरण अवात्सल्य अप्रभावना वसु दोष सघन॥
कुगुरु कुदेव कुशास्त्र और इनके सेवक छ अनायतन।
देव मूढ़ता गुरुमूढ़ता लोक मूढ़ता तीन जघन॥

जाति रूपकुल ऋद्धि तपस्या पूजा और ज्ञान मद आठ।
मूल दोष सम्यक् दर्शन के यह पच्चीस तजो मद आठ॥
जय जय सम्यक् दर्शन आठों अंग सहित अनुपम सुखकार।
यही धर्म का सुदृढ़ मूल है इसकी महिमा अपरम्पार॥

ॐ ह्रीं श्री अष्टांग सम्यक्-दर्शनाय अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सम्यक् ज्ञान

निज अभेद का ज्ञान सुनिश्चिय आठ भेद सब हैं व्यवहार।
सम्यक् ज्ञान परम हितकारी शिव सुखदाता मंगलकार॥
अक्षर पद वाक्यों का शुद्धोच्चारण है व्यंजनावार।
शब्दों के यथार्थ अर्थ का अवधारण है अर्थाचार॥
शब्द अर्थ दोनों का सम्यक् जानपना है उभयाचार।
योग्यकाल में जिनश्रुत का स्वाध्याय कहाता कालाचार॥
नम्र रूप रह लेश न क्रुद्धत होना ही है विनयाचार।
सदा ज्ञान का आराधन, स्मरण सहित उपध्यानाचार॥
शास्त्रों के पाठी अरु श्रुत का आदर है बहुमानाचार।
नहीं छुपाना शास्त्र और गुरु नाम अनिन्हव है आचार॥
आठ अंग हैं यही ज्ञान के इनमें दृढ़ हो सम्यक् ज्ञान।
पाँच भेद हैं मति श्रुत अवधि मन पर्यय अरु केवलज्ञान॥
मति होता है इन्द्रिय मन से तीन शतक अरु छत्तीसभेद।
श्रुत के प्रथम करण चरण द्रव्य चउ अनुयोग सु भेद॥
द्वादशांग चौदह पूरब परिकर्म चूलिका प्रकीर्णक।
अक्षर और अनक्षरात्मक भेद अनेकों हैं सम्यक्॥
अवधि ज्ञान जय देशावधि परमावधि सर्वावधि जानो।
भव प्रत्यय के तीन और गुण प्रत्यय के छह पहिचानो॥
मन पर्यय ऋजुमति विपुलमति उपचार अपेक्षा से जानो।
नय प्रमाण से जान ज्ञान प्रत्यक्ष परोक्ष पृथक मानो॥

जय जय सम्यक् ज्ञान अष्ट अंगों से युक्त मोक्ष सुखकार।
तीन लोक में विमल ज्ञान की गूंज रही हैं जय जयकार॥

ॐ ह्रीं श्री अष्टविध सम्यक्-ज्ञानाय अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सम्यक् चारित्र

निजस्वरूप में रमण सुनिश्चिय दो प्रकार चारित व्यवहार।
श्रावक त्रेपन क्रिया साधु का तेरह विधि चारित्र अपार॥
पंच उदम्बर त्रय मकार तज, जीवदया, निशि भोजन त्याग।
देव वन्दना जल गालन निशि भोजन त्यागी श्रावक॥
दर्शन ज्ञान चरित्रमयी ये त्रेपन क्रिया सरल पहिचान।
पाक्षिक नैष्ठिक साधक तीनों श्रावक के हैं भेद प्रधान॥
परम अहिंसा षट्कायक के जीवों की रक्षा करना।
परम सत्य है हितमित प्रिय वच सरल सत्य उर में धरना॥
परम अचौर्य, बिना पूछे तृण तक भी नहीं ग्रहण करना।
पंच महाव्रत यही साधु के पूर्ण देश पालन करना॥
ईर्या समिति सु प्रासुक भू पर चार हाथ भू लख चलना।
भाषा समिति चार विकथाओं से विहीन भाषण करना॥
श्रेष्ठ ऐषणा समिति अनुद्देषिक आहार शुद्धि करना।
है आदान निक्षेपण संयम के उपकरण देख धरना॥
प्रतिष्ठापना समिति देह के मल भू देख त्याग करना।
पंच समिति पालन कर अपने राग-द्वेष को क्षय करना॥
मनोगुप्ति है सब विभाव भावों का हो मन से परिहार।
वचनगुप्ति है आत्म चिंतवन ध्यान अध्ययन मौन सवार॥
काय गुप्ति है काय चेष्टा रहित भावमय कायोत्सर्ग।
तीन गुप्ति धर साधु मुनीश्वर पाते हैं शिवमय अपवर्ग॥
षट् आवश्यक द्वादश तप पंचेन्द्रिय का निरोध अनुपम।
पंचाचार विनय आराधन द्वादश व्रत आदिक सुखतम॥
अट्ठाईस मूलगुण धारण सप्त भयों से रहना दूर।
निजस्वभाव आश्रय से करना पर विभाव को चकनाचूर॥

निरतिचार तेरह प्रकार का है चारित्र महान प्रधान।
इसके पालन से होता है सिद्ध स्वपद पावन निर्वाण।।
श्रेष्ठ धर्म है श्रेप्ठ मार्ग है श्रेष्ठ साधु पद शिव सुखकार।
सम्यक्-चारित्र बिना न कोई हो सकता भव सागर पार।।

ॐ ह्रीं श्री त्रयोदशविधि सम्यक् चारित्राय अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति..

जयमाला

अष्ट अंगयुत निर्मल सम्यक् दर्शन मैं धारण कर लूँ।
आठ अंगयुत निर्मल सम्यक् ज्ञान आत्म में वर लूँ।।

तेरह विधि सम्यक् चारित्र के मुक्ति भवन में पग धर लूँ।
श्री अरहंत सिद्ध पद पाऊँ सादि अनत सौख्य भर लूँ।।

निज स्वभाव का साधन लेकर मोक्षमार्ग पर आ जाऊँ।
निज स्वभाव धर भाव शुभाशुभा परिणामों पर जय पाऊँ।।

एक शुद्ध निज चेतन शाश्वत दर्शन ज्ञान स्वरूपी जान।
ध्रुव टंकोत्कीर्ण चिन्मय चित्चमत्कार चिद्रूपी मान।।

इसका ही आश्रय लेकर मैं सदा इसी के गुण गाऊँ।
द्रव्यदृष्टि बन निजस्वरूप की महिमा से शिवसुख पाऊँ।।

रत्नत्रय को वन्दन करके शुद्धात्मा का ध्यान करूँ।
सम्यक् दर्शन ज्ञान चरित से परम स्वपद निर्वाण वरूँ।।

ॐ ह्रीं श्री सम्यक्-दर्शन-सम्यक्-ज्ञान-सम्यक्-चारित्रमयी धर्मेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा) **रत्नत्रय व्रत श्रेष्ठ की महिमा अगम अपार।**
जो व्रत को धारण करे हो जाये भव पार।।

।। इत्याशीर्वादः परिपुष्पांजलिं क्षिपेत् ।।

जाप्यमंत्र : ॐ ह्रीं श्री सम्यक्-दर्शनज्ञानचारित्रेभ्यो नमः।

*

श्री क्षमावाणी पूजन

(स्थापना) (छन्द ताटंक)

क्षमावाणी का पर्व सुपावन देता जीवों को संदेश।
उत्तम क्षमाधर्म को धारो जो अतिभव्य जीव का वेश॥
मोह नींद से जागो चेतन अब त्यागो मिथ्याभिनिवेश।
द्रव्य दृष्टि बन निजस्वभाव से चलो शीघ्र सिद्धों के देश॥
क्षमा, मार्दव, आर्जव, संयम, शौच, सत्य को अपनाओ।
त्याग, तपस्या, आकिंचन, व्रत ब्रह्मचर्यमय हो जाओ॥
एक धर्म का सार यही है, समतामय ही बन जाओ।
सब जीवों पर क्षमा भाव रख स्वयं क्षमामय हो जाओ॥
क्षमा धर्म की महिमा अनुपम क्षमा धर्म ही जग में सार।
तीन लोक में गूंज रही है क्षमावाणी की जय जयकार॥
ज्ञाता-दृष्टा हो समग्र को देखो उत्तम निर्मल भेष।
रागों से विरक्त हो जाओ रहे न दुःख का किंचित् लेश॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमाधर्म ! अत्र अवतर, अवतर, संवौषट् (आह्वाननम्)।
ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमाधर्म ! अत्र तिष्ठ, तिष्ठ, ठः ठः (स्थापनम्)।
ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमाधर्म ! अत्र मम सन्निहितो, भव भव वषट् इति (सन्निधिकरणम्)।

जीवादिक नव तत्त्वों का श्रद्धान यही सम्यक्त्व प्रथम।
इनका ज्ञान ज्ञान है, रागादि का त्याग चरित्र परम॥
[१]''संते पुव्वणिबद्धं जाणदि'' वह अबंध का ज्ञाता है।
सम्यग्दृष्टि जीव आस्रव बंधरहित हो जाता है॥
उत्तम क्षमा धर्म उर धारूँ जन्म-मरण क्षय कर मानूँ।
परद्रव्यों से दृष्टि हटाऊँ निज स्वभाव को पहचानूँ॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमाधर्मांगाय जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

---

१. स.सा. १६६—(सम्यक्दृष्टि) सत्तामें रहे हुए पूर्वबद्ध कर्मों को जानता है।

सप्त भयों से रहित निशंकित निजस्वभाव में सम्यग्दृष्टि।
मिथ्यात्वादिक भावों में जो रहता वह है मिथ्यादृष्टि।।
तीन मूढ़ता छह आयतन तीन शल्य का नाम नहीं।
आठ दोष समकित के अरु आठों मद का कुछ काम नहीं।।उत्तम.।।
ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमाधर्मांगाय संसारताप विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।
अशुभ कर्म जाना कुशील शुभ को सुशील मानता अरे।
जो संसार बंध का कारण वो कुशील जानता न रे।।
कर्म फलों के प्रति जिनकी आकांक्षा उर में रही नहीं।
वह निकांक्षित सम्यग्दृष्टि भव की वांछा रही नहीं।।उत्तम.।।
ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमाधर्मांगाय अक्षयपद प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।
राग शुभाशुभ दोनों ही संसार भ्रमण का कारण हैं।
शुद्धभाव ही एकमात्र परमार्थ भवोदधि तारण हैं।।
वस्तु स्वभाव धर्म के प्रति जो लेश जुगुप्सा करे नहीं।
निर्विचिकित्सक जीव वही है निश्चय सम्यग्दृष्टि वहीं।।उत्तम.।।
ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमाधर्मांगाय कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।
शुद्ध आत्मा जो ध्याता वह पूर्ण शुद्धता पाता है।
जो अशुद्ध को ध्याता है वह ही अशुद्धता पाता है।।
पर भावों में जो न मूढ़ है दृष्टि यथार्थ सदा जिसकी।
वह अमूढ़दृष्टि का धारी सम्यग्दृष्टि सदा उसकी।।उत्तम.।।
ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमाधर्मांगाय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।।
राग-द्वेष मोहादिक आस्रव ज्ञानी को होते न कभी।
ज्ञाता-दृष्टा को ही होते उत्तम संवर भाव सभी।।
शुद्धातम की भक्ति सहित जो पर भावों से नहीं जुड़ा।
उपगूहन का अधिकारी है सम्यग्दृष्टि महान बड़ा।।उत्तम.।।
ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमाधर्मांगाय मोहांधकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।।
कर्म बन्ध के चारों कारण मिथ्या अविरति योग कषाय।
चेतयिता इनका छेदन कर, करता है निर्वाण उपाय।।

जो उन्मार्ग छोड़कर निज को निज में सुस्थापित करता।
स्थितिकरण युक्त होता वह सम्यग्दृष्टि स्वहित करता।।
उत्तम क्षमा धर्म उर धारूँ जन्म-मरण क्षय कर मानूँ।
परद्रव्यों से दृष्टि हटाऊँ निज स्वभाव को पहचानूँ।।
ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमाधर्मांगाय अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

पुण्य-पापमय सभी शुभाशुभ योगों से रहता वह दूर।
सर्व संग से रहित हुआ वह दर्शन ज्ञानमयी सुख पूर।।
सम्यग्दर्शन ज्ञान चरितधारी के प्रति गौ वत्सल भाव।
वात्सल्य का धारी सम्यग्दृष्टि मिटाता पूर्ण विभाव।।उत्तम.।।
ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमाधर्मांगाय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

ज्ञान विहीन कभी भी पलभर ज्ञानस्वरूप नहीं होता।
बिना ज्ञान के ग्रहण किये कर्मों से मुक्त नहीं होता।।
विद्यारूपी रथ पर चढ़ जो ज्ञानरूप रथ चलवाता।
वह जिन शासन की प्रभावना करता शिवपथ दर्शाता।।उत्तम.।।
ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमाधर्मांगाय अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।

जयमाला

(दोहा)

उत्तम क्षमा स्वधर्म को, वन्दन करूँ त्रिकाल।
नाश दोष पच्चीस कर, काटूँ भव जंजाल।।

(ताटंक)

सोलहकारण पुष्पांजलि दशलक्षण रत्नत्रय व्रत पूर्ण।
इनके सम्यक् पालन से हो जाते हैं वसुकर्म विचूर्ण।।
भाद्र मास में सोलहकारण तीस दिवस तक होते हैं।
शुक्ल पक्ष में दशलक्षण पंचम से दस दिन होते हैं।।
पुष्पांजलि दिन पांच पंचमी से नवमी तक होते हैं।
पावन रत्नत्रयव्रत अन्तिम तीन दिवस के होते हैं।।

आश्विन कृष्णा एकम् उत्सव क्षमावाणी का होता है।
उत्तम क्षमा धार उर श्रावक मोक्षमार्ग को जोता है॥
भाद्र मास अरु माघ मास अरु चैत्र मास में आते हैं।
तीन बार आ पर्वराज जिनवर संदेश सुनाते हैं॥
[१]"जीवे कम्मं बद्धं पुट्ठं" यह तो है व्यवहार कथन।
है अबद्ध अस्पृष्ट कर्म से निश्चय नय का यही कथन॥
जीव देह को एक बताना यह है नय व्यवहार अरे।
जीव देह तो पृथक्-पृथक् हैं निश्चय नय कह रहा अरे॥
निश्चय नय का विषय छोड़ व्यवहार मांहि करते वर्तन।
उनको मोक्ष नहीं हो सकता और न ही सम्यक्-दर्शन॥
[२]"दोण्हविणयाण भणियं जाणई" जो पक्षातिक्रांत होता।
चित्स्वरूप का अनुभव करता सकल कर्म मल को खोता॥
ज्ञानी ज्ञानस्वरूप छोड़कर जब अज्ञान रूप होता।
तब अज्ञानी कहलाता है पुद्गल बन्ध रूप होता॥
[३]"जह विस भव भज्जंतो वेज्जो" मरण नहीं पा सकता है।
ज्ञानी पुद्गल कर्म उदय को भोगे बन्ध न करता है॥
मुनि अथवा गृहस्थ कोई भी मोक्षमार्ग है कभी नहीं।
सम्यग्दर्शन ज्ञान चरित ही मोक्षमार्ग है सही-सही॥
मुनि अथवा गृहस्थ के लिंगों में जो ममता करता है।
मोक्षमार्ग तो बहुत दूर भव-अटवी में ही भ्रमता है॥
प्रतिक्रमण प्रतिसरण आदि आठों प्रकार के विषकुम्भ।
इनसे जो विपरीत वही है मोक्षमार्ग के अमृतकुम्भ॥
पुण्य भाव की भी तो इच्छा ज्ञानी कभी नहीं करता।
परभावों से अरति सदा है निज का ही कर्ता धर्ता॥

---

१. समयसार १४१—जीव कर्म से बंधा है तथा स्पर्शित है।
२. समयसार १४३—दोनों ही नयों के कथन को मात्र जानता है।
३. समयसार १९५—जिस प्रकार वैद्य पुरुष विष को भोगता, खाता हुआ भी

कोई कर्म किसी जीव को है सुख-दुःख दाता नहीं समर्थ।
जीव स्वयं ही अपने सुख-दुःख का निर्माता स्वयं समर्थ॥
क्रोध, मान, माया, लोभादिक नहीं जीव के किंचित् मात्र।
रूप, गंध, रस, स्पर्श शब्द भी नहीं जीव के किंचित् मात्र॥
देह संहनन संस्थान भी नहीं जीव के किंचित् मात्र।
राग-द्वेष-मोहादि भाव भी नहीं जीव के किंचित् मात्र॥
सर्वभाव से भिन्न त्रिकाली पूर्ण ज्ञानमय ज्ञायक मात्र।
नित्य, ध्रौव्य, चिद्रूप, निरंजन, दर्शनज्ञानमयी चिन्मात्र॥
वाक् जाल में जो उलझे वह कभी सुलझ न पायेंगे।
निज अनुभव रसपान किये बिन नहीं मोक्ष में जायेंगे॥
अनुभव ही तो शिवसमुद्र है अनुभव शाश्वत सुख का स्रोत।
अनुभव परम सत्य शिव सुंदर अनुभव शिव से ओतप्रोत॥
निज स्वभाव के सन्मुख हो जा, पर से दृष्टि हटा भगवान।
पूर्ण सिद्धपर्याय प्रकट कर आज अभी पा ले निर्वाण॥
ज्ञान चेतना सिंधु स्वयं तू स्वयं अनन्त गुणों का भूप।
त्रिभुवन पति सर्वज्ञ ज्योतिमय चिंतामणि चेतन चिद्रूप॥
यह उपदेश श्रवण कर हे प्रभु! मैत्री भाव हृदय धारूँ।
जो विपरीत वृत्तिवाले हैं उन पर में समता धारूँ॥
धीरे-धीरे पाप-पुण्य, शुभ-अशुभ आस्रव संहारूँ।
भव-तन भोगों से विरक्त हो निजस्वभाव को स्वीकारूँ॥
दशधर्मों को पढ़ सुनकर अन्तर में आये परिवर्तन।
व्रत उपवास तपादिक द्वारा करूँ सदा ही निज चिंतन॥
राग-द्वेष अभिमान पाप हर काम क्रोध को चूर करूँ।
जो संकल्प-विकल्प उठे प्रभु उनको क्षण-क्षण दूर करूँ॥
अणु भर भी यदि राग रहेगा नहीं मोक्ष पद पाऊँगा।
तीन लोक में काल अनंता राग लिये भरमाऊँगा॥

राग शुभाशुभ के विनाश से वीतराग बन जाऊँगा।
शुद्धात्मानुभूति के द्वारा स्वयं सिद्ध पद पाऊँगा।।
पर्यूषण में दूषण त्यागूँ बाह्य क्रिया में रमे न मन।
शिव पथ का अनुसरण करूँ मैं के नाथ सिद्ध नन्दन।।
जीव मात्र पर क्षमा भाव रख मैं व्यवहार धर्म पालूँ।
निज शुद्धातम पर करूणा कर निश्चय धर्म सहज पालूं।।

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमाधर्मांगाय जयमाला अनर्घ्यपद प्राप्तये पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति...

(दोहा) **मोक्षमार्ग दर्शा रहा, क्षमावणी का पर्व।**
क्षमाभाव धारण करो, राग-द्वेष हर सर्व।।

।। इत्याशीर्वादः परिपुष्पांजलिं क्षिपेत् ।।

जाप्यमंत्र – ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमा धर्मांगाय नमः।

श्री नन्दीश्वर द्वीप (अष्टान्हिका) पूजन

अष्टम द्वीप श्री नन्दीश्वर आगम में वर्णित पावन।
चार दिशा में तेरह-तेरह जिन चैत्यालय हैं बावन।।
एक-एक में बिम्ब एक सौ आठ रतनमय हैं अति भव्य।
प्रातिहार्य हैं अष्ट मनोहर आठ-आठ है मंगल द्रव्य।।
पांच सहस्र अरु छ सौ सोलह प्रतिभाओं को करूँ प्रणाम।
धनुष पाँच सौ पद्मासन अरिहन्त देव मुद्रा अभिराम।।
अष्टान्हिका पर्व में इन्द्रादिक सुर जा करते पूजन।
भाव सहित जिन प्रतिमा दर्शन से होता सम्यक्दर्शन।।

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वर द्वीपे द्विपंचाशत् जिनालयस्थ जिनप्रतिमासमूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट् (आह्वाननम्)।

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वर द्वीपे द्विपंचाशत् जिनालयस्थ जिनप्रतिमासमूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः (स्थापनम्)।

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वर द्वीपे द्विपंचाशत् जिनालयस्थ जिनप्रतिमासमूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् (सन्निधिकरणम्)।

समकित जल की पावन धारा निज उर अन्तर में लाऊँ।
मिथ्याभ्रम की धूल हटाऊँ निज स्वरूप को चमकाऊँ।।
नन्दीश्वर के बावन जिन चैत्यालय वन्दूं हर्षाऊँ।
अष्टम द्वीप मनोरम जिन प्रतिमायें पूजूँ सुख पाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वर द्वीपे पूर्वपश्चिमोत्तरदक्षिण दिशासु द्विपंचाशज्जिनालयस्थ जिनप्रतिमाभ्यो जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

क्षमा भाव का शुचिमय चन्दन उर अन्तर में भर लाऊँ।
क्रोध कषाय नष्ट करके मैं शांति सिंधु प्रभु बन जाऊँ।।नंदीश्वर.।।

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वर द्वीपे द्विपंचाशज्जिनालयस्थ जिनप्रतिमाभ्यो भवताप विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

मार्दव भाव परम उपकारी भाव पूर्ण अक्षत लाऊँ।
मान कषाय नष्ट करके मैं शुद्धातम के गुण गाऊँ।।नंदीश्वर.।।

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वर द्वीपे द्विपंचाशज्जिनालयस्थ जिनप्रतिमाभ्यो अक्षयपद प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

शुद्ध आर्जव भाव पुष्प से सदा हृदय को मैं आऊँ।
सर्वनाश माया कषाय का करूँ सरलता को पाऊँ।।नंदीश्वर.।।

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वर द्वीपे द्विपंचाशज्जिनालयस्थ जिनप्रतिमाभ्यो कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

सत्य शौच मय भाव भक्ति नैवेद्य हृदय में भर लाऊँ।
लोभ कषाय नाश करने को सन्तोषामृत पी जाऊँ।।नंदीश्वर.।।

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वर द्वीपे द्विपंचाशज्जिनालयस्थ जिनप्रतिमाभ्यो क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

द्रव्य भाव संयम तप ज्योति जगा आतम में रम जाऊँ।
मैं अनादि अज्ञान नाश कर सम्यग्ज्ञान रत्न पाऊँ।।नंदीश्वर.।।

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वर द्वीपे द्विपंचाशज्जिनालयस्थ जिनप्रतिमाभ्यो मोहांधकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

त्याग भाव आकिंचन पाऊँ शुद्ध स्वभाव धूप लाऊँ।
पर विभाव परिणति को क्षयकर निज परिणति वैभव पाऊँ।।नंदीश्वर.।

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वर द्वीपे द्विपंचाशज्जिनालयस्थ जिनप्रतिमाभ्यो अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

ब्रह्मचर्य का फ़ल पाने को रत्नत्रय पथ पर आऊँ।
निज स्वरूप में चर्या करके महामोक्ष फल को पाऊँ।।नंदीश्वर.।।

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वर द्वीपे द्विपंचाशज्जिनालयस्थ जिनप्रतिमाभ्यो महामोक्षफल प्राप्ताये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

संवर और निर्जरा द्वारा कर्म रहित मैं हो जाऊँ।
आस्रव बंध नाश कर स्वामी मैं अनर्घ्य पदवी पाऊँ।।नंदीश्वर.।।

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वर द्वीपे द्विपंचाशज्जिनालयस्थ जिनप्रतिमाभ्यो अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

मध्य लोक में एक लाख योजन का जम्बूद्वीप प्रथम।
द्वीप धातकी खण्ड दूसरा तीजा पुष्करवर अनुपम।।

चौथा द्वीप वारुणीवर है द्वीप क्षीरवर है पंचम।
षष्टम घृतवर द्वीप मनोहर द्वीप इक्षुवर है सप्तम।।

अष्टम् द्वीप श्री नन्दीश्वर अद्वितीय शोभा धारी।
योजन कोटि एक सौ त्रेसठ लख यौरासी विस्तारी।।

पूरब पश्चिम उत्तर दक्षिण दिशि में है अंजनगिरि चार।
इनके भव्य शिखर पर जिन चैत्यालय चारों हैं सुखकार।।

चहुँ दिशि चार चार वापी हैं लाख-लाख योजन जलमय।
इनमें सोलह दधिमुख पर्वत जिन पर सोलह चैत्यालय।।

सोलह वापी के दो कोणों पर इक-इक रतिकर पर्वत।
इन पर हैं बत्तीस जिनालय जिनकी है शोभा शाश्वत।।

कृष्ण वर्ण अंजनगिरि चौरासी सहस्र योजन ऊँचे।
श्वेत वर्ण के दधिमुख पर्वत दस सहस्र योजन ऊँचे॥
लाल वर्ण के रतिकर पर्वत एक सहस्र योजन ऊँचे।
सभी ढोल सम गोल मनोहर पर्वत हैं सुन्दर ऊँचे॥
चारों दिशि में महा मनोरम कुल जिन चैत्यालय बावन।
सभी अकृत्रिम अति विशाल हैं उन्नत परम पूज्य पावन॥
जिन भवनों का एक शतक योजन लम्बाई का आकार।
अर्ध शतक चौड़ाई पचहतर योजन ऊँचा विस्तार॥
चौसठ वन की सुषमा से शोभित है अनुपम नन्दीश्वर।
है अशोक सप्तछद चम्पक आम्र नाम के वन सुन्दर॥
इन सबमें अवतंस आदि रहते हैं चौंसठ देव प्रबल।
गाते नन्दीश्वर की महिमा अरिहंतों का यश उज्ज्वल॥
देव देवियाँ नृत्य वाद्य गीतों से करते जिन पूजन।
जय ध्वनि से आकाश गुंजाते थिरक-थिरक करते नर्तन॥
कार्तिक फागुन अरु अषाढ़ में इन्द्रादिक सुर आते हैं।
अन्तिम आठ दिवस पूजन कर मन में अति हर्षाते हैं॥
दो दो पहर एक इक दिशि में आठ पहर करते पूजन।
धन्य-धन्य नन्दीश्वर रचना धन्य धन्य पूजन अर्चन॥
ढाई द्वीप तक मनुज क्षेत्र है आगे होता नहीं गमन।
ढाई द्वीप से आगे तो जा सकते हैं केवल सुरगण॥
शक्तिहीन हम इसीलिए करते हैं यहीं भाव पूजन।
नन्दीश्वर की सब प्रतिमाओं को है भाव सहित वन्दन॥
भव-भव के अघ मिटे हमारे आत्म प्रतीत जगे मन में।
शुद्धभाव अभिवृद्धि सहज हो समकित पाये जीवन में॥
यही विनय है यही प्रार्थना यही भावना है भगवान।
नन्दीश्वर की पूजन करके करें आत्मा का ही ध्यान॥

आत्म ध्यान की महा शक्ति से वीतराग अरिहन्त बनें।
घाति अघाति कर्म सब क्षयकर मुक्ति भगवंत बने।।

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वर द्वीपे पूर्वपश्चिमोत्तरदक्षिणदिशासु द्विपंचाशज्जिनालयस्थ पाँच हजार छ सौ सोलह जिनप्रतिमाभ्यो जिन पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।

भाव सहित नन्दीश्वर की पूजन से होता है कल्याण।
स्वर्ग मोक्ष पद मिल जाता है धर्म ध्यान से सहज महान।।

।। इत्याशीर्वादः परिपुष्पांजलिं क्षिपेत्।।

जाप्यमंत्र – ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वर द्वीपाय नमः।

*

श्री दीपमालिका पूजन या
श्री वीर निर्वाण पर्व पूजन

(स्थापन) (ताटंक)

महावीर निर्वाण दिवस पर, महावीर पूजन कर लूँ।
वर्द्धमान अतिवीर वीर, सन्मति प्रभु को वन्दन कर लूँ।।
पावापुर से मोक्ष गये प्रभु, जिनवर पद अर्चन कर लूँ।
जगमग-जगमग दिव्यज्योति से, धन्य मनुज जीवन कर लूँ।।
कार्तिक कृष्ण आमावस्या को, शुद्धभाव मन में भर लूँ,
दीपमालिका पर्व मनाऊँ, भव-भव के बन्धन हर लूँ।।
ज्ञान-सूर्य का चिर-प्रकाश ले, रत्नत्रय पथ पर बढ़ लूँ।।
परभावों का राग तोड़कर, निज स्वभाव में मैं अड़ लूँ।।

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णामावस्यायां मोक्षमङ्गलप्राप्त श्री वर्द्धमानजिनेन्द्र! अत्र अवतर अवतर संवौषट् (आह्वाननम्)।

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णामावस्यायां मोक्षमङ्गलप्राप्त श्री वर्द्धमानजिनेन्द्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः (स्थापनम्)।

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णामावस्यायां मोक्षमङ्गलप्राप्त श्री वर्द्धमानजिनेन्द्र! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् (सन्निधिकरणम्)।

चिदानन्द चैतन्य अनाकुल, निज स्वभावमय जल भर लूँ।
जन्म-मरण का चक्र मिटाऊँ, भव-भव की पीड़ा हर लूं।।
दीपावली के पुण्य दिवस पर, वर्द्धमान पूजन कर लूं।
महावीर अतिवीर वीर, सन्मति प्रभु को वन्दन कर लूं।।
ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णामावस्यायां मोक्षमङ्गलप्राप्ताय श्री वर्द्धमानजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

अमल अखंड अतुल अविनाशी, निज चन्दन उर में धर लूँ।
चारों गति का ताप मिटाऊँ, निज पंचमगति आदर लूं।।दीपावली.।।
ॐ ह्रीं कार्तिक कृष्ण अमावस्यायां मोक्षमङ्गलप्राप्त श्री वर्द्धमान जिनेन्द्राय संसारताप विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

अजर अमर अक्षय, अविकल, अनुपम अक्षत पद उर धर लूँ।
भवसागर तर मुक्तिवधू से, मैं पावन परिणय कर लूँ।।दीपावली.।।
ॐ ह्रीं कार्तिक कृष्ण अमावस्यायां मोक्षमङ्गलप्राप्त श्री वर्द्धमान जिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्ताय अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

रूप-गन्ध-रस-स्पर्श रहित निज शुद्ध पुष्प मन में भर लूं।
कामबाण की व्यथा नाशकर, मैं निष्काम रूप धर लूँ।।दीपावली.।।
ॐ ह्रीं कार्तिक कृष्ण अमावस्यायां मोक्षमङ्गल प्राप्त श्री वर्द्धमान जिनेन्द्राय कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

आत्मशक्ति परिपूर्ण शुद्ध नैवेद्य, भाव उर में धर लूं।
चिर-अतृप्ति का रोग नाशकर, सहज तृप्त निजपद वर लूं।।दीपावली.।।
ॐ ह्रीं कार्तिक कृष्ण अमावस्यायां मोक्षमङ्गल प्राप्त श्री वर्द्धमानजिनेन्द्राय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पूर्ण ज्ञान कैवल्य प्राप्ति हित, ज्ञानदीप ज्योतित कर लूँ।
मिथ्याभ्रम-तप-मोह नाशकर, निज सम्यक्त्व प्राप्त कर लूँ।।दीपावली.।।
ॐ ह्रीं कार्तिक कृष्ण अमावस्यायां मोक्षमङ्गल प्राप्त श्री वर्द्धमान जिनेन्द्राय मोहांधकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

पुण्य भाव की धूप जलाकर, घाति-अघाति कर्म हर लूँ।
क्रोध-मान-माया-लोभादिक, मोहद्रोष सब क्षय कर लूँ।।दीपावली.।।
ॐ ह्रीं कार्तिक कृष्ण अमावस्यायां मोक्षमङ्गल प्राप्त श्री वर्द्धमान जिनेन्द्राय अष्टकर्म विनाशनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

अमिट अनन्त अचल अविनश्वर, श्रेष्ठ मोक्ष पद उर घर लूँ।
अष्ट स्वगुण से युक्त सिद्धगति पा, सिद्धत्व प्राप्त कर लूँ।।
दीपावली के पुण्य दिवस पर, वर्द्धमान पूजन कर लूं।
महावीर अतिवीर वीर, सन्मति प्रभु को वन्दन कर लूं।।

ॐ ह्रीं कार्तिक कृष्ण अमावस्यायां मोक्षमङ्गलप्राप्त श्री वर्द्धमानजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्ताय फलं निर्वपामीति स्वाहा।

गुण अनन्त प्रकटाऊँ अपने, निज अनर्घ्य पद को वर लूँ।
शुद्धस्वभावी ज्ञान प्रभावी, निज सौन्दर्य प्रकट कर लूँ।।दीपावली.।

ॐ ह्रीं कार्तिक कृष्ण अमावस्यायां महा मोक्षमंगल प्राप्त श्री वर्द्धमान जिनेन्द्राय अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्री पंचकल्याणक अर्घ्य

शुभ आषाढ़ शुक्ल षष्ठी को पुष्पोत्तर तज प्रभु आये।
माता त्रिशला धन्य हो गई, सोलह सपने दरशाये।।
पन्द्रह मास रत्न बरसे, कुंडलपुर में आनन्द हुआ।
वर्द्धमान के गर्भोत्सव पर, दूर शोक-दुःख-द्वन्द्व हुआ।।

ॐ ह्रीं आषाढशुक्लषष्ठ्यां गर्भमंगलप्राप्ताय श्री वर्द्धमानजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति.

चैत्र शुक्ल की त्रयोदशी को, सारी जगती धन्य हुई।
नृप सिद्धार्थराज हर्षाये, कुण्डलपुरी अनन्य हुई।।
मेरु सुदर्शन पाण्डुक वन में, सुरपति ने कर प्रभु अभिषेक।
नित्य वाद्य मंगल गीतों के, द्वारा किया हर्ष अतिरेक।।

ॐ ह्रीं चैत्रशुक्लत्रयोदश्यां जन्ममंगलप्राप्त श्री वर्द्धमान जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति..

मगसिर कृष्णा दशमी को, उर में छाया वैराग्य अपार।
लौकान्तिक देवों के द्वारा धन्य-धन्य प्रभु जय-जयकार।
बाल ब्रह्मचारी गुणधारी, वीर प्रभु ने किया प्रयाण।
वन में जाकर दीक्षाधारी, निज में लीन हुए भगवान।।

ॐ ह्रीं मार्गशीर्षकृष्णदशम्यां तपोमंगलप्राप्ताय श्री वर्द्धमानजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्व..

द्वादश वर्ष तपस्या करके, पाया तुमने केवलज्ञान।
कर वैशाख शुक्ल दशमी को, त्रेसठ कर्म प्रकृति अवसान।।
सर्व द्रव्य-गुण-पर्यायों को, युगपत् एक समय में जान।
वर्द्धमान सर्वज्ञ हुए प्रभु, वीतराग अरिहन्त महान।।

ॐ ह्रीं वैशाखशुक्लषदशम्यां ज्ञानमंगलप्राप्त श्री वर्द्धमान जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्व...

कार्तिक कृष्ण अमावस्या को, वर्धमान प्रभु मुक्त हुए।
सादि-अनन्त समाधि प्राप्त कर, मुक्ति रमा से युक्त हुए।।
अन्तिम शुक्लध्यान के द्वारा कर, अघातिया का अवसान।
शेष प्रकृति पच्यासी को भी, क्षय करके पाया निर्वाण।।

ॐ ह्रीं कार्तिक कृष्ण अमावस्यायां मोक्षमंगलप्राप्त श्री वर्द्धमानजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्व.

जयमाला

महावीर ने पावापुर से, मोक्षलक्ष्मी पाई थी।
इन्द्र–सुरों ने हर्षित होकर, दीपावली मनाई थी।।

केवलज्ञान प्राप्त होने पर, तीस वर्ष तक किया विहार।
कोटि-कोटि जीवों का प्रभु ने, दे उपदेश किया उपकार।।

पावापुर उद्यान पधारे, योग निरोध किया साकार।
गुणस्थान चौदह को तजकर, पहुँचे भवसमुद्र के पार।।

सिद्धशिला पर हुए विराजित, मिली मोक्षलक्ष्मी सुखकार।
जल-थल-नभ में देवों द्वारा गूँज उठी प्रभु की जयकार।।

इन्द्रादिक सुर आये हर्षित, मन में धारे मोद अपार।
महामोक्ष कल्याण मनाया, अखिल विश्व को मंगलकार।।

अष्टादश गणराज्यों के, राजाओं ने जयगान किया।
नत-मस्तक होकर जन-जन ने, महावीर गुणगान किया।।

तन कपूरवत् उड़ा शेष नख, केश रहे इस भूतल पर।
मायामयी शरीर रचा, देवों ने क्षण भर के भीतर।।

अग्निकुमार सुरों ने झुक, मुकुटानल से तन भस्म किया।
सर्व उपस्थित जनसमूह, सुरगण ने पुण्य अपार लिया।।
कार्तिक कृष्ण आमावस्या का, दिवस मनोहर सुखकर था।
उषाकाल का उजियारा कुछ, तम-मिश्रित अति मनहर था।।
रत्न ज्योतियों का प्रकाश कर, देवों ने मंगल गाये।
रत्न दीप की आवलियों से, पर्व दीपमाला लाये।।
सबने शीश चढ़ाई भस्मी, पद्म सरोवर बना वहाँ।
वही भूमि है अनुपम सुन्दर, जल मन्दिर है बना वहाँ।।
प्रभु के ग्यारह गणधर में थे, प्रमुख श्री गौतम स्वामी।
क्षपकश्रेणी चढ़ शुक्लध्यान से, हुए देव अन्तर्यामी।।
इसी दिवस गौतम स्वामी को, सन्ध्या केवलज्ञान हुआ।
केवलज्ञान लक्ष्मी पायी, पद सर्वज्ञ महान हुआ।।
देवों ने अति हर्षित होकर, रत्न ज्योति का किया प्रकाश।
हुई दीपमाला द्विगुणित, आनन्द हुआ छाया उल्लास।।
प्रभु के चरणाम्बुज दर्शन कर, हो जाता मन अतिपावन।
परम पूज्य निर्वाण भूमि शुभ, पावापुर है मन-भावन।।
अखिल जगत में दीपावली, त्यौहार मनाया जाता है।
महावीर निर्वाण महोत्सव, धूम मचाता आता है।।
हे प्रभु! महावीर जिन स्वामी, गुण अनन्त के हो धामी।
भरतक्षेत्र के अंतिम तीर्थंकर, जिनराज विश्वनामी।।
मेरी केवल एक विनय है, मोक्ष-लक्ष्मी मुझे मिले।
भौतिक लक्ष्मी के चक्कर में, मेरी श्रद्धा नहीं हिले।।
भव-भव जन्म-मरण के चक्कर, मैंने पाये हैं इतने।
जितने रजकण इस भूतल पर, पाये हैं प्रभु दुःख उतने।।
अवसर आज अपूर्व मिला है, शरण आपकी पायी है।
भेदज्ञान की बात सुनी है, तो निज की सुधि आयी है।।

अब मैं कहीं नहीं जाऊँगा, जब तक मोक्ष नहीं पाऊँ।
दो आशीर्वाद हे स्वामी! नित्य नये मङ्गल गाऊँ।।

ॐ ह्रीं कार्तिक कृष्ण अमावस्यामां निर्वाणकल्याणकप्राप्ताय श्री वर्द्धमानजिनेन्द्राय जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

दीपमालिका पर्व पर, महावीर उर धार।
भावसहित जो पूजते, पाते सौख्य अपार।।

।। इत्याशीर्वादः पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत् ।।

जाप्यमंत्र : ॐ ह्रीं वर्द्धमान जिनेन्द्राय नमः।

*

श्री श्रुतपंचमी पूजन

स्याद्वाद मय द्वादशांगयुत माँ, जिनवाणी कल्याणी।
जो भी शरण हृदय से लेता, हो जाता केवलज्ञानी।।
जय जय जय हितकारी शिवसुखकारी माता जय जय जय।
कृपा तुम्हारी से होता भेदज्ञान का सूर्य उदय।।
श्री धरसेनाचार्य कृपा से मिला, परम जिनश्रुत का ज्ञान।
भूतबली मुनि पुष्पदन्त ने, षट्खण्डागम रचा महान।।
अंकलेश्वर में ग्रंथराज यह, पूर्ण हुआ था आज के दिन।
जिनवाणी लिपिबद्ध हुई थी, पावन परम आज के दिन।।
ज्येष्ठशुक्ल पंचमी दिवस, जिनश्रुत का जय–जयकार हुआ।
श्रुतपंचमी पर्व पर, श्री जिनवाणी का अवतार हुआ।।

ॐ ह्रीं श्री परमश्रुतषट्खंडागम! अत्र अवतर अवतर संवौषट् इति (आह्वाननम्)।

ॐ ह्रीं श्री परमश्रुतषट्खंडागम! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः इति (स्थापनम्)।

ॐ ह्रीं श्री परमश्रुतषट्खंडागम! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् इति (सन्निधिकरणम्)।

शुद्ध स्वानुभव जल धारा से यह जीवन पवित्र कर लूँ।
साम्य भाव पीयूष पान कर जन्म जरामय दुःख हर लूँ।।
श्रुतपंचमी पर्व शुभ उत्तम जिन श्रुत को वंदन कर लूँ।
षट्खंडागम धवल जयधवल महाधवल पूजन कर लूँ।।

ॐ ह्रीं श्री परमश्रुतषट्खंडागमाय जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

शुद्ध स्वानुभव का उत्तम पावन चन्दन चर्चित कर लूँ।
भव दावानल के ज्वालामय अघ संताप ताप हर लूँ।।श्रुत.।।

ॐ ह्रीं श्री परमश्रुतषट्खंडागमाय संसारताप विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

शुद्ध स्वानुभव के परमोत्तम अक्षत शुद्ध हृदय धर लूँ।
परम शुद्ध चिद्रूप शक्ति से अनुपम अक्षय पद वर लूँ।।श्रुत.।।

ॐ ह्रीं श्री परमश्रुतषट्खंडागमाय अक्षयपद प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

शुद्ध स्वानुभव के पुष्पों से निज अन्तर सुरभित कर लूँ।
महाशील गुण के प्रताप से मैं कंदर्प दर्प हर लूँ।।श्रुत.।।

ॐ श्री परमश्रुतषट्खंडागमाय कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

शुद्ध स्वानुभव के अति उत्तम प्रभु नैवेद्य प्राप्त कर लूँ।
अमल अतीन्द्रिय निज स्वभाव से दुखमय क्षुधा व्याधि हर लूँ।।श्रुत.।।

ॐ ह्रीं श्री परमश्रुतषट्खंडागमाय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शुद्ध स्वानुभव के प्रकाशमय दीप प्रज्वलित मैं कर लूँ।
मोहतिमिर अज्ञान नाश कर निज कैवल्य ज्योति वर लूँ।।श्रुतपंचमी.।।

ॐ ह्रीं श्री परमश्रुतषट्खंडागमाय अज्ञानाधंकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

शुद्ध स्वानुभव गन्ध सुरभिमय ध्यान धूप उर में भर लूँ।
संवर सहित निर्जरा द्वारा मैं वसु कर्म नष्ट कर लूँ।।श्रुतपंचमी.।।

ॐ ह्रीं श्री परमश्रुतषट्खंडागमाय अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

शुद्ध स्वानुभव का फल पाऊँ मैं लोकाग्र शिखर वर लूँ।
अजर अमर अविकल अविनाशी पद निर्वाण प्राप्त कर लूँ।।श्रुतपंचमी.।।

ॐ ह्रीं श्री परमश्रुत षट्खंडागमाय महा मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

शुद्ध स्वानुभव दिव्य अर्घ्य ले रत्नत्रय सुपूर्ण कर लूँ।
भव–समुद्र को पार करूँ प्रभु निज अनर्घ्य पद मैं वर लूँ।।श्रुतपंचमी.।।

ॐ ह्रीं श्री परमश्रुतषट्खंडागमाय अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

श्रुतपंचमी पर्व अति पावन है श्रुत के अवतार का।
गूँजा जय–जयकार जगत में जिनश्रुत के अवतार का।।
ऋषभदेव की दिव्यध्वनि का लाभ पूर्ण मिलता रहा।
महावीर तक जिनवाणी का विमल वृक्ष खिलता रहा।।
हुए केवली अरु श्रुतकेवली ज्ञान अमर फलता रहा।
फिर आचार्यों के द्वारा यह ज्ञानदीप जलता रहा।।
भव्यों में अनुराग जगाता मुक्तिवधू के प्यार का।
श्रुतपंचमी पर्व अति पावन है श्रुत के अवतार का।।
गुरु–परम्परा से जिनवाणी निर्झर–सी झरती रही।
मुमुक्षुओं को परम मोक्ष का पथ प्रशस्त करती रही।।
किन्तु काल की घड़ी मनुज की स्मरण शक्ति हरती रही।
श्री धरसेनाचार्य हृदय में करुण टीस भरती रही।।
द्वादशांग का लोप हुआ तो क्या होगा संसार का।
श्रुतपंचमी पर्व अति पावन है श्रुत के अवतार का।।
शिष्य भूतबलि पुष्पदन्त की हुई परीक्षा ज्ञान की।
जिनवाणी लिपिबद्ध हेतु श्रुत–विद्या विमल प्रदान की।।
ताड पत्र पर हुई अवतरित वाणी जनकल्याण की।
षट्खंडागम महाग्रन्थ करणानुयोग जय ज्ञान की।।
ज्येष्ठ शुक्ल पंचमी दिवस था सुर–नर मंगलाचार का।
श्रुतपंचमी पर्व अति पावन है श्रुत के अवतार का।।
धन्य भूतबलि पुष्पदन्त जय श्री धरसेनाचार्य की।
लिपि परम्परा स्थापित करके नई क्रांति साकार की।।

देवों ने पुष्पों की वर्षा नभ से अगणित बार की।
धन्य धन्य जिनवाणी माता निज पर भेद विचार की॥

ऋणी रहेगा विश्व तुम्हारे निश्चय का व्यवहार का।
श्रुतपंचमी पर्व अति पावन है श्रुत के अवतार का॥

धवला टीका वीरसेन कृत बहत्तर हजार श्लोक।
जय धवला जिनसेन वीरकृत उत्तम साठ हजार श्लोक॥

महाधवल है देवसेन कृत है चालीस हजार श्लोक।
विजयधवल अरु अतिशय धवल नहीं उपलब्ध एक श्लोक॥

षट्खंडागम टीकाएँ पढ मन होता भव पार का।
श्रुतपंचमी पर्व अति पावन है श्रुत के अवतार का॥

फिर तो ग्रन्थ हजारों लिक्खे ऋषि–मुनियों ने ज्ञानप्रधान।
चारों ही अनुयोग रचे जीवों पर करके करुणा दान॥

पुण्य कथा प्रथमानुयोग द्रव्यानुयोग है तत्त्व प्रधान।
एक्सरे करणानुयोग चरणानुयोग कैमरा महान॥

यह परिणाम नापता है वह बाह्य चरित्र विचार का।
श्रुतपंचमी पर्व अति पावन है श्रुत के अवतार का॥

जिनवाणी की भक्ति करें हम जिनश्रुत की महिमा गायें।
सम्यग्दर्शन का वैभव ले भेद ज्ञान निधि को पायें॥

रत्नत्रय का अवलम्बन लें निज स्वरूप में रम जायें।
मोक्षमार्ग पर चलें निरन्तर फिर न जगत में भरमायें॥

धन्य–धन्य अवसर आया है अब निज के उद्धार का।
श्रुत पंचमी पर्व अति पावन है श्रुत के अवतार का॥

गूँजा जय–जय नाद जगत में जिनश्रुत जय–जयकार का।
श्रुतपंचमी पर्व अति पावन है श्रुत के अवतार का॥

ॐ ह्रीं श्री परमश्रुत षट्खंडागमाय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥

(दोहा)

श्रुतपंचमी सुपर्व पर, करो तत्त्व का ज्ञान।
आत्मतत्त्व का ध्यान कर, पाओ पद निर्वाण।।

(इत्याशीर्वादः पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

जाप्यमंत्र : ॐ श्री परमश्रुतेभ्यो नमः।

*

श्री रक्षाबंधन पर्व पूजन

(स्थापना)

जय अकम्पनाचार्य आदि सात सौ साधु मुनिव्रतधारी।
बलि ने कर नरमेघ यज्ञ उपसर्ग किया भीषण भारी।।
जय जय विष्णुकुमार महामुनि ऋद्धि विक्रिया के धारी।
किया शीघ्र उपसर्ग निवारण वात्सल्य करुणाधारी।।
रक्षा-बन्धन पर्व मना मुनियों का जय-जय कार हुआ।
श्रावण शुक्ल पूर्णिमा के दिन घर-घर मंगलाचार हुआ।।
श्री मुनि चरण कमल में वन्दूँ पाऊँ प्रभु सम्यग्दर्शन।
भक्ति भाव से पूजन करके निज स्वरूप में रहूँ मगन।।

ॐ ह्रीं श्री विष्णुकुमार एवं अकम्पनाचार्य आदि सप्तशतकमुनि! अत्र अवतर अवतर संवौषट् (आह्वाननम्)। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः (स्थापनम्), अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् (सन्निधिकरणम्)।

जन्म-मरण के नाश हेतु प्रासुक जल करता अर्पण।
राग-द्वेष परिणति अभावकर निज परिणति में करूँ रमण।।
श्री अकम्पनाचार्य आदि मुनि सप्तशतक को करूँ नमन।
मुनि उपसर्ग निवारक विष्णुकुमार महामुनि को वन्दन।।

ॐ ह्रीं श्री विष्णुकुमार एवं अकम्पनाचार्यादि सप्तशतकमुनिभ्य जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

भवसन्ताप मिटाने को मैं चन्दन करता हूँ अर्पण।
देह भोग भव से विरक्त हो निज परिणति में करूँ रमण।।
श्री अकम्पनाचार्य आदि मुनि सप्तशतक को करूँ नमन।
मुनि उपसर्ग निवारक विष्णुकुमार महामुनि को वन्दन।।

ॐ ह्रीं श्री विष्णुकुमार एवं अकम्पनाचार्यादि सप्तशतक मुनिभ्यो संसारताप विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

अक्षयपद अखंड पाने को अक्षत धवल करूँ अर्पण।
हिंसादिक पापों को क्षय कर निज परिणति में करूँ रमण।।श्री.।।

ॐ ह्रीं श्री विष्णुकुमार एवं अकम्पनाचार्यादि सप्तशतक मुनिभ्यो अक्षयपद प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

कामबाण विध्वंस हेतु मैं सहज पुष्प करता अर्पण।
क्रोधादिक चारों कषाय हर निज परिणति में करूँ रमण।।श्री.।।

ॐ ह्रीं श्री विष्णुकुमार एवं अकम्पनाचार्यादि सप्तशतकमुनिभ्यो कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

क्षुधारोग के नाश हेतु नैवेद्य सरस करता अर्पण।
विषयभोग की आकांक्षा हर निज परिणति में करूँ रमण।।श्री.।।

ॐ ह्रीं श्री विष्णुकुमार एवं अकम्पनाचार्यादि सप्तशतक मुनिभ्यो क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चिर मिथ्यात्व तिमिर हरने को दीप ज्योति करता अर्पण।
सम्यग्दर्शन का प्रकाश पा निज परिणति में करूँ रमण।।श्री.।।

ॐ ह्रीं श्री विष्णुकुमार एवं अकम्पनाचार्यादि सप्तशतक मुनिभ्यो मोहांधकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

अष्टकर्म के नाश हेतु यह धूप सुगन्धित है अर्पण।
सम्यग्ज्ञान हृदय प्रकटाऊँ निज परिणति में करूँ रमण।।श्री.।।

ॐ ह्रीं श्री विष्णुकुमार एवं अकम्पनाचार्यादि सप्तशतक मुनिभ्यो अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

मुक्ति प्राप्ति हेतु उत्तम फल चरणों में करता अर्पण।
मैं सम्यक् चारित्र प्राप्त कर निज परिणति में करूँ रमण।।श्री.।।

ॐ ह्रीं श्री विष्णुकुमार एवं अकम्पनाचार्यादि सप्तशतक मुनिभ्यो मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

शाश्वत पद अनर्घ्य पाने को उत्तम अर्घ्य करूँ अर्पण।
रत्नत्रय की तरण खेऊँ निज परिणति में करूँ रमण॥
श्री अकम्पनाचार्य आदि मुनि सप्तशतक को करूँ नमन।
मुनि उपसर्ग निवारक विष्णुकुमार महामुनि को वन्दन॥

ॐ ह्रीं श्री विष्णुकुमार अकम्पनाचार्यादि सप्तशतकमुनिभ्यो अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

वात्सल्य के अङ्ग की महिमा अपरम्पार।
विष्णुकुमार मुनीन्द्र की गूँजी जय-जयकार॥

(तांटक)

उज्जयिनी नगरी के नृप श्रीवर्मा के मन्त्री थे चार।
बलि, प्रहलाद, नमुचि वृहस्पति चारों अभिमानी सविकार॥
जब अकम्पनाचार्य संघ मुनियों का नगरी में आया।
सात शतक मुनि दे दर्शन कर नृप श्रीवर्मा हर्षाया॥
सब मुनि मौन ध्यान में रत, लख बलि आदिक ने निन्दा की।
कहा कि मुनि सब मूर्ख, इसी से नहीं तत्त्व की चर्चा की॥
किन्तु लौटते समय मार्ग में, श्रुतसागर मुनि दिखलाये।
वाद-विवाद किया श्री मुनि से हारे जीत नहीं पाये॥
अपमानित होकर निशि में मुनि पर प्रहार करने आये।
खड़ग उठाते ही कीलित हो गये हृदय में पछताये॥
प्रातः होते ही राजा ने आकर मुनि को किया नमन।
देश निकाला दिया मन्त्रियों को तब राजा ने तत्क्षण॥
चारों मन्त्री अपमानित हो पहुँचे नगर हस्तिनापुर।
राजा पद्मराय को अपनी सेवाओं से प्रसन्न कर॥
मुँह माँगा वरदान नृपति ने बलि को दिया तभी तत्पर।
जब चाहूँगा तब ले लूँगा, बलि ने कहा नम्र होकर॥

फिर अकम्पनाचार्य सात सौ मुनियों सहित नगर आये।
बलि के मन में मुनियों की हत्या के भाव उदय आये।।
कुटिल चाल चल बलि ने नृप से आठ दिवस का राज्य लिया।
भीषण अग्नि जलायी चारों ओर द्वेष से कार्य किया।।
हाहाकार मचा जगती में, मुनि स्व ध्यान में लीन हुए।
नश्वर देह भिन्न चेतन से, यह विचार निज लीन हुए।।
यह नरमेघ यज्ञ रच बलि ने, किया दान का ढोंग विचित्र।
दान किमिच्छक देता था, पर मन था अति हिंसक अपवित्र।।
पद्मराय नृप के लघु भाई, विष्णुकुमार महा मुनिवर।
वात्सल्य का भाव जगा, मुनियों पर संकट को सुनकर।।
किया गमन आकाश मार्ग में, शीघ्र हस्तिनापुर आये।
ऋद्धि विक्रिया द्वारा याचक, वामन रूप बना लाये।।
बलि से माँगी तीन पाँव भू, बलिराजा हँसकर बोला।
जितनी चाहो उतनी ले लो, वामन मूर्ख बड़ा भोला।।
हँसकर मुनि एक पांच में ही सारी पृथ्वी नापी।
पग द्वितीय में मानुषोत्तर, पर्वत की सीमा नापी।।
ठौर न मिला तीसरे पग को, बलि के मस्तक पर रक्खा।
क्षमा क्षमा कह कर बलि ने, मुनिचरणों में मस्तक रक्खा।।
शीतल ज्वाला हुई अग्नि की, श्री मुनियों की रक्षा की।
जय-जयकार धर्म का गूँजा, वात्सल्य की शिक्षा दी।।
नवधा भक्तिपूर्वक सबने, मुनियों को आहार दिया।
बलि आदिक का हुआ हृदय परिवर्तन जय-जयकार किया।।
रक्षा सूत्र बाँधकर तब, जन-जन ने मङ्गलाचार किये।
साधर्मी वात्सल्य भाव से, आपस में व्यवहार किये।।
समकित के वात्सल्य अङ्ग की, महिमा प्रकटी इस जग में।
रक्षाबंधन पर्व इसी दिन से, प्रारम्भ हुआ जग में।।

श्रावण शुक्ल पूर्णिमा का दिन था रक्षासूत्र बंधा कर में।
वात्सल्य की प्रभावना का आया अवसर घर-घर में।।
प्रायश्चित्त ले विष्णुकुमार ने पुनः व्रत ले तप ग्रहण किया।
अष्टकर्म बन्धन को हरकर, इस भव से ही मोक्ष लिया।।
सब मुनियों ने भी अपने-अपने परिणामों के अनुसार।
स्वर्ग-मोक्ष पद पाया जग में हुई धर्म की जय-जयकार।।
धर्म-भावना रहे हृदय में, पापों के प्रतिकूल चलूँ।
रहे शुद्ध आचरण सदा ही, धर्म मार्ग अनुकूल चलूँ।।
आत्मज्ञान रुचि जगे हृदय में, निज पर को मैं पहिचानूँ।
समकित के आठों अंगों की, पावन महिमा को जानूँ।।
तभी सार्थक जीवन होगा, सार्थक होगी यह नर देह।
अंतर घट में जब बरसेगा, पावन परम ज्ञान रस मेह।।
पर से मोह नहीं होगा, होगा निजात्म से अति नेह।
तब पायेंगे अखण्ड अविनाशी निजसुखमय शिवगेह।।
रक्षा बन्धन पर्व धर्म का, रक्षा का त्यौहार महान।
रक्षा बन्धन पर्व ज्ञान का, रक्षा का त्यौहार प्रधान।।
रक्षा बन्धन पर्व चरित का, रक्षा का त्यौहार महान।
रक्षा बन्धन पर्व आत्म का, रक्षा का त्यौहार प्रधान।।
श्री अकम्पनाचार्य आदि मुनि सात शतक को करूँ नमन।
मुनि उपसर्ग निवारक विष्णुकुमार महामुनि को वन्दन।।

ॐ ह्रीं श्री विष्णुकुमार एवं अकम्पनाचार्यादि सप्तशतक मुनिभ्यो पूर्णार्घ्यं निर्व...

रक्षाबन्धन पर्व पर, श्री मुनि पद उर धार।
मन-वच-तन जो पूजते, पाते सौख्य अपार।।

।। इत्याशीर्वादः परिपुष्पांजलिं क्षिपेत् ।।

जाप्यमंत्र – ॐ ह्रीं श्रीविष्णुकुमार एवं अकम्पनाचार्यादि सप्तशतक परम ऋषीश्वरेभ्यो नमः।

श्री भक्तामर स्तोत्र पूजन

जय जयति जय स्तोत्र भक्तामर परम सुख कारणम्।
जय ऋषभदेव जिनेन्द्र जय जय जय भवोदधितारणम्॥
जय वीतराग महान जिनपति विश्वबन्ध महेश्वरम्।
जय आदिदेव सु महादेव सुपूज्य प्रभु परमेश्वरम्॥
जय ज्ञान सूर्य अनन्त गुणपति आदिनाथ जिनेश्वरम्।
जय मानतुंग मुनीश पूजित प्रथम जिन तीर्थेश्वरम्॥
मैं भावपूर्वक करूँ पूजन स्वपद ज्ञान प्रकाशकम्।
दो भेदज्ञान महान अनुपम अष्टकर्म विनाशनम्॥

ॐ ह्रीं श्री वृषभनाथ जिनेन्द्र! अत्र अवतर अवतर संवौषट् इति (आह्वाननम्)।

ॐ ह्रीं श्री वृषभनाथ जिनेन्द्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः इति (स्थापनम्)।

ॐ ह्रीं श्री वृषभनाथ जिनेन्द्र! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् (सन्निधिकरणम्)।

जन्म मरण भयहारी स्वामी, आदिनाथ प्रभु को वंदन।
त्रिविध दोष ज्वर हरने को, चरणों में जल करता अर्पण॥
ऋषभदेव के चरण कमल में, मन वच काया सहित प्रणाम।
भक्तामर स्तोत्र पाठकर, मैं पाऊँ निज में विश्राम॥

ॐ ह्रीं श्री वृषभनाथ जिनेन्द्राय जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

भव आताप विनाशक स्वामी आदिनाथ प्रभु को वंदन।
भव दावानल शीतल करने चन्दन करता हूँ अर्पण॥ ऋषभ.॥

ॐ ह्रीं श्री वृषभनाथ जिनेन्द्राय संसारताप विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

भव समुद्र उद्धारक स्वामी आदिनाथ प्रभु को वन्दन।
अक्षय पद की प्राप्ति हेतु प्रभु अक्षत करता हूँ अर्पण॥ ऋषभ.॥

ॐ ह्रीं श्री वृषभनाथ जिनेन्द्राय अक्षयपद प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

काम व्यथा संहारक स्वामी आदिनाथ प्रभु को वन्दन।
मैं कन्दर्प दर्प हरने को सहज पुष्प करता अर्पण॥ऋषभ.॥

ॐ ह्रीं श्री वृषभनाथ जिनेन्द्राय कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

क्षुधा रोग के नाशक स्वामी आदिनाथ प्रभु को वंदन।
अब अनादि क्षुधा मिटाऊँ, प्रभु नैवेद्य करूँ अर्पण।।
ऋषभदेव के चरणकमल में, मन वच काया सहित प्रणाम।
भक्तामर स्तोत्र पाठकर, मैं पाऊँ निज में विश्राम।।

ॐ ह्रीं श्री वृषभनाथ जिनेन्द्राय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

स्वपर प्रकाशक ज्ञान ज्योतिमय आदिनाथ प्रभु को वंदन।
मोह तिमिर अज्ञान हटाने दीपक चरणों में अर्पण।। ऋषभ.।।

ॐ ह्रीं श्री वृषभनाथ मोहांधकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

कर्म व्यथा के नाशक स्वामी आदिनाथ प्रभु को वंदन।
अष्ट कर्म विध्वंस हेतु भावों की धूप करूँ अर्पण।। ऋषभ.।।

ॐ ह्रीं श्री वृषभनाथ जिनेन्द्राय अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

नित्य निरंजन महामोक्ष पति आदिनाथ प्रभु को वंदन।
मोक्ष सुफल पानेको स्वामी चरणों में फल है अर्पण।। ऋषभ.।।

ॐ ह्रीं श्री वृषभनाथ जिनेन्द्राय महामोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल गंधाक्षत पुष्प सुचरु दीप धूप फल अर्घ्य सुमन।
पद अनर्घ्य पानेको स्वामी चरणों में सादर अर्पण।। ऋषभ.।।

ॐ ह्रीं श्री वृषभनाथ जिनेन्द्राय अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।

जयमाला

वृषभाकित जिनराज पद वन्दूँ बारम्बार।
वृषभदेव परमात्मा परम सौख्य आधार।।

भक्तामर की यशोपताका फहराते है साधु भक्त जन।
भाव पूर्वक मात्र कट जाते संकट तत्क्षण।।
भक्तामर रच मानतुंग ने निजपर का कल्याण किया था।
अडतालीस काव्यरचनाकर शुभ अमरत्व प्रदान किया था।।
नृपकारा से मुक्त हुए मुनि श्रुतउपदेश महान दिया था।
आदिनाथ की स्तुति करके निज स्वरूप का ध्यान किया था।।

मैं भी प्रभु की महिमा गाकर भावपुष्प करता हूँ अर्पण।
त्रैलोक्येश्वर महादेव जिन आदिदेव को सविनय वंदन॥
नाभिराय मरुदेवी के सुत आदिनाथ तीर्थंकर नामी।
आज आपकी शरण प्राप्त अति हर्षित हूँ अन्तर्यामी॥
मैंने कष्ट अनंतानन्त उठाये है अनादि से स्वामी।
आत्मज्ञान बिन भटक रहा हूँ चारों गति में त्रिभुवननामी॥
नर सुर नारक पशुपर्यायों में प्रभु मैंने अति दुःख पाये।
जड़ पुद्गल तन अपना माना निज चैतन्य गीत ना गाये॥
कभी नर्क में कभी स्वर्ग में कभी निगोद आदि में भटका।
सुखाभास की आकांक्षा ले चार कषायों में ही अटका॥
एक बार भी कभी भूलकर निजस्वरूप का किया न दर्शन।
द्रव्यलिंग भी धारा मैंने किन्तु न भाया आत्म चिंतवन॥
आज सुअवसर मिला भाग्य से भक्तामर का पाठ सुन लिया।
शब्द अर्थ भावों को जाना निज चैतन्य स्वरूप गुन लिया॥
अब मुझको विश्वास हो गया भव का अन्त निकट आया है।
भक्तामर का भाव हृदय में मेरे नाथ उमड़ आया है॥
भेदज्ञान की निधि पाऊँगा स्वपर भेद विज्ञान करूँगा।
शुद्धात्मानुभूति के द्वारा अष्टकर्म अवसान करूँगा॥
इस पूजन का समयक्फल प्रभु मुझको आप प्रदान करो अब।
केलवज्ञान सूर्य की पावन किरणों का प्रभु दान करो अब॥
क्रोधमान माया लोभादिक सर्व कषाय विनष्ट करूँ मैं।
वीतराग निज पद प्रगटाऊँ भव बन्धन के कष्ट हरूँ मैं॥
स्वर्गादिक की नहीं कामना भौतिक सुख से नहीं प्रयोजन।
एक मात्र ज्ञायकस्वभाव निजका आश्रय लूँ हे भगवन॥
विषय भोग की अभिलाषायें पलक मारते चूर करूँ मैं।
शाश्वत निज अखंड पद पाऊँ पर भावों को दूर करूँ मैं॥

मिथ्यात्वादिक पाप नष्ट कर सम्यक्दर्शन को प्रगटाऊँ।
सम्यक्ज्ञान चरित्र शक्ति से घाति अघाति कर्म विघटाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री वृषभनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपद प्राप्तये पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा) **भक्तामर स्तोत्र की महिमा अगम अपार।**
भाव वासना जो करे हो जायें भव पार।।

।। इत्याशीर्वादः परिपुष्पांजलिं क्षिपेत् ।।

जाप्यमंत्र – ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं अर्हं श्री वृषभनाथजिनेन्द्राय नमः।

*

श्री वीरशासन जयंती पूजा

(ताटंक)

वर्धमान अतिवीर वीर प्रभु सन्मति महावीर स्वामी।
वीतराग सर्वज्ञ जिनेश्वर अन्तिम तीर्थंकर नामी।।
श्री अरिहंतदेव मंगलमय स्व–पर प्रकाशक गुणधामी।
सकल लोक के ज्ञाता–दृष्टा महापूज्य अन्तर्यामी।।
महावीर शासन का पहला दिन श्रावण कृष्णा एकम।
शासन वीर जयन्ती आती है प्रतिवर्ष सुपावनतम।।
विपुलाचल पर्वत पर प्रभु के समवशरण में मंगलकार।
खिरी दिव्यध्वनि शासन वीर जयन्ती पर्व हुआ साकार।।
प्रभु चरणाम्बुज पूजन करने का आया उर में शुभ भाव।
सम्यग्ज्ञान प्रकाश मुझे दो, राग द्वेष का करूँ अभाव।।

ॐ ह्रीं श्री सन्मति वीरजिनेन्द्र! अत्र अवतर अवतर संवौषट् इति (आह्वाननम्)।
ॐ ह्रीं श्री सन्मति वीरजिनेन्द्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः इति (स्थापनम्)।
ॐ ह्रीं श्री सन्मति वीरजिनेन्द्र! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् इति (सन्निधिकरणम्)।

भाग्यहीन नर रत्न स्वर्ण को जैसे प्राप्त नहीं करता।
ध्यानहीन मुनि निज आतम का त्यों अनुभवन नहीं करता।।

शासन वीर जयन्ती पर जल चढ़ा वीर का ध्यान करूँ।
खिरी दिव्यध्वनि प्रथम देशना सुन अपना कल्याण करूँ॥
ॐ ह्रीं श्री सन्मतिवीरजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

विविध कल्पना उठती मन में, वे विकल्प कहलाते हैं।
बाह्य पदार्थों में ममत्व मन के संकल्प रुलाते हैं॥
शासन वीर जयन्ती पर चंदन अर्पित कर ध्यान करूँ।
खिरी दिव्यध्वनि प्रथम देशना सुन अपना कल्याण करूँ॥
ॐ ह्रीं श्री सन्मतिवीरजिनेन्द्राय भवाताप विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

अंतरंग बहिरंग परिग्रह त्यागूँ मैं निर्ग्रन्थ बनूं।
जीवन-मरण, मित्र अरि सुख दुःख लाभ हानि में साम्य बनूं॥
शासन वीर जयन्ती पर, कर अक्षत भेंट स्वध्यान करूँ।
खिरी दिव्यध्वनि प्रथम देशना सुन अपना कल्याण करूँ॥
ॐ ह्रीं श्री सन्मतिवीरजिनेन्द्राय अक्षयपद प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

शुद्ध सिद्ध ज्ञानादि गुणों से मैं समृद्ध हूँ देह प्रमाण।
नित्य असंख्यप्रदेशी निर्मल हूँ अमूर्तिक महिमावान॥
शासन वीर जयन्ती पर, कर भेंट पुष्प निज ध्यान करूँ।
खिरी दिव्यध्वनि प्रथम देशना सुन अपना कल्याण करूँ॥
ॐ ह्रीं श्री सन्मतिवीरजिनेन्द्राय कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

परम तेज हूँ परम ज्ञान हूँ परम पूर्ण हूँ ब्रह्म स्वरूप।
निरालम्ब हूँ निर्विकार हूँ निश्चय से मैं परम अनूप॥
शासन वीर जयन्ती पर नैवेद्य चढा निज ध्यान करूँ।
खिरी दिव्यध्वनि प्रथम देशना सुन अपना कल्याण करूँ॥
ॐ ह्रीं श्री सन्मतिवीरजिनेन्द्राय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

स्वपर प्रकाशक केवलज्ञानमयी, निजमूर्ति अमूर्ति महान।
चिदानन्द टंकोत्कीर्ण हूँ ज्ञान–ज्ञेय–ज्ञाता भगवान॥

शासन वीर जयन्ती पर मैं दीप चढा निज ध्यान करूँ।
खिरी दिव्यध्वनि प्रथम देशना सुन अपना कल्याण करूँ।।

ॐ ह्रीं श्री सन्मतिवीरजिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

द्रव्यकर्म ज्ञानावरणादिक देहादिक नोकर्म विहीन।
भाव कर्म रागादिक से मैं पृथक् आत्मा ज्ञान प्रवीण।।
शासन वीर जयन्ती पर मैं धूप चढा निज ध्यान करूँ।
खिरी दिव्यध्वनि प्रथम देशना सुन अपना कल्याण करूँ।।

ॐ ह्रीं श्री सन्मतिवीरजिनेन्द्राय अष्टकर्म विध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

कर्ममल रहित शुद्ध ज्ञानमय, परममोक्ष है मेरा धाम।
भेदज्ञान की महाशक्ति से पाऊँगा अनन्त विश्राम।।
शासन वीर जयन्ती पर मैं सुफल चढा निज ध्यान करूँ।
खिरी दिव्यध्वनि प्रथम देशना सुन अपना कल्याण करूँ।।

ॐ ह्रीं श्री सन्मतिवीरजिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

मात्र वासनाजन्य कल्पना है परद्रव्यों में सुखबुद्धि।
इन्द्रियजन्य सुखों के पीछे पाई किंचित् नहीं विशुद्धि।।
शासन वीर जयन्ती के पर मैं अर्घ्य चढा निज ध्यान करूँ।
खिरी दिव्यध्वनि प्रथम देशना सुन अपना कल्याण करूँ।।

ॐ ह्रीं श्री सन्मतिवीरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

विपुलाचल के गगन को, वंदूं बारम्बार।
सन्मति प्रभु की दिव्यध्वनि, जहाँ हुई साकार।।१।।

(ताटंक)

महावीर प्रभु दीक्षा लेकर मौन हुए तप संयम धार।
परिषह उपसर्गों को जय कर देश–देश में किया विहार।।२।।

द्वादश वर्ष तपस्या करके ऋजुकूला सरितट आये।
क्षपकश्रेणि चढ शुक्ल ध्यान से कर्म घातिया विनसाये।।३।।

स्व–पर प्रकाशक परम ज्योतिमय प्रभु को केवलज्ञान हुआ।
इन्द्रादिक को समवशरण रच मन में हर्ष महान हुआ।।४।।

बारह सभा जुडी अति सुन्दर, सबके मन का कमल खिला।
जन मानस को प्रभु की दिव्यध्वनि का, किन्तु न लाभ मिला।।५।।

छ्यासठ दिन तक रहे, मौन प्रभु दिव्यध्वनि का मिला न योग।
अपने आप स्वयं मिलता है, निमित्त–नैमित्तिक संयोग।।६।।

राजगृही के विपुलाचल पर प्रभु का समवशरण आया।
अवधिज्ञान से जान इन्द्र ने गणधर का अभाव पाया।।७।।

बडी युक्ति से इन्द्रभूति गौतम ब्राह्मण को वहां लाया।
गौतम ने दीक्षा लेते ही ऋषि गणधर का पद पाया।।८।।

तत्क्षण खिरी दिव्यध्वनि प्रभु की द्वादशांगमय कल्याणी।
रच डाली अन्तर्मुहूर्त में, गौतम ने श्री जिनवाणी।।९।।

सात शतक लघु और महाभाषा अष्टादश विविध प्रकार।
सब जीवों ने सुनी दिव्यध्वनि अपने उपादान अनुसार।।१०।।

विपुलाचल पर समवशरण का हुआ आज के दिन विस्तार।
प्रभु की पावन वाणी सुनकर गूँजा नभ में जय जयकार।।११।।

जन जन में नव जागृति जागी मिटा जगत का हाहाकार।
जियो और जीने दो का जीवन संदेश हुआ साकार।।१२।।

धर्म अहिंसा सत्य और अस्तेय मनुज जीवन का सार।
ब्रह्मचर्य अपरिग्रह से ही होगा जीव मात्र से प्यार।।१३।।

घृणा पाप से करो सदा ही किन्तु नहीं पापी से द्वेष।
जीव मात्र जो निज–सम समझो यही वीर का था उपदेश।।१४।।

इन्द्रभूति गौतम ने गणधर बनकर गूंथी जिनवाणी।
इसके द्वारा परमात्मा बन सकता कोई भी प्राणी।।१५।।

मेघ गर्जना करती श्री जिनवाणी का वह चला प्रवाह।
पाप ताप संताप नष्ट हो गये मोक्ष की जागी चाह।।१६।।

प्रथमं, करणं, चरणं, द्रव्यं ये अनुयोग बताये चार।
निश्चय नय सत्यार्थ बताया, असत्यार्थ सारा व्यवहार।।१७।।

तीन लोक षट् द्रव्यमयी है, सात तत्त्व की श्रद्धा सार।
नव पदार्थ छह लेश्या जानो, पंच महाव्रत उत्तम धार।।१८।।

समिति गुप्ति चारित्र पालकर, तप संयम धारो अविकार।
परम शुद्ध निज आत्मतत्त्व, आश्रय से हो जाओ भव पार।।१९।।

उस वाणी को मेरा वंदन उसकी महिमा अपरम्पार।
सदा वीर शासन की पावन, परम जयन्ती जय जयकार।।२०।।

वर्धमान अतिवीर वीर की पूजन का है हर्ष अपार।
काललब्धि प्रभु मेरी आई, शेष रहा थोड़ा संसार।।२१।।

ॐ ह्रीं श्री सन्मतिवीरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपद प्राप्तये पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

दिव्यध्वनि प्रभु वीर की देती सौख्य अपार।
आत्मज्ञान की शक्ति से, खुले मोक्ष का द्वार।।

।। इत्याशीर्वादः परिपुष्पांजलिं क्षिपेत् ।।

जाप्य मंत्र – ॐ ह्रीं श्री संपूर्ण द्वादशांगाय नमः।।

*

स्व पर के भिन्नत्व का अबोध पर के प्रति
अहं एवं ममता उत्पन्न करता है ।

श्री तीर्थंकर निर्वाण क्षेत्र पूजन

अष्टापद कैलाश श्री सम्पेदाचल चम्पापुर धाम।
उर्ज्जयंत गिरनार शिखर पावापुर सबको करूँ प्रणाम॥
ऋषभादिक चौबीस जिनेशवर मुक्ति वधु के कंत हुए।
पंच तीर्थो से तीर्थंकर परम सिद्ध भगवन्त हुए॥

ॐ ह्रीं श्री तीर्थंकर निर्वाणक्षेत्राणि! अत्र अवतर अवतर संवौषट् (आह्वाननम्)।

ॐ ह्रीं श्री तीर्थंकर निर्वाणक्षेत्राणि! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः (स्थापनम्)।

ॐ ह्रीं श्री तीर्थंकर निर्वाणक्षेत्राणि! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् (सन्निधिकरणम्)।

जन्म मरण से व्यथित हुआ हूँ भव अनादि से दुःखपाया।
परम पारिणामिक स्वभाव का निर्मल जल पाने आया॥
अष्टापद सम्मेदशिखर, चम्पापुर, पावापुर, गिरनार।
चौबीसों तीर्थंकर की निर्वाण भूमि वन्दू सुखकार॥

ॐ ह्रीं श्री तीर्थंकर निर्वाणक्षेत्रेभ्यो जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति...

भव आतप से दग्ध हुआ मैं प्रतिपल दुख अनन्त पाया।
परम पारिणामिक स्वभाव का निज चंदन पाने आया॥अष्टापद.॥

ॐ ह्रीं श्री तीर्थंकर निर्वाणक्षेत्रेभ्यो संसारताप विनाशनाय चंदन निर्वपामीति स्वाहा।

भव समुद्र में चहुँ गति की भवरों में डूबा उतराया।
परम पारिणामिक स्वभाव से अक्षयपद पाने आया॥अष्टापद.॥

ॐ ह्रीं श्री तीर्थंकर निर्वाणक्षेत्रेभ्यो अक्षयपद प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

काम भोग बन्धन में पड़कर शील स्वभाव नहीं पाया।
परम पारिणामिक स्वभाव के सहज पुष्प पाने आया॥अष्टापद.॥

ॐ ह्रीं श्री तीर्थंकर निर्वाणक्षेत्रेभ्यो कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

तृष्णा की ज्वाला में जल जल तृप्त नहीं मैं हो पाया।
परम पारिणामिक स्वभाव के शुचिमय चरु पाने आया॥अष्टापद.॥

ॐ ह्रीं श्री तीर्थंकर निर्वाणक्षेत्रेभ्यो क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सम्यक् ज्ञान बिना प्रभु अबतक निजस्वरूप ना लख पाया।
परम पारिणामिक स्वभाव की दीप ज्योति पाने आया।।
अष्टापद सम्मेदशिखर, चम्पापुर, पावापुर, गिरनार।
चौबीसों तीर्थंकर की निर्वाण भूमि वन्दू सुखकार।।
ॐ ह्रीं श्री तीर्थंकर निर्वाणक्षेत्रेभ्यो मोहांधकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।
अष्ट कर्म की क्रूर प्रकृतियों में ही निज को उलझाया।
परम पारिणामिक स्वभाव की सजल धूप पाने आया।।अष्टापद.।।
ॐ ह्रीं श्री तीर्थंकर निर्वाणक्षेत्रेभ्यो अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।
मोक्ष प्राप्ति के बिना आज तक सुख का एक न कण पाया।
परम पारिणामिक स्वभाव के शिवमय फल पाने आया।।अष्टापद.।।
ॐ ह्रीं श्री तीर्थंकर निर्वाणक्षेत्रेभ्यो मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।
शुद्ध त्रिकाली अपना ज्ञायक आत्म स्वभाव न दर्शाया।
परम पारिणामिक स्वभाव से पद अनर्घ्य पाने आया।।अष्टापद.।।
ॐ ह्रीं श्री तीर्थंकर निर्वाणक्षेत्रेभ्यो अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

श्री चौबीस जिनेश को वन्दन करूँ त्रिकाल।
तीर्थंकर निर्वाण भू हरे कर्म जंजाल।।१।।
अष्टापद कैलाश आदिप्रभु ऋषभदेव पद करूँ प्रणाम।
चम्पापुर में वासुपूज्य जिनवर के पद वन्दूं अभिराम।।२।।
ऊर्जयन्त गिरनार शिखर पर नेमिनाथ पद में वन्दन।
पावापुर में वर्धमान प्रभु के चरणों को करूँ नमन।।३।।
बीस तीर्थंकर सम्मेदाचल के पर्वत पर वन्दूँ।
बीस टोंक पर बीस जिनेश्वर सिद्ध भूमि को अभिनन्दूँ।।४।।
कूट सिद्धवर अजितनाथ के चरण कमल को नमन करूँ।
धवलकूट पर सम्भव जिन पद पूजूँ निज का मनन करूँ।।५।।
मैं आनन्दकूट पर अभिनन्दन स्वामी को करूँ नमन।
अविचलकूट सुमति जिनवर के पद कमलों में है वंदन।।६।।

मोहनकूट पद्म प्रभु के चरणों में सादर करूँ नमन।
कूट प्रभास सुपार्श्वनाथ प्रभु के मैं पूजूँ भव्य चरण।।७।।
ललितकूट पर चन्दा प्रभु को भाव सहित सादर वन्दूँ।
सुप्रभकूट सुविधि जिनवर श्री पुष्पदन्त पद अभिनन्दूँ।।८।।
विद्युतकूट श्री शीतल जिनवर के चरण कमल पावन।
संकुल कूट चरण श्रेयांसनाथ के पूजूँ मन भावन।।९।।
श्री सुवीरकुल कूट भाव से विमलनाथ के पद वन्दूं।
चरण अनन्तनाथ स्वामी के कूट स्वयंभू पर वन्दूं।।१०।।
कूट सुदत्त पूजता हूँ मैं धर्मनाथ के चरण कमल।
नमूँ कुन्दप्रभ कूट मनोहर शान्तिनाथ के चरण विमल।।११।।
कुन्थुनाथ स्वामी को वन्दूँ कूट ज्ञानधर भव्य महान।
नाटक कूट श्री अरनाथ जिनेश्वर पद का ध्याऊँ ध्यान।।१२।।
संबल कूट मल्लि जिनवर के चरणों की महिमा गाऊँ।
निर्जरकूट श्री मुनिसुव्रत चरण पूजकर हर्षाऊँ।।१३।।
कूट मित्रधर श्री नमिनाथ तीर्थंकर पद करूँ प्रणाम।
स्वर्णभद्र श्री पार्श्वनाथ प्रभु को नित वन्दूं आठों याम।।१४।।
तीर्थंकर निर्वाण भूमियाँ तीर्थ क्षेत्र कहलाती हैं।
मुनियों की निर्वाण भूमियाँ सिद्ध क्षेत्र कहलाती है।।१५।।
गर्भ जन्म तप ज्ञान भूमियाँ अतिशय क्षेत्र कहलाती हैं।
इन सब तीर्थों की यात्रा से उर पवित्रता आती है।।१६।।
अपना शुद्ध स्वभाव लक्ष्य में लेकर जो निज ध्यान धरूँ।
सादि अनन्त समाधि प्राप्त कर परम मोक्ष निर्वाण वरूँ।।१७।।

ॐ ह्रीं श्री तीर्थंकर निर्वाण क्षेत्रेभ्यो पूर्णार्घ्य निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा) सिद्ध भूमि जिनराज की महिमा अगम अपार।
निज स्वभाव जो साधते वे होते भव पार।।

।। इत्याशीर्वादः परिपुष्पांजलिं क्षिपेत् ।।

जाप्यमन्त्र – ॐ ह्रीं श्री तीर्थंकर निर्वाण क्षेत्रेभ्यो नमः।

श्री पंच बालयति जिन–पूजा

(पं. अभयकुमारजी कृत)

(स्थापना) (हरिगीतिका)

निज ब्रह्म में नित लीन परिणति से सुशोभित हे प्रभो।
पूजित परम निज पारिणामिक से विभूषित हे विभो।।
आओ तिष्ठो अत्र तुम सन्निकट हो मुझमय अहो।
बालयति पाँचों प्रभु को वन्दना शत बार हो।।

ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्य–मल्लि–नेमि–पार्श्व–वीराः पंचबालयतिजिनेन्द्राः ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् (आह्वाननम्)।

ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्य–मल्लि–नेमि–पार्श्व–वीराः पंचबालयतिजिनेन्द्राः ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः (स्थापनम्)।

ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्य–मल्लि–नेमि–पार्श्व–वीराः पंचबालयतिजिनेन्द्राः ! अत्र मम सन्निहिता भव भव वषट् (सन्निधिकरणम्)।

(वीरछन्द)

हे प्रभु ! ध्रुव की ध्रुव परिणति के पावन जल में कर स्नान।
शुद्ध अतीन्द्रिय आनन्द का तुम करो निरन्तर अमृत-पान।।
क्षणवर्ती पर्यायों का तो जन्म-मरण है नित्य स्वभाव।
पंच बालयति-चरणों में हो तन संयोग वियोग अभाव।।

ॐ ह्रीं श्री पंचबालयतिजिनेन्द्रेभ्यो जन्म-जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति...

अहो ! सुगन्धित चेतन अपनी परिणति में नित महक रहा।
क्षणवर्ती चैतन्य विवर्तन की ग्रन्थि में चहक रहा।।
द्रव्य और गुण पर्यायों में सदा महकती चेतन गन्ध।
पंच बालयति के चरणों में नाशूं राग-द्वेष दुर्गन्ध।।

ॐ ह्रीं श्री पंचबालयतिजिनेन्द्रेभ्यः संसारताप विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

परिणामों के ध्रुव प्रवाह में बहे अखंडित ज्ञायक भाव।
द्रव्य-क्षेत्र-अरु काल भाव में नित्य अभेद अखंड स्वभाव।।

निज–गुण-पर्यायों में जिनका अक्षय पद अविचल अभिराम।
पंच बालयति जिनवर मेरी परिणति में नित करो विराम।।

ॐ ह्रीं श्री पंचबालयतिजिनेन्द्रेभ्यः अक्षयपद प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

गुण अनन्त के सुमनों से हो शोभित तुम ज्ञायक उद्यान।
त्रैकालिक ध्रुव परिणति में तुम प्रतिपल करते नित्य विराम।।
इसके आश्रय से प्रभु तुमने नष्ट किया है काम-कलंक।
पंच बालयति के चरणों में धुला आज परिणति का पंक।।

ॐ ह्रीं श्री पंचबालयतिजिनेन्द्रेभ्यः कामबाण विनाशनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

हे प्रभु! अपने ध्रुव प्रवाह में रहो निरन्तर शाश्वत तृप्त।
षट्‌रस की क्या चाह तुम्हें तुम निज रस के अनुभव में मस्त।।
तृप्त हुई अब मेरी परिणति ज्ञायक में करती विश्राम।
पंच बालयति के चरणों में क्षुधा-रोग का रहा न नाम।।

ॐ ह्रीं श्री पंचबालयतिजिनेन्द्रेभ्यः क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सहज ज्ञानमय ज्योति प्रज्वलित रहती ज्ञायक के आधार।
प्रभो! ज्ञान-दर्पण में त्रिभुवन पल-पल होता ज्ञेयाकार।।
अहो! निरखती मम श्रुत-परिणति अपने में तव केवलज्ञान।
पंच बालयति के प्रसाद से प्रकट हुआ निज ज्ञायक भान।।

ॐ ह्रीं श्री पंचबालयतिजिनेन्द्रेभ्यो मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

त्रैकालिक परिणति में व्यापी ज्ञान-सूर्य की निर्मल धूप।
जिससे सकल-कर्म-मल क्षय कर हुए प्रभो! तुम त्रिभुवनभूप।।
मैं ध्याता तुम ध्येय हमारे मै हूँ तुममय एकाकार।
पंच बालयति जिनवर! मेरे शीघ्र नशो अब त्रिविध विकार।।

ॐ ह्रीं श्री पंचबालयतिजिनेन्द्रेभ्यो अष्टकर्म विनाशनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

सहज ज्ञान का ध्रुव प्रवाह फल सदा भोगता चेतनराज।
अपनी चित् परिणति में रमता पुण्य-पाप फल का क्या काज।।

महा मोक्षफल की न कामना शेष रहे अब हे जिनराज।
पंच बालयति के चरणों में जीवन सफल हुआ है आज॥

ॐ ह्रीं श्री पंचबालयतिजिनेन्द्रेभ्यो मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

पंचम परमभाव की पूजित परिणति में जो करें विराम।
कारण परमपारिणामिक का अवलम्बन लेते अभिराम॥
वासुपूज्य अरु मल्लि-नेमिप्रभु-पार्श्वनाथ-सन्मति गुणखान।
अर्घ्य समर्पित पंच बालयति को पञ्चम गति लहूँ महान।

ॐ ह्रीं श्री पंचबालजिनेन्द्रेभ्यो अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

पंच बालयति नित बसो, मेरे हृदय मँझार।
जिनके उर में बस रहा, प्रिय चैतन्य कुमार॥

(छप्पय)

प्रिय चैतन्य कुमार सदा परिणति में राजे।
पर-परिणति से भिन्न सदा निज में अनुरागे॥
दर्शन-ज्ञानमयी उपयोग सुलक्षण शोभित।
जिसकी निर्मलता पर आतम ज्ञानी मोहित॥
ज्ञायक त्रैकालिक बालयति, मम परिणति में व्याप्त हो।
मैं नमूँ बालयति पंच को, पंचम गति पद प्राप्त हो॥

(वीरछन्द)

धन्य-धन्य हे वासुपूज्य जिन! गुण अनन्त में करो निवास।
निज आश्रित परिणति में शाश्वत महक रही चैतन्य सुवास॥

सत् सामान्य सदा लखते हो क्षायिक दर्शन से अविराम।
तेरे दर्शन से निज दर्शन पाकर हर्षित हूँ गुणखान॥

मोह-मल्ल पर विजय प्राप्त कर महाबली हे मल्लि जिनेश।
निज गुण परिणति में शोभित हो शाश्वत मल्लिनाथ परमेश॥

प्रतिपल लोकालोक निरखते केवलज्ञान स्वरूप चिदेश।
विकसित हो चित् लोक हमारा तव किरणों से सदा दिनेश॥

राजमती तज नेमि जिनेश्वर! शाश्वत सुख में लीन सदा।
भोक्ता-भोग्य विकल्प विलय कर निज में निज का भोग सदा॥

मोह रहित निर्मल परिणति में करते प्रभुवर सदा विराम।
गुण अनन्त का स्वाद तुम्हारे सुख में बसता है अविराम॥

जिनका आत्म-पराक्रम लख कर कमठ शत्रु भी हुआ परास्त।
क्षायिक श्रेणी आरोहण कर मोह शत्रु को किया विनष्ट॥

पार्श्वनाथ के चरण-युगल में क्यो बसता यह सर्प कहो।
बल अनन्त लखकर जिनवर का चूर कर्म का दर्प अहो॥

क्षायिक दर्शन ज्ञान वीर्य से शोभित हैं सन्मति भगवान।
भरत क्षेत्र के शासन नायक अन्तिम तीर्थंकर सुखखान॥

विश्व-सरोज प्रकाशक जिनवर हो केवल-मार्तण्ड महान।
अर्घ्य समर्पित चरण-कमल में वन्दन वर्धमान भगवान॥

ॐ ह्रीं श्री पंचबालयतिजिनेन्द्रेभ्यो अनर्घ्यपद प्राप्तये जयमालामहाऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(सोरठा)

पंचम भाव स्वरूप, पंच बालयति को नमूं।
पाऊँ शुद्ध स्वरूप निज, कारण परिणाममय॥

(परिपुष्पांजलि क्षिपेत्)

जाप्यमंत्र : ॐ ह्रीं श्री पंचबालयति जिनेन्द्रेभ्यो नमः।

*

निर्वाणकांड (भाषा)

(श्री भैया भगवतीदास कृत)

(दोहा)

वीतराग वंदों सदा, भावसहित शिर नाय।
कहूँ कांड निर्वाणकी, भाषा सुगम बनाय॥

(चौपाई)

अष्टापद आदीश्वर स्वामी, वासुपूज्य चंपापुर नामी।
नेमिनाथस्वामी गिरनार, वंदों भाव भगति उरधार॥
चरम तीर्थंकर चरम शरीर, पावापुरी स्वामी महावीर।
शिखरसमेद जिनेश्वर वीस, भावसहित वंदों जगदीस॥
वरदतराय रु इंद मुनिंद, सायरदत्त आदि गुणवृंद।
नगर तारवर मुनि उठ कोडि, वंदों भावसहित कर जोडि॥
श्री गिरनार शिखर विख्यात, कोडि बहत्तर अरु सौ सात।
शंभु प्रद्युम्न कुमार द्वै भाय, अनिरुद्ध आदि नमूं तसु पाय॥
रामचंद्र के सुत द्वै वीर, लाडनरिंद आदि गुणधीर।
पांच कोड़ि मुनि मुक्ति मँझार, पावागिरि वंदों निरधार॥
पांडव तीन द्रविड राजान, आठकोड़ि मुनि मुक्ति पयान।
श्री शत्रुंजयगिरि के शीश, भावसहित वंदौं निशदीस॥
जे बलभद्र मुक्ति में गये, आठ कोड़ि मुनि औरहु भये।
श्री गजपंथ शिखर सुविशाल, तिनके चरण नमूं तिहूँ काल॥
राम हनू सुग्रीव सुडील, गव गवाख्य नील महानील।
कोड़ि निन्यानवै मुक्ति पयान, तुंगीगिरि वंदों धरि ध्यान॥
नंग अनंग कुमार सुजान, पंच कोड़ि अरु अर्घ्य प्रमाण।
मुक्ति गये सोनागिर सीस, ते वंदौं त्रिभुवनपति ईश॥
रावण के सुत आदि कुमार, मुक्ति गये रेवातट सार।
कोटि पंच अरु लाख पचास, ते वंदौं धरि परम हुलास॥

रेवानदी सिद्धवरकूट, पश्चिम दिशा देह जहं छूट।
द्वै चक्री दश कामकुमार, ऊठ्कोड़ि वंदौं भवपार॥
बड़वानी बड़नगर सुचंग, दक्षिण दिशि गिरि चूल उतंग।
इन्द्रजीत अरु कुंभ जु कर्ण, ते वंदौं भवसागर तर्ण॥
सुवरणभद्र आदि मुनि चार, पावागिरि-वर शिखर मंझार।
चेलना नदी तीर के पास, मुक्ति गये वन्दों नित तास॥
फलहोडी बड़गाम अनूप, पश्चिमदिशा द्रौणगिरिरूप।
गुरुदत्तादि मुनीश्वर जहाँ, मुक्ति गये वंदौं नित तहाँ॥
बालि महाबालि मुनि दोय, नागकुमार मिले त्रय होय।
श्री अष्टापद मुक्ति मँझार, ते वंदौं नित सुरत संभार॥
अचलापुर की दिशा ईशान, तहाँ मेंढगिरि नाम प्रधान।
साढे तीन कोड़ि मुनिराय, तिनके चरण नमूं चित लाय॥
वंशस्थल वनके ढिग होय, पश्चिम दिशा कुन्थुगिरि सोय।
कुलभूषण देशभूषण नाम, तिनके चरणनि करूँ प्रणाम॥
जसरथ राजा के सुत कहे, देश कलिंग पांचसौ लहे।
कोटि शिला मुनि कोटि प्रमान, वंदन करूँ जोर जुगपान॥
समवसरण श्री पार्श्व जिनंद, रेसंदीगिरि नयनानंद।
वरदत्तादि पंच ऋषिराज, ते वंदों नित धरम-जिहाज॥
मथुरापुर पवित्र उद्यान, जंबू स्वामीजी निर्वाण।
चरमकेवली पंचम काल, ते वन्दों नित दीन दयाल॥
तीन लोक के तीरथ जहाँ, नितप्रति वंदन कीजे तहाँ।
मन वच काय सहित सिरनाय, वंदन करहिं अधिक गुण गाय॥
संवत सतरह सौ इकताल, आश्विन सुदि दशमी सुविशाल।
'भैया' वंदन करहि त्रिकाल, जय निर्वाणकांड गुणमाल॥

जाप्यमन्त्र – ॐ ह्रीं श्री निर्वाण क्षेत्रेभ्यो नमः।

समुच्चय अर्घ्य

(गीता छंद)

मैं देव श्री अर्हंत पूजूं, सिद्ध पूजूं चाव सों।
आचार्य श्री उवझाय पूजूं, साधु पूजूं भाव सों।।
अर्हंत भाषित बैन पूजूं, द्वादशांग रचे गनी।
पूजूं दिगंबर गुरुचरन, शिव हेत सब आशा हनी।।
सर्वज्ञ भाषित धर्म दश विधि दयामय पूजूं सदा।
जजि भावना षोडश रतनत्रय जा बिना शिव नहीं कदा।।
त्रैलोक्य के कृत्रिम अकृत्रिम चैत्य चैत्यालय जजूँ।
पंचमेरु नंदीश्वर जिनालय खचर सुर पूजित भजूँ।।
कैलास श्री सम्मेद श्री गिरनार गिरि पूजूँ सदा।
चंपापुरी पावापुरी पुनि और तीरथ सर्वदा।।
चौबीस श्री जिनराज पूजूं बीस क्षेत्र विदेह के।
नामावली इक सहस वसु जय होय प्रति शिवगेह के।।

(दोहा)

जल गंधाक्षत पुष्प चरु, दीप धूप फल लाय।
सर्व पूज्य पद पूजहुं, बहु विधि भक्ति बढाय।।

ॐ ह्रीं भावपूजा, भाववंदना, त्रिकालपूजा, त्रिकालवंदना करना कराना— भावना भाना, श्री अरिहंतजी, सिद्धजी, आचार्यजी, उपाध्यायजी, सर्वसाधुजी-पंचपरमेष्ठिभ्यो नमः। प्रथमानुयोग-करणानुयोग-चरणानुयोग-द्रव्यानुयोगेभ्यो नमः। दर्शन-विशुद्धयादि षोडश कारणेभ्यो नमः। उत्तमक्षमादि दशलक्षण-धर्मेभ्यो नमः। सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान-सम्यक्चारित्रेभ्यो नमः। जल विषें, थल विषें, आकाश विषें, गुफा विषें, पहाड विषें, नगर-नगरी विषें, ऊर्ध्वलोक-मध्यलोक-पाताललोक विषे बिराजमान कृत्रिम अकृत्रिम जिन-चैत्यालय जिन-बिंबेभ्यो नमः। विदेहक्षेत्रे विद्यमान बीस तीर्थंकरेभ्यो नमः। पांच भरत, पांच ऐरावत—दस क्षेत्र संबंधी त्रीस चोबीसी के सातसौं वीस जिनेभ्यो नमः।

नंदीश्वरद्वीपसंबंधी बावन जिनचैत्यालयेभ्यो नमः। सम्मेदशिखर, कैलास, चंपापुर, पावापुर, गिरनार आदि सिद्धक्षेत्रेभ्यो नमः। जैनबिद्री, मूडबिद्री, राजगृही, शत्रुंजय, तारंगा आदि तीर्थक्षेत्रेभ्यो नमः। श्री चारण-ऋद्धिधारी सात परमऋषिभ्यो नमः। ॐ ह्रीं श्रीमंतभगवंत कृपालसंत श्री वृषभादि महावीरपर्यन्तं चतुर्विंशति तीर्थंकर परमदेवं आद्यानां आद्यै जम्बूद्वीपे भरतक्षेत्रे आर्यखंडे .... नाम्निनगरे .... मासानामुत्तमे ...... मासा ..... पक्षे ...... वासरे ....तिथौ सिद्ध शिला पर विराजमान सर्व सिद्धेभ्यो अनर्घ्यपद प्राप्तये महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

✻

भक्ति

हे जिनवाणी माता तुमको लाखों प्रणाम तुमको क्रोड़ों प्रणाम।
शिवसुखदानी माता तुमको लाखो प्रणाम, तुमको क्रोड़ों प्रणाम॥

तू वस्तु स्वरूप बतावे, अरु सकल विरोध मिटावे।
स्याद्वाद विख्याता तुमको लाखों प्रणाम, तुमको क्रोड़ों प्रणाम॥

तू करे ज्ञान का मंडन, मिथ्यात्व कुमारग खंडन।
हे तीन जगत की माता तुमको लाखों प्रणाम, तुमको क्रोड़ों प्रणाम॥

तू लोका-लोक प्रकाशे, चर-अचर पदार्थ विकाशे।
हे विश्व तत्त्व की ज्ञाता, तुमको लाखों प्रणाम, तुमको क्रोड़ों प्रणाम॥

शुद्धातम तत्त्व दिखावे, रत्नत्रय पथ प्रकटावे।
निज आनंद अमृत दाता तुमको लाखों प्रणाम, तुमको क्रोड़ों प्रणाम॥

हे मात कृपा अब कीजे, परभाव सकल हर लीजे।
'शिवराम' सदा गुण दाता तुमको लाखों प्रणाम, तुमको क्रोड़ों प्रणाम॥

✻

शान्ति-पाठ

(हरिगीतिका)

शास्त्रोक्त विधि पूजा महोत्सव, सुरपति चक्री करैं।
हम सारिखे लघु पुरुष कैसे, यथाविधि पूजा करैं।
धन-क्रिया-ज्ञान रहित न जाने, रीत पूजन नाथजी।
हम भक्तिवश तुम चरण आगै, जोड लीने हाथजी।।१।।

दु:ख-हरन मंगलकरन, आशा-भरन जिन पूजा सही।
यह चित्त में श्रद्धान मेरे, शक्ति है स्वयमेव ही।
तुम सारिखे दातार पाये, काज लघु जाचूं कहा।
मुझ आप-सम कर लेहु स्वामी, यही इक वांछा महा।।२।।

संसार भीषण विपिन में, वसु कर्म मिल आतापियो।
तिस दाहतैं आकुलित चिरतैं, शान्ति थल कहुं ना लियो।
तुम मिले शान्ति स्वरूप, शान्ति सुकरन समरथ जगपति।
वसु कर्म मेरे शान्ति कर दो, शान्तिमय पंचमगति।।३।।

जबलौं नहीं शिव लहूँ, तबलौं देह यह नर पावना।
सत्संग शुद्धाचरण श्रुत अभ्यास आतम भावना।
तुम बिन अनंतानंत काल गयो रुलत जगजाल में।
अब शरण आयो नाथ युग कर, जोर नावत भाल मैं।।४।।

(दोहा)

कर प्रमाण के मान तैं, गगन नपैं किहि भंत।
त्यों तुम गुण वर्णन करत, कवि पावे नहिं अंत।।५।।

(पुष्पांजलि क्षिपेत्)

शुद्ध आत्मा में प्रवृत्ति का इक मार्ग है निज चिंतन।
दुश्चिंताओं से निवृत्ति का इक मार्ग है निज चिंतन।।

शान्ति पाठ

हूँ शान्तिमय ध्रुव ज्ञानमय, ऐसी प्रतीति जब ज़गे।
अनुभूति हो आनन्दमय, सारी बिकलता तब भगे।।१।।
निजभाव ही है एक आश्रय, शान्ति दाता सुखमयी।
भूल स्व दर-दर भटकते, शान्ति कब किसने लही।।२।।
निज घर बिना विश्राम नाहीं, आज यह निश्चय हुआ।
मोह की चट्टान टूटी, शान्ति निर्झर बह रहा।।३।।
यह शान्तिधारा हो अखण्डित, चिरकाल तक बहती रहे।
होवें निमग्न सुभव्यजन, सुखशान्ति सब पाते रहें।।४।।
पूजोपरान्त प्रभो यही, इक भावना है हो रही।
लीन निज में ही रहूँ, प्रभु और कुछ वांछा नहीं।।५।

(दोहा) सहज परम आनन्दमय निज ज्ञायक अविकार।
स्व में लीन परिणति विषैं, बहती समरस धार।।६।।

(परिपुष्पांजलि क्षिपेत्)

विसर्जन पाठ

थी धन्य घड़ी जब निज ज्ञायक की, महिमा मैंने पहिचानी।
हे वीतराग सर्वज्ञ महा-उपकारी, तब पूजन ठानी।।१।।
सुख हेतु जगत में भ्रमता था, अन्तर में सुख सागर पाया।
प्रभु निजानन्द में लीन देख, मोय यही भाव अब उमगाया।।२।।
पूजा का भाव विसर्जन कर, तुम सम ही निज में थिर होऊँ।
उपयोग नहीं बाहर जावे, भव क्लेश बीज अब नहिं बोऊँ।।३।।
पूजा का किया विसर्जन प्रभु, और पाप भाव में पहुँच गया।
अब तक की मूरखता भारी, तज नीम हलाहल हाय पिया।।४।।
ये तो भारी कमजोरी है, उपयोग नहीं टिक पाता है।
तत्त्वादिक चिन्तन भक्ति से भी दूर पाप में जाता है।।५।।

हे बल-अनन्त के धनी विभो! भावों में तबतक बस जाना।
निज से बाहर भटकी परिणति, निज ज्ञायक में ही पहुँचाना।।६।।

पावन पुरुषार्थ प्रकट होवे, बस निजानन्द में मग्न रहूँ।
तुम आवागमन विमुक्त हुए, मैं पास आपके जा तिष्ठूँ।।७।।

(दोहा)

अक्षर पद अरु विधि में, हुई चूक जो कोय।
प्रभु प्रसाद से हो क्षमा, भक्ति सहाई होय।।

(पुष्पांजलि क्षिपामि)

*

आत्मा की स्तुति

(दोहा)

आत्मदेव ही देव है, महादेव बलवान।
निज अंतर में जो बसा, शाश्वत सुख की खान।।

मैं आत्मदेव चैतन्य पुंज, ध्रुव दर्शनमय अतीन्द्रिय हूँ।
मैं तो ज्ञानात्मक निरालंब, परमात्म स्वरूप अतीन्द्रिय हूँ।।

मैं तो नारक अथवा मनुष्य तिर्यंच देव पर्याय नहीं।
मैं उनका करता कारयिता कर्ता का अनुमंता न कहीं।।

मैं नहीं मार्गणा गुणस्थान अथवा मैं जीवस्थान नहीं।
मैं उनका कर्ता कारयिता कर्ता का अनुमंता नहीं।।

मैं एक अपूर्व महापदार्थ मैं पर द्रव्यों में निष्क्रिय हूँ।
मैं आत्मदेव चैतन्य पुंज, ध्रुव दर्शन मय अतीन्द्रिय हूँ।।

मैं बाल नहीं मैं तरुण नहीं मैं रोगी अथवा वृद्ध नहीं।
मैं उनका कर्ता कारयिता कर्ता का अनुमंता न कहीं।।

मैं राग नहीं मैं द्वेष नहीं मैं मोह नहीं मैं क्षोभ नहीं।
मैं उनका कर्ता कारयिता कर्ता का अनुमंता न कहीं।।

मैं सहज शुद्ध चैतन्य विलासी पर भावों में निष्क्रिय हूँ।
मैं आत्मदेव चैतन्य पुंज, ध्रुव दर्शनमय अतीन्द्रिय हूँ।।
मैं क्रोध नहीं मैं मान नहीं मैं माया अथवा लोभ नहीं।
मैं उनका कर्ता कारयिता कर्ता का अनुमंता न कहीं।।
कर्तव्य सकल का है अभाव शुद्धातम से तो बंध नहीं।
रस गंध स्पर्श रूपादिक से मेरा कुछ भी संबंध नहीं।।
मैं प्रवृत्ति भूत सुख का स्वामी अपने स्वरूप में सक्रिय हूँ।
मैं आत्मदेव चैतन्य पुंज, ध्रुव दर्शन मय अतीन्द्रिय हूँ।।
मैं प्रकृति प्रदेश स्थिति बंध अनुभाग बंध के पास नहीं।
औदारिक आहारक तैजस कार्माण वैक्रियक वास नहीं।।
ये सब पुद्गल द्रव्यात्मक है इनसे तो आत्मप्रकाश नहीं।
ऐसा दृढ निश्चय किये बिना अज्ञान दशा का नाश नहीं।।
मैं ज्ञान सिंधु परिपूर्ण शुद्ध निर्वाण सुंदरी को प्रिय हूँ।
मैं आत्मदेव चैतन्य पुंज, ध्रुव दर्शनमय अतीन्द्रिय हूँ।।

आत्मदेव का आश्रय ही, जग में है सार।
पूर्ण शुद्ध चैतन्य धन, मंगलमय शिवकार।।

आत्मज्ञानी

श्री सिद्धचक्र का पाठ, करो दिन आठ, ठाठ से प्राणी।
फल पायो आतम ध्यानी।।

जिसने सिद्धों का ध्यान किया, उसने अपना कल्याण किया।
समकित पाकर हो जाता सम्यक् ज्ञानी जनफल पायो..

पापों का क्षय हो जाता है, पर से ममत्व हट जाता है।
भव भावों से वैराग्य होय सुख दानी जन फल पायो....

पुण्यों की धारा बहती है माता जिनवाणी कहती है।
धर पंच महाव्रत हो जाता मुनि ज्ञानी जन फल पायो....

फिर तेरह विधि चारित्र धार निज रूप निरखता बारंबार।
श्रेणी चढकर हो जाता केवलज्ञानी.... फल पायो...
निज के स्वरूप की मस्ती में, रहता स्वभाव की बस्ती में।
निश्चित पाता है, सिद्धों की राजधानी...फल पायो..
जिसने भी मन से पाठ किया, उसने ही मंगल ठाठ किया।
क्रम क्रम से पाता मोक्ष लक्ष्मी रानी.... फल पायो..

*

भक्ति

जिनवाणी माता रत्नत्रय निधि दीजिये।।टेक।।
मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चरण में, काल अनादि घूमे।
सम्यग्दर्शन-भयो न तातैं, दुःख पायो दिने दूने।।

है अभिलाषा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरण दे माता।
हम पावें निजस्वरूप आपनों, क्यों न बने गुण ज्ञाता।।

जीव अनंतानंत पठाये स्वर्ग मोक्ष में तूने।
अब बारी है हम जीवन की, होवे कर्म विदूने।।

भव्य जीव हैं पुत्र तुम्हारे, चहुंगति दुःख से हारे।
इनको जिनवर बना शीघ्र अब, दे दे गुण गण सारे।।

औगुण तो अनेक होत हैं, बालक में ही माता।
पैं अब तुमसी माता पाई, क्यों न बने गुण ज्ञाता।।

क्षमा-क्षमा हो सभी हमारे, दोष अनंते भवके।
शिव का मार्ग बता दो माता, लेहु शरण में अबके।

जयवंतो जिनवाणी जग में, मोक्षमार्ग प्रवर्तो।
श्रावक 'जयकुमार' बीनवे, पद दे अजर अमर तो।।

*

श्री भक्तामर स्तोत्र (संस्कृत)

भक्तामर-प्रणत-मौलि-मणि-प्रभाणा-
मुद्योतकं दलित-पाप-तमो-वितानम्।
सम्यक् प्रणम्य जिन-पाद-युगं युगादा-
वालम्बनं भव-जले पततां जनानाम्॥१॥

यः संस्तुतः सकल-वाङ्मय-तत्त्व-बोधा-
दुद्भुत-बुद्धि-पटुभिः सुर-लोक-नाथैः।
स्तोत्रैजगत्त्रितय-चित्त-हरैरुदारैः,
स्तोष्ये किलाहमपि तं प्रथमं जिनेन्द्रम्॥२॥

बुद्धया बिनापि विबुधार्चित-पाद-पीठ,
स्तोतुं समुद्यतमतिर्विगत-त्रपोऽहम्।
बालं विहाय जल-संस्थितमिंदु-बिम्ब-
मन्यः क इच्छति जनः सहसा ग्रहीतुम्॥३॥

वक्तुं गुणान् गुण-समुद्र! शशाङ्क-कान्तान्,
कस्ते क्षमः सुर-गुरु-प्रतिमोऽपि बुद्धया?
कल्पान्तकाल-पवनोद्धत्त-नक्र-चक्रं,
को वा तरीतुमलमम्बुनिधिं भुजाभ्याम्॥४॥

सोऽहं तथापि तब भक्ति-वशान् मुनीश!
कर्तुंस्तवं विगत-शक्तिरपि प्रवृत्तः।
प्रीत्यात्मवीर्यमविचार्य मृगी मृगेन्द्रं,
नाभ्येति किं निज-शिशोः परिपालनार्थम॥५॥

अल्प-श्रुतं श्रुतवतां परिहास-धाम,
त्वद्भक्तिरेव मुखरी कुरुते बलान्माम्।
यत्कोकिलः किल मधौ मधुरं विरौति,
तच्चाम्र -चारू-कलिका-निकरैक-हेतुः॥६॥

त्वत्संस्तवेन भव-संतति-सन्निबद्धं,
पापं क्षणात् क्षयमुपैति शरीर-भाजाम्।
आक्रान्त-लोकमलि-नीलमशेषमाशु,
सूर्यांशु-भिन्नमिव शार्वरमंधकारम् ॥७॥
मत्त्वेति नाथ! तव संस्तवनं मयेद-
मारभ्यते तनु-धियापि तव प्रभावात्।
चेतो हरिष्यति सतां नलिनी-दलेषु
मुक्ता-फलद्युति-मुपैति ननूद-बिन्दुः ॥८॥
आस्तां तव स्तवनमस्त-समस्त-दोषं,
त्वत् सङ्कथापि जगतां दुरितानि हन्ति।
दूरे सहस्रकिरणः कुरुते प्रभैव,
पद्माकरेषु जलजानि विकासभाञ्जि ॥९॥
नात्यद्भुतं भुवन-भूषण! भूत-नाथ!
भूतैर्गुणैर्भुवि भवन्तमभिष्टुवन्तः।
तुल्या भवन्ति भवतो ननु तेन किं वा
भूत्याश्रितं य इह नात्मसमं करोति ॥१०॥
दृष्ट्वा भवन्तमनिमेष-विलोकनीयं,
नान्यत्र तोषमुपयाति जनस्य चक्षुः।
पीत्वा पयः शशिकर-द्युति-दुग्ध-सिन्धोः,
क्षारं जलं जलनिधेरसितुं क इच्छेत् ॥११॥
यैः शांत-राग-रुचिभिः परमाणुभिस्त्वं,
निर्मापितस्त्रिभुवनैक ललाम-भूत।
तावन्त एव खलु तेऽप्यणवः पृथिव्यां,
यत्ते समानमपरं न हि रूपमस्ति ॥१२॥
वक्त्रं क्व ते सुर-नरोरग-नेत्र-हारि,
निःशेष-निर्जित-जगत्त्रितयोपमानम्।
बिम्बं कलङ्क-मलिन क्व निशाकरस्य,
यद्वासरे भवति पाण्डु-पलाश-कल्पम् ॥१३॥

सम्पूर्ण-मण्डल-शशाङ्क-कला-कलाप-
शुभ्रा गुणास्त्रिभुवनं तव लङ्घयन्ति ।
ये संश्रितास्त्रिजगदीश्वर-नाथमेकं,
कस्तान्निवारयति संचरतो यथेष्टम् ।।१४।।
चित्रं किमत्र यदि ते त्रिदशाङ्गनाभि-
र्नीतं मनागपि मनो न विकार-मार्गम् ।
कल्पान्त-काल-मरुता चलिताचलेन,
किं मन्दिराद्रि-शिखरं चलितं कदाचित् ।।१५।।
निर्धूम-वर्तिरपवर्जित-तैल-पूरः,
कृत्स्नं जगत्त्रयमिदं प्रगटीकरोषि ।
गम्यो न जातु मरुतां चलिताचलानां,
दीपोऽपरस्त्वमसि नाथ ! जगत्प्रकाशः ।।१६।।
नास्तं कदाचिदुपयासि न राहु-गम्यः,
स्पष्टीकरोषि सहसा युगपज्जगन्ति ।
नाम्भोधरोदर-निरुद्ध-महा-प्रभावः,
सूर्यातिशायि-महिमासि मुनीन्द्र ! लोके ।।१७।।
नित्योदयं दलित-मोह-महान्धकारं,
गम्यं न राहु-वदनस्य न वारिदानाम् ।
विभ्राजते तव मुखाब्जमनल्पकान्ति,
विद्योतयज्जगदपूर्व-शशाङ्क-बिम्बम् ।।१८।।
किं शर्वरीषु शशिनाह्नि विवस्वता वा,
युष्मन्मुखेन्दु -दलितेषु तमस्सु नाथ ।
निष्पन्न-शालि-वन-शालिनि जीव-लोके
कार्यं कियज्जलधरैर्जल-भार-नम्रैः ।।१९।।
ज्ञानं यथा त्वयि विभाति कृतावकाशं,
नैवं तथा हरि-हरादिषु नायकेषु ।

तेजः स्फुरन्मणिषु याति यथा महत्वं,
नैवं तु काच-शकले किरणाकुलेऽपि ॥२०॥
मन्ये वरं हरि-हरादय एव दृष्टा,
दृष्टेषु येषु हृदयं त्वयि तोषमेति।
किं वीक्षितेन भवता भुवि येन नान्यः,
कश्चिन्मनो हरति नाथ भवान्तरेऽपि ॥२१॥
स्त्रीणां शतानि शतशो जनयन्ति पुत्रान्,
नान्या सुतं त्वदुपमं जननी प्रसूता।
सर्वा दिशो दधति भानि सहस्त्र-रश्मिं,
प्राच्येव दिग्जनयति स्फुरदंशुजालम् ॥२२॥
त्वामामनन्ति मुनयः परम पुमांस-
मादित्य-वर्णममलं तमसः पुरस्तात्।
त्वामेव सम्यगुपलभ्य जयन्ति मृत्यु,
नान्यः शिवः शिवपदस्य मुनीन्द्र! पन्थाः ॥२३॥
त्वामव्ययं विभुमचिन्त्यमसंख्यमाद्यं
ब्रह्माणमीश्वरमनन्तमनङ्ग-केतुम्।
योगीश्वरं विदित-योगमनेकमेकं,
ज्ञान-स्वरूपममलं प्रवदन्ति सन्तः ॥२४॥
बुद्धस्त्वमेव विबुधार्चित-बुद्धि-बोधात्,
त्वं शङ्करोऽसि भुवन-त्रय-शङ्करत्वात्।
धातासि धीर शिव-मार्गविधेर्विधानाद्,
व्यक्तं त्वमेव भगवन्पुरुषोत्तमोऽसि ॥२५॥
तुभ्यं नमस्त्रिभुवनार्तिहराय नाथ,
तुभ्यं नमः क्षिति-तलामल-भूषणाय।
तुभ्यं नमस्त्रिजगतः परमेश्वराय,
तुभ्यं नमो जिन! भवोदधि-शोषणाय ॥२६॥

को विस्मयोऽत्र यदि नाम गुणैरशेषै-
स्त्वं संश्रितो निरवकाशतया मुनीश।
दोषैरुपात्तविविधाश्रय-जात-गर्वैः,
स्वप्नान्तरेऽपि न कदाचिदपीक्षितोऽसि ।।२७।।
उच्चैरशोकतरु-संश्रितमुन्मयूख -
माभाति रूपममलं भवतो नितान्तम्।
स्पष्टोल्लसत्किरणमस्त-तमो-वितानं,
बिम्बं रवेरिव पयोधर-पार्श्ववर्ति ।।२८।।
सिंहासने मणि-मयूख-शिखा-विचित्रे,
विभ्राजते तब वपुः कनकावदातम्।
बिम्बं वियद्विलसदंशुलता-वितानं,
तुङ्गोदयाद्रिशिरसीव सहस्र-रश्मेः ।।२९।।
कुन्दावदात-चल-चामर-चारु-शोभं,
विभ्राजते तब वपुः कलधौत-कान्तम्।
उद्यच्छशाङ्क-शुचिनिर्जर-वारि-धार-
मुच्चैस्तट सुरगिरेरिव शातकौम्भम् ।।३०।।
छत्र-त्रयं तव विभाति शशाङ्क-कान्त-
मुच्चैः स्थितं स्थगित-भानु-कर-प्रतापम्।
मुक्ताफल-प्रकर-जाल-विवृद्ध-शोभम्,
प्रख्यापयत्त्रिजगतः परमेश्वरत्वम् ।।३१।।
गम्भीर-तार-रवपूरित-दिग्विभाग-
स्त्रैलोक्य-लोक-शुभ-सङ्गम-भूति-दक्षः।
सद्धर्मराज-जय-घोषण-घोषकः सन्,
खे दुन्दुभिर्ध्वनति ते यशसः प्रवादी ।।३२।।
मन्दार-सुन्दर-नमेरु-सुपारिजात-
सन्तानकादि-कुसुमोत्कर-वृष्-वृष्टि-रुद्धा।
गन्धोद-बिन्दु-शुभ-मन्द-मरुत्प्रयाता,
दिव्या दिवः पतति ते बचसां ततिर्वा ।।३३।।

शुम्भत्प्रभा-वलय-भूरि-विभा विभोस्ते,
लोक-त्रये द्युतिमतां द्युतिमाक्षिपन्ती।
प्रोद्यद्दिवाकर-निरन्तर-भूरि-संख्या,
दीप्त्या जयत्यपि निशामपि सोम-सौम्याम्॥३४॥
स्वर्गापवर्ग-गम-मार्ग-विमार्गणेष्टः,
सद्धर्म-तत्व-कथनैक-पटुस्त्रिलोक्याः।
दिव्य-ध्वनिर्भवति ते विशदार्थ-सर्व-
भाषा-स्वभाव-परिणाम-गुणैः प्रयोज्यः॥३५॥
उन्निद्र-हेम-नव-पङ्कज-पुञ्ज-कान्ती,
पर्युल्लसन्नख-मयूख-शिखाभिरामौ।
पादौ पदानि तव यत्र जिनेन्द्र धत्तः,
पद्मानि तत्र विबुधाः परिकल्पयन्ति॥३६॥
इत्थं यथा तव विभूतिरभूज्जिनेन्द्र!
धर्मोपदेशन-विधौ न तथा परस्य।
यादृक्प्रभा दिनकृतः प्रहतांधकारा,
तादृक्कुतो ग्रह-गणस्य विकासिनोऽपि॥३७॥
श्च्योतन्मदाविल-विलोल-कपोल-मूल-
मत्त-भ्रमद्भ्रमर-नाद-विवृद्ध-कोपम्।
ऐरावताभमिभमुद्धतमापतन्तं,
दृष्ट्वा भयं भवति नो भवदाश्रितानाम्॥३८॥
भिन्नेभ-कुम्भ-गलदुज्ज्वल-शोणिताक्त-
मुक्ता-फल-प्रकरभूषित-भूमि-भागः।
बद्ध-क्रमः क्रम-गतं हरिणाधिपोऽपि,
नाक्रामति क्रम-युगाचल-संश्रितं ते॥३९॥
कल्पान्त-काल-पवनोद्धत-वह्नि-कल्पं,
दावानलं ज्वलितमुज्जवलमुत्स्फुलिङ्गम्।

विश्वं जिघत्सुमिव सम्मुखमापतन्तं,
त्वन्नाम-कीर्तन-जलं शमयत्यशेषम् ॥४०॥
रक्तेक्षणं समद-कोकिल-कण्ठ-नीलं,
क्रोधोद्धतं फणिनमुत्फणमापतन्तम्।
आक्रामति क्रम-युगेन निरस्त-शङ्क-
स्त्वन्नाम-नाग-दमनी हृदि यस्य पुंसः ॥४१॥
वल्गत्तुरङ्ग-गज-गर्जित-भीमनाद-
माजौ बलं बलवतामपिभूपतीनाम्।
उद्यद्दिवाकर-मयूख-शिखापविद्धं,
त्वत्कीर्तनात्तम इवाशु भिदामुपैति ॥४२॥
कुन्ताग्र-भिन्न-गज-शोणित-वारिवाह-
वेगावतार-तरणातुर-योध-भीमे।
युद्धे जयं विजित-दुर्जय-जेय-पक्षा-
स्त्वत्पाद-पङ्कज-वनाश्रयिणो लभन्ते ॥४१॥
अम्भोनिधौ क्षुभित-भीषण-नक्र-चक्र-
पाठीन-पीठ-भय-दोल्वण-वाडवाग्नौ।
रंगत्तरङ्ग-शिखर-स्थित-यान-पात्रा-
स्त्रासं विहाय भवतः स्मरणाद् व्रजन्ति ॥४४॥
उद्भूत-भीषण-जलोदर-भार-भुग्नाः,
शोच्यां दशामुपगताश्च्युत-जीविताशाः।
त्वत्पाद-पङ्कज-रजोमृत-दिग्ध देहा,
मर्त्या भवन्ति मकरध्वज-तुल्यरूपाः ॥४५॥
आपाद-कण्ठमुरु-श्रृङ्खल-वेष्टिताङ्गा,
गाढं बृहन्निगड-कोटि-निधृष्ट-जङ्घा।
त्वन्नाम मन्त्रमनिशं मजुजाः स्मरन्तः,
सद्यः स्वयं विगत-बन्ध-भया भवन्ति ॥४६॥

मत्तद्विपेन्द्र-मृगराज-दवानलाहि-
सङ्ग्राम-वारिधिमहोदर-बन्धनोत्थम् ।
तस्याशु नाशमुपयाति भयं भियेव,
यस्तावकं स्तवमिमं मतिमानधीते ॥४७॥
स्तोत्रस्रजं तव जिनेन्द्र गुणैर्निबद्धां,
भक्त्या मया रुचिर-वर्ण-विचित्र-पुष्पाम् ।
धत्ते जनो य इह कण्ठ गतामजस्रं,
तं मानतुङ्गमवशा समुपैति लक्ष्मीः ॥४८॥
॥ इति श्री भक्तामर स्तोत्रम् ॥

सामायिक पाठ भाषा

१. प्रतिक्रमण कर्म

काल अनंत भ्रम्यो जग में सहिये दुःख भारी ।
जन्म मरण नित किये पाप को है अधिकारी ॥
कोटि भवांतर माहि मिलन दुर्लभ सामाधिक ।
धन्य आज, मैं भयों योग मिलियो सुखदायक ॥१॥

हे सर्वज्ञ जिनेश ! किये जे पाप जु मैं अब ।
ते सब मन-वच-काय-योग की गुप्ति बिना लभ ॥
आप समीप हुजूर मांहि मैं खड़ो खड़ो सब ।
दोप कहूँ सो सुनौ करो नठ दुःख देहिं जब ॥२॥

क्रोध मान पद लोभ मोह माया वशि प्रानी ।
दुःख सहित जे किये दया तिनकी नहिं आनी ॥
बिना प्रयोजन एकेंद्रिय वि ति चउ पंचेंद्रिय ।
आप प्रसादहि मिटै दोष जो लग्यो मोहि जिय ॥३॥

आपस में इकठौर थापकरि जे दुःख दीने।
पेलि दिये पगतले दाबिकरि प्रान हरीने।।
आप जगत के जीव जिते तिन सब के नायक।
अरज करूँ मैं सुनो दोष मेटो दुःखदायक।।४।।

अंजन आदिक चोर महा घनघोर पापमय।
तिनके जे अपराध भये ते क्षमा क्षम्य किय।।
मेरे जे अब दोष भये ते क्षमहु दयानिधि।
यह पडिकोणों कियो आदि षट्कर्म माहिं विधि।।५।।

२. द्वितीय प्रत्यारव्यान कर्म

इसके आदि व अन्त में आलोचना पाठ बोलकर फिर
तीसरे सामायिक कर्म का पाठ करना चाहिए।

जो प्रमादवशि होय विराधे जीव घनेरे।
तिनको जो अपराध भयो मेरे अघ ढेरे।।
सो सब झूठो होउ जगतपति के परसादे।
जा प्रसादतें मिले सर्व सुख दुःख न लाधै।।६।।

मैं पापी निर्लज्ज दया करि हीन महाशठ।
किये पाप अतिघोर पाप मति होय चित्त दुठ।।
निंदूँ हूँ मैं बारंबार निज जिय को गरहूँ।
सबविधि धर्म उपाय पाय फिर पाप हि कर हूँ।।७।।

दुर्लभ है नरजन्म तथा श्रावक कुल भारी।
सत्संगति संयोग धर्म जिन श्रद्धा धारी।।
जिन वचनामृत धार समावर्ते जिनवानी।
तोहू जीव संघारे धिक् धिक् हम जानी।।८।।

इन्द्रिय लंपट होय खोय निज ज्ञान जमा सब।
अज्ञानी जिमि करै तिसो विधि हिंसक है अब।।

गमनागमन करंतो जीव विराधे भोले।
ते सब दोष किये निदूँ अब मन वच तोले।।९।।
आलोचन विधि थकी दोष लागे जु घनेरे।
ते सब दोष विनाश होउँ तुम ते जिन मेरे।।
बार वार इस भांति मोह मद दोष कुटिलता।
ईर्षादिक तें भये निंदिये जे भयभीता।।१०।।

३. तृतीय सामायिक भाव कर्म

सब जीवन में मेरे समता भाव जग्यो है।
सब जिय मो सम-समता राखो भाव लग्यो है।।
आर्त रौद्र द्वय ध्यान छांड़ि करि हूँ सामायिक।
संयम मो कब शुद्ध होय भाव बधायक।।११।।
पृथ्वी जल अरु अग्नि वायु चउकाय वनस्पति।
पंचहि थावर मांहि तथा त्रस जीव वसैं जित।।
बे इंद्रिय तिय चउ पंचेंद्रिय मांहि जीव सब।
तिनसे क्षमा कराऊँ मुज पर क्षमा करों अब।।१२।।
इस अवसर में मेरे सब सम कंचन अरु तृण।
महल मसान समान शत्रु अरु मित्र ही सब गण।
जामन मरण समान जानि हम समता कीनी।
सामायिकका काल जिते यह भाव नवीनी।।१३।।
मेरो है इक आतम तामें ममत जु कीनो।
और सबे मम भिन्न जाति समता रस भीनो।।
मात पिता सुत बंधु मित्र तिय आदि सबे यह।
मौते न्यारे जानि यथारथ रूप करयो गह।।१४।।
में अनादि जगजाल मांहि फंसि रूप न जाण्यो।
एकेन्द्रिय दे आदि जंतु को प्राण हराण्यो।।
ते सब जीव समूह सुनो मेरी यह अरजी।
भव-भव को अपराध क्षमा कीज्यो करी मरजी।।१५।।

४. चतुर्थ स्तवन कर्म

नमूँ ऋषन जिनदेव अजित जिन जीति कर्म को।
संभव भवदुःखहरण करण अभिनंद शर्म को।।
सुमति सुमति दातार तार भव सिंधु पार कर।
पद्मप्रभ पद्मनाभ भानि भव भीत प्रीति घर।।१६।।
श्री सुपार्श्व कृतपाशनाश भवोजास शुद्धकर।
श्री चन्द्र प्रभ चन्द्र कांतिसम देहकांति धर।।
पुष्पदन्त दमि दोष कोष भवपोष रोषहर।
शीतल शीतल करण हरण भवताप दोषहर।।१७।।
श्रेयरूप जिनश्रेय ध्येय नित सेय भव्यजन।
वासुपूज्य शतपूज्य वासवादिक भवभयहन।।
विमल विमलमति देन अंतगत है अनंत जिन।
घर्म शर्म शिव करण शांति जिन शांति विधायिन।।१८।।
कुन्थु कुन्थु मुख जीवपाल अरनाथ जालहर।
मल्लि मल्लसम मोहममल्लमारण प्रचार घर।।
मुनिसुव्रत व्रतकरण नमत सुरसंधहि नमि जिन।
नेमिनाथ जिन नेमि धर्मरथ माहि ज्ञावघन।।१९।।
पार्श्वनाथ जिन पार्श्वउपलसम मोक्षरमापति।
वर्धमान जिन नमो नमूं भव दुःख कर्मकृत।।
या विघि मैं जिनसंघरूप चउबीस संख्यधर।
स्तवूं नमूँ हूँ बारंबार वंदों शिव सुखकर।।२०।।

५. पंचम वंदना कर्म

वंदूँ मैं जिनवीर धीर महावीर सुसन्मति।
वर्धमान अतिवीर वन्दूं हूं मनवचतन कृत।

त्रिशलातनुज महेशधीश विद्यापति वंदू।
वंदो नित प्रति कनक रूप तनु पाप निकंदूँ ।।२१।।
सिद्धारथ नृपनंद द्वन्द दुःख दोष मिटावन।
दुरित दवानल ज्वलित ज्वाल जगजीव उधारन।।
कुण्डलपुर लीय जन्म जगत जिय आनंदकरन।
वर्ष वहत्तर आयु पाय सब ही दुःख टारन।।२२।।
सप्त हस्त तनु तुंगभंग कृत जन्ममरण भय।
बालब्रह्ममय ज्ञेय हेय आदेय ज्ञानमय।
दे उपदेश उधारि तारी भव सिंधु जीव धन।
आप बसे शिवमांहि ताहि वंदौं मन वच तन।।२३।।
जाके वंदन थकी दोष दुःख दूर हि जावै।
जाके वंदन थकी मुक्ति तिय सन्मुख आवे।
जाके वंदन थकी वंद्य होवे सुरगन के।
ऐसे वीर जिनेश वन्दि हूँ क्रमयुग तिनके।।२४।।
सामायिक षट्-कर्म मांहि वंदन यह पंचम।
वंदौं वीर जिनेंद्र इन्द्रशत वंद्य वंद्य मम।।
जन्म मरण भय हरो करो अघ शान्ति शान्तिमय।
मैं अघकोष सुपोष दोष को दोष विनाशय।।२५।।

६. छठा कायोत्सर्ग कर्म

कायोत्सर्ग विधान करू अंतिम सुखदाई।
कार्य त्यजनमय होय काय सबको दुःखदाई।।
पूरव दक्षिण नमूं दिशा पश्चिम उत्तर में।
जिनगृह वंदन करूँ हरुँ भवपापतिमिर मैं।।२६।।
शिरोनति मैं करूँ नमूँ मस्तक कर धरिकै।
आवर्तादिक क्रिया करूँ मन वच मद हरि है।।

तीनलोक जिन भवनमांहि जिन है जो अकृत्रिम।
कृत्रिम हैं द्वय अर्धद्वीप मांहि वंदूँ जिम ।।२७।।

आठ कोडि परि छप्पन लाख जु सहस सत्याण।
चारि शतक-परि असि एक जिनमंदिर जाणु ।।
व्यंतर ज्योतिष माहि संख्य रहते जिन मंदिर।
ते सब वंदन करूँ हरहु मम पाप संघकर ।।२८।।

सामायिकसम नाहि और कोउ बैर मिटायक।
सामायिकसम नाहि और कोउ मैत्री दायक ।।
श्रावक अणुव्रत आदि अन्त सप्तम गुणथानक।
यह आवश्यक किये होय निश्चय दुःखहानक ।।२९।।

जे भवि आतम-काज-करण उद्यम के धारी।
ते सब काज विहाय करो सामायिक सारी ।।
राग रोष मदमोह क्रोध लोमादिक जे सब।
बुध महाचन्द्र विलाय जाय तातै कीज्यों अब ।।३०।।

*

नीरव-निर्जर

(श्री युगलजी कृत)

सामायिक-पाठ

(वीर छन्द)

प्रेम भाव हो सब जीवों से, गुणीजनों में हर्ष प्रभो।
करुणा-स्रोत बहें दुखियों पर, दुर्जन में मध्यस्थ विभो ।।१।।

यह अनन्त बल-शील आतमा, हो शरीर से भिन्न प्रभो।
ज्यों होती तलवार म्यान से, वह अनन्त बल दो मुझको ।।२।।

सुख-दुख, वैरी-बन्धु वर्ग में, काँच-कनक में समता हो।
वन-उपवन, प्रासाद-कुटी में, नहीं खेद नहिं ममता हो॥३॥

जिस सुन्दरतम पथ पर चलकर, जीते मोह मान मन्मथ।
वह सुंदर-पथ ही प्रभु मेरा, बना रहे अनुशीलन पथ॥४॥

एकेन्द्रिय आदिक प्राणी की, यदि मैंने हिंसा की हो।
शुद्ध हृदय से कहता हूँ वह, निष्फल हो दुष्कृत्य प्रभो॥५॥

मोक्षमार्ग प्रतिकूल प्रवर्तन, जो कुछ किया कषायों से।
विपथ-गमन सब कालुष मेरे, मिट जायें सद्भावों से॥६॥

चतुर वैद्य विष विक्षत करता, त्यों प्रभु! मैं भी आदि उपांत।
अपनी निंदा आलोचन से, करता हूँ पापों को शान्त॥७॥

सत्य-अहिंसादिक व्रत में भी, मैंने हृदय मलीन किया।
व्रत-विपरीत प्रवर्तन करके, शीलाचरण विलीन किया॥८॥

कभी वासना की सरिता का, गहन-सलिल मुझ पर छाया।
पी-पी कर विषयों की मदिरा, मुझमें पागलपन आया॥९॥

मैंने छली और मायावी, हो असत्य आचरण किया।
पर-निन्दा गाली चुगली जो, मुँह पर आया वमन किया॥१०॥

निरभिमान उज्ज्वल मानस हो, सदा सत्य का ध्यान रहे।
निर्मल जल की सरिता-सदृश, हिय में निर्मल ज्ञान बहे॥११॥

मुनि चक्री शक्री के हिय में, जिस अनन्त का ध्यान रहे।
गाते वेद पुराण जिसे वह, परम देव मम हृदय रहे॥१२॥

दर्शन-ज्ञान स्वभावी जिसने, सब विकार ही वमन किये।
परम ध्यान गोचर परमातम, परम देव मम हृदय रहे॥१३॥

जो भवदुःख का विध्वंसक है, विश्व विलोकी जिसका ज्ञान।
योगी जन के ध्यान गम्य वह, बसे हृदय में देव महान॥१४॥

मुक्ति-मार्ग का दिग्दर्शक है, जन्म-मरण से परम अतीत।
निष्कलंक त्रैलोक्य-दर्शि वह, देव रहे मम हृदय समीप॥१५॥

निखिल-विश्व के वशीकरण जो, राग रहे ना द्वेष रहे।
शुद्ध अतीन्द्रिय ज्ञानस्वरूपी, परम देव मम हृदय रहे॥१६॥

देख रहा जो निखिल-विश्व को, कर्मकलंक विहीन विचित्र।
स्वच्छ विनिर्मल निर्विकार वह, देव करे मम हृदय पवित्र॥१७॥

कर्मकलंक अछूत न जिसका, कभी छू सके दिव्यप्रकाश।
मोह-तिमिर को भेद चला जो, परम शरण मुझको वह आप्त॥१८॥

जिसकी दिव्यज्योति के आगे, फीका पड़ता सूर्यप्रकाश।
स्वयं ज्ञानमय स्व-पर प्रकाशी, परम शरण मुझको वह आप्त॥१९॥

जिसके ज्ञानरूप दर्पण में, स्पष्ट झलकते सभी पदार्थ।
आदि-अन्त से रहित शान्त शिव, परमशरण मुझको वह आप्त॥२०॥

जैसे अग्नि जलाती तरु को, तैसे नष्ट हुए स्वयमेव।
भय-विषाद-चिन्ता सब जिसके, परम शरण मुझको वह देव॥२१॥

तृण, चौकी, शिल-शैल, शिखर नहीं, आत्मसमाधि के आसन।
संस्तर, पूजा, संघ-सम्मिलन, नहीं समाधि के साधन॥२२॥

इष्ट-वियोग, अनिष्ट-योग में, विश्व मनाता है मातम।
हेय सभी है विश्व वासना, उपादेय निर्मल आतम॥२३॥

बाह्य जगत कुछ भी नहीं मेरा, और न बाह्य जगत का मैं।
यह निश्चय कर छोड़ बाह्य को, मुक्ति हेतु नित स्वस्थ रमें॥२४॥

अपनी निधि तो अपने में है, बाह्य वस्तु में व्यर्थ प्रयास।
जग ता सुख तो मृग-तृष्णा है, झूठे हैं उसके पुरुषार्थ॥२५॥

अक्षय शाश्वत है आत्मा, निर्मल ज्ञानस्वभावी है।
जो कुछ बाहर है, सब पर है, कर्माधीन विनाशी है॥२६॥

तन से जिसका एक्य नहीं, हो सुत-तिय-मित्रों से कैसे।
चर्म दूर होने पर तन से, रोम समूह रहें कैसे।।२७।।

महा कष्ट पाता जो करता पर पदार्थ जड़ देह संयोग।
मोक्ष-महल का पथ है सीधा, जड़-चेतन का पूर्ण वियोग।।२८।।

जो संसार पतन के कारण, उन विकल्प-जालों को छोड़।
निर्विकल्प, निर्द्वन्द आतमा, फिर-फिर लीन उसी में हो।।२९।।

स्वयं किये जो कर्म शुभाशुभ, फल निश्चय ही वे देते।
करें आप फल देय अन्य तो, स्वयं किये निष्फल होते।।३०।।

अपने कर्म सिवाय जीवों को, कोई न फल देता कुछ भी।
पर देता है यह विचार तज, स्थिर हो छोड़ प्रमादी बुद्धि।।३१।।

निर्मल, सत्य, शिवं, सुन्दर है, 'अमितगति' वह देव महान।
शाश्वत निज में अनुभव करते, पाते निर्मल पद निर्वाण।।३२।।

✻

शास्त्र-भक्ति

महिमा है अगम जिनागम की।टेक।

जाहि सुनत जड़ भिन्न पिछानी, हम चिन्मूरति आतम की।१।।

रागादिक दुःख कारन जानैं, त्याग बुद्धि दीनी भ्रम की।२।

ज्ञान-ज्योति जागी उर अंतर, रुचि बाढी पुनि शमदम की।३।

कर्मबंध की भई निरजरा, कारण परम पराक्रम की।४।

'भागचन्द' शिव-लालच लाग्यो, पहुँच नहीं है जहँ जम की।५।।

✻

सामायिक पाठ

श्री अमितगति आचार्य विरचित
गुजराती पद्यकर्ता :
(ब. चुनीलाल देसाई राजकोटवाला)

(हरिछंद)

सहु प्राणी प्रत्ये मैत्रीभाव प्रमोद गुणीजन शुं रहो;
मध्यस्थता विपरीत शुं करुणा दुःखी प्रत्ये थजो. १

ज्यम म्यानथी तलवार छे त्यम भिन्न देहथी आत्मा छे;
हे नाथ! आप कृपा वडे मुज शक्ति अनुभवरुप बने. २

सुख दुःख के अरि मित्र योग वियोग भवने के वने;
मुज मन समभावी करजो बुद्धिनष्ट ममत्वने. ३

तव पाद मम उर दीप सम बनी मोहनुं तम दूर करो;
ने बिंबसम हो, कीलित हो, स्थित हो, निषात सुलीन हो. ४

एकेन्द्रियादिक घात ज्यां त्यां में प्रमाद वडे करी;
जोडयां वछोडयां दूभव्यां हो देव! मिथ्या दृष्कृति. ५

इंद्रिय कषाये कुमतिथी सच्चरित्रनुं लोपन कर्युं;
दुष्कृत्य मुज मिथ्या करो प्रतिकूल वर्तन जे कर्युं. ६

भव दुःखद पाप कषाय निर्मित नाश करुं हुं सर्वने;
विष हरे मंत्रे वैद्य त्यम चारित्र भंगो में कर्या. ७

प्रतिकमण आजे शुद्ध भावे शुद्धि अर्थे हुं करुं;
कर माफ मारा दोष सर्वे नाथ! हुं माफी चहुं. ८

अतिक्रम विकारी मन व्यतिकरम शीलव्रतनो भंग छे;
अतिचार विषये वृति अन-आचार विषये संग छे. ९

कंइ अर्थ-मात्रा-वाक्य-पद हीन में प्रमादवशे कह्युं;
करी माफ देवी शारदा दे दान केवलज्ञाननुं. १०

चिंतित वस्तु दानमां चिंतामणि जिनवाणी छो;
परिणाम शुद्धि ने समाधि रत्नत्रय देनारी छो. ११

उपलब्धि आत्म स्वरूपनी देनार तुं शारदा;
शिव सौख्य सिद्धि प्राप्त थाओ हुं करुं तुज वंदना. १२

करी स्मरण सर्व मुनींद्र वृंदो अमर नर इंद्रो स्तवे;
गाता पुराणो वेद शास्त्रो देव ते हृदये वसे. १३

छो ज्ञान दर्शन सुख स्वभावी देव! मुज हृदये वसो;
परमात्म संज्ञ समाधिगम्य विकारविण विलसी रहो. १४

करी नष्ट भवदुःख जाल वस्तु जगत सूक्ष्म रुपे जुए;
देवाधिदेव! वसो हृदय जे योगी अंतर्गत रमे. १५

दुःख जन्म मृत्यु तन रहित अकलंक त्रिलोकी जाणता;
देवाधिदेव! वसो हृदय मम मोक्ष पदवी आपता. १६

सौ प्राणी प्रेम-निरी द्रियी रागादि दोष रहित छो;
देवाधिदेव! वसो हृदय मम ज्ञानमय अविनाशी छो. १७

जे सिद्ध छे विबुद्ध व्यापक नष्ट सहु कर्मो कर्या;
ध्याने विकारो ध्रुजता ते देव! में ध्याने धर्यां. १८

नहि तिमिर स्पर्शे सूर्यने त्यम कर्म दोष न ज्यां अडे;
हुं शरण छुं नित आप्त ए नैकैक निरंजन देवने. १९

भासे न भास्कर तोये त्रिभुवन ज्ञानज्योति प्रकाशतो;
स्वात्मा महीं स्थित आप्त छे ते देव शरण मुजे थजो. २०

जे ज्ञानमां आ जगत भिन्न विभिन्न स्पष्ट ज भासतुं;
हो शरण शांत अनादि शिव ए शुद्ध आप्त अनंतनुं. २१

भय काम मूर्छा खेद निंद्रा शोक चिंता मानने;
अनले तरु सम नष्ट कीधां शरण छुं ते आप्तने. २२

नहि काष्ट पत्थर तृण शिला विधि आसने निर्मल छे;
छोडी कषायो विशुद्ध आत्मा ज्ञानी आसन मान्य छे. २३

हे! भद्रनां साधन समाधि छे न आसन जन पूजा;
नहि संघ छे, नित वासना तजी बाह्य आत्मे लीन था. २४

मारी नथी कंई बाह्य वस्तु हुंय तेनो ना कदा;
दृढ मानी, भावो बाह्य तजी, नित मुक्ति माटे स्वस्थ था. २५

अवलोकतो निज आत्मने निज ज्ञान दर्शन शुद्धमां;
एकाग्र मन साधु गमे त्यां निश्चये समभावमां. २६

मुज आत्म शाश्वत एक निर्मळ नित्यज्ञान समभाव छे;
नहि अन्य सर्वे बाह्य शाश्वत कर्म स्वयं सवक्रिय छे. २७

नथी शरीर साथे एक्य तो स्त्री मित्र सुत शानां रहे?
छूटी त्वचा अंगेथी थातां रोम छिद्रो क्यां रहे. २८

संयोग वश संसारी जीव दुःख जन्म वनमां भोगवे;
जे आत्मशांतिने चहे संयोग त्रिविध ते तजे. २९

संसारवन भटकावतां जाळा हठावी विकल्पना;
अवलोकी सहुथी भिन्न आत्मा लीन था परमात्मामां. ३०

निज पूर्व कृत्यनुं कर्मफल शुभ अशुभ आत्मा पामशे;
परदत्त फल आत्मा ग्रहे तो व्यर्थ निज कर्मो थशे. ३१

पोते करेलां कर्मविण नहि कोई कंई पण आपतुं;
को अन्य दे ए बुद्धि छोडी-जीव अनन्य विचार तुं. ३२

जे ध्यावता एकाग्र नित्ये भिन्न सर्वथी आत्मने;
उत्कृष्ट वैभव मुक्तिनो सुनिवास ते जीव पामशे. ३३

एकाग्र मन बत्रीस पद परमात्म तत्त्वे अनुभवे;
ते निश्चये अविनाशी पद श्री मोक्ष लक्ष्मीने वरे. ३४

भक्ति

धन्य धन्य है घडी आज की, जिनधुनि श्रवणपरी।
तत्त्वप्रतीत भई अब मेरे, मिथ्यादृष्टि टरी।टेक।

जड़ तैं भिन्न लखी चिन्मूरत चेतन स्वरस भरी।
अहंकार ममकार बुद्धि पुनि, पर में सब परिहरी।।१।।

पाप-पुण्य विधि बंध अवस्था, भासी अति दुःखभरी।
वीतराग-विज्ञानभवमय, परनति अति विस्तरी।।२।।

चाह दाह विनसी बरसी पुनि, समता मेघ झरी।
बाढी प्रीति निराकुल पद सों, भागचंद हमरी।।३।।

आलोचना पाठ

(श्री जौहरीलालजी कृत)

(दोहा)

वंदों पाँचों परम-गुरु, चौबीसों जिनराज।
करूँ शुद्ध आलोचना, शुद्धिकरन के काज।।१।।

(सखी छन्द)

सुनिये जिन अरज हमारी, हम दोष किये अति भारी।
तिनकी अब निर्वृत्ति काज, तुम सरण लही जिनराज।।२।।
इक बे ते चउ इन्द्री वा, मनरहित सहित जे जीवा।
तिनकी नहिं करुणा धारी, निरदइ ह्वै घात विचारी।।३।।
समरंभ समारंभ आरंभ, मन-वच-तन कीने प्रारंभ।
कृत-कारित-मोदन करिकैं, क्रोधादि चतुष्य धरिकैं।।४।।
शत आठ जु इमि भेदनतैं, अघ कीने परिछेदनतैं।
तिनकी कहूँ कोलों कहानी, तुम जानत केवलज्ञानी।।५।।
विपरीत एकांत विनय के, संशय अज्ञान कुनय के।
वश होय घोर अघ कीने, वचतैं नहिं जाय कहीने।।६।।

कुगुरुन की सेवा कीनी, केवल अदयाकरि भीनी।
या विधि मिथ्यात बढ़ायो, चहुँगति मधि दोष उपायों॥७॥
हिंसा पुनि झूठ जु चोरी, पर-वनितासों दृग जोरी।
आरंभ परिग्रह भीने, पन पाप जु या विधि कीने॥८॥
सपरस रसना घ्रानन को, चखु कान विषय-सेवन को।
बहु करम किये मनमाने, कछु न्याय-अन्याय न जाने॥९॥
फल पंच उदुंबर खाये, मधु मांस मद्य चित चाहे।
नहिं अष्ट मूलगुण धारे, सेये विषयन दुखकारे॥१०॥
दुइबीस अभख जिन गाये, सो भी निस दिन भुंजाये।
कछु भेदाभेद न पायो, ज्यों त्यों करि उदर भरायो॥११॥
अनंतानु जु बंधी जानो, प्रत्याख्यान अप्रत्याख्यानो।
संज्वलन चौकड़ी गुनिये, सब भेद जु षोडश मुनिये॥१२॥
परिहास अरति रति शोक, भय ग्लानि तिवेद संयोग।
पनबीस जु भेद भये इम, इनके वश पाप किये हम॥१३॥
निद्रावश शयन कराया, सुपने मधि दोष लगाया।
फिर जागि विषय-वन धायो, नानाविध विष-फल खायो॥१४॥
किये आहार निहार बिहारा, इनमें नहिं जतन विचारा।
बिन देखा धरा उठाया, बिन शोधा भोजन खाया॥१५॥
तब ही परमाद सतायो, बहुविधि विकलप उपजायो।
कछु सुधि बुधि नाहिं रही है, मिथ्यामति छाय गई है॥१६॥
मरजादा तुम ढिंग लीनी, ताहू में दोष जु कीनी।
भिन भिन अब कैसें कहिये, तुम ज्ञानविषैं सब पइये॥१७॥
हा हा! मैं दुठ अपराधी, त्रस-जीवन-राशि विराधी।
थावर की जतन न कीनी, उर में करुणा नहिं लीनी॥१८॥
पृथ्वी बहु खोद कराई, महलादिक जागां चिनाई।
बिन गाल्यो पुनि जल ढोल्यो, पंखातैं पवन विलोल्यो॥१९॥

हा हा! मैं अदयाचारी, बहु हरितकाय जु विदारी।
तामधि जीवन के खंदा, हम खाये धरि आनंदा ॥२०॥
हा हा! परमाद बसाई, विन देखे अगनि जलाई।
ता मध्य जीव जु आये, ते हू परलोक सिधाये ॥२१॥
बींध्यो अन राति पिसायो, ईंधन बिन सोधि जलायो।
झाड़ू ले जागा बुहारी, चिंवटी आदिक जीव बिदारी ॥२२॥
जल छानि जिवानी कीनी, सो हू पुनि डारि जु दीनी।
नहिं जल-थानक पहुँचाई, किरिया बिन पाप उपाई ॥२३॥
जल-मल मोरिन गिरवायो, कृमि-कुल बहु घात करायो।
नदियन बिच चीर धुवाये, कोसन के जीव मराये ॥२४॥
अन्नादिक शोध कराई, तामधि जु जीव निसराई।
तिनको नहिं जतन करायो, गलियारै धूप डरायो ॥२५॥
पुनि द्रव्य कमावन काजे, बहु आरंभ हिंसा साजे।
किये तिसनावश अघ भारी, करुना नहिं रंच विचारी ॥२६॥
इत्यादिक पाप अनंता, हम कीने श्री भगवंता।
संतति चिरकाल उपाई, वानी तैं कहिय न जाई ॥२७॥
ताकों जु उदय अब आयो, नानाविध मोहि सतायो।
फल भुंजत जिय दुख पावै, वचतैं कैसें कहि जावे ॥२८॥
तुम जानत केवलज्ञानी, दुःख दूर करो शिवथानी।
हम तो तुम शरण लही है, जिन तारन विरद सही ॥२९॥
जो गाँवपती इक होवे, सो भी दुखिया दुख खोवै।
तुम तीन भुवन के स्वामी, दुख मेटहु अंतरजामी ॥३०॥
द्रौपदि को चीर बढ़ायो, सीता प्रति कमल रचायो।
अंजन-से किये अकामी, दुख मेटहु अंतरजामी ॥३१॥
मेरे अवगुन न चितारो, प्रभु अपनों विरद निहारो।
सब दोषरहित करि स्वामी, दुख मेटहु अंतरजामी ॥३२॥

इंद्रादिक पद नहिं चाहूँ, विषयनि में नाहिं लुभाऊँ।
रागादिक दोष हरीजै, परमातम निज-पद दीजै ॥३३॥

(दोहा)

दोषरहित जिनदेवजी, निजपद दीजे मोय।
सब जीवन के सुख बढ़ै, आनंद मंगल होय।३४॥

अनुभव माणिक पारखी, 'जौहरि' आप जिनन्द।
ये ही वर मोहि दीजिये, चरण शरन आनन्द॥३५॥

(इति आलोचना पाठ समाप्त)

निज स्वरूप को परम रस, जामैं भरो अपार।
बन्दूँ परमानन्दमय, समयसार अविकार॥

*

लघु प्रतिक्रमण

ॐ नमः सिद्धेभ्यः ।

चिदानन्देकरूपाय, जिनाय परमात्मने।

परमात्म प्रकाशाय, नित्यं सिद्धात्मने नमः॥

ईतर निगोद सात लाख, नित्य निगोद सात लाख, पृथ्वी काय सात लाख, अपकाय सात लाख, तेजकाय सात लाख, वायु काय सात लाख, वनस्पति काय दस लाख, बे ईन्द्रिय दोय लाख, त्रि इन्द्रिय दोय लाख, चौ इंद्रिय दोय लाख, नरक गति चार लाख, देवगति चार लाख, तिर्यंचगति चार लाख, मनुष्य गति चौदह लाख एवं काये चौरासी लाख, माता पक्षे पिता पक्षे एकसौ साठे निन्यानवे लक्ष कुल कोटी लक्ष, सूक्ष्म बादर पर्याप्त अपर्याप्त लब्ध पर्याप्त, कोई जीवनी विराधना करी होय, राग द्वेष करीने पाप लाग्यो होय तस्स मिच्छामि दुक्कडं. १.

पंच मिथ्यात्व, बारह अविरति, पंदर योग, पच्चीस कषाय;
एवं सत्तावन आस्रव करी पाप लाग्यो होय (आंचली)
तस्स मिच्छामि दुक्कडं. २
तीन दंड, तीन शल्य, तन गर्व करीने पाप करवा लाग्यो होय
तस्स मिच्छामि दुक्कडं. ३
राज कथा, चोर कथा, स्त्री कथा, भोजन कथा करीने पाप लाग्यो होय
तस्स मिच्छामि दुक्कडं. ४
चार आर्त ध्यान, चार रौद्र ध्यान करीने पाप लाग्यो होय
तस्स मिच्छामि दुक्कडं. ५
आचार अनाचार करीने पाप लाग्यो होय तस्स मिच्छामि दुक्कडं. ६
पंच मिथ्यात्व करीने पाप लाग्यो होय तस्स मिच्छामि दुक्कडं. ७
पंच आस्रव करीने पाप लाग्यो होय तस्स मिच्छामि दुक्कडं. ८
पंच थावर, छठ्ठा, त्रस जीवनी विराधना करीने पाप लाग्यो होय
तस्स मिच्छामि दुक्कडं. ९
सप्त व्यसन सेवे करीने पाप लाग्युं होय तस्स मिच्छामि दुक्कडं. १०
सप्त भय करीने पाप लाग्युं होय तस्स मिच्छामि दुक्कडं. ११
अष्ट मूलगुण व्रतना अतिचार करीने पाप लाग्युं होय
तस्स मिच्छामि दुक्कडं. १२
दश प्रकारना बहिरंग परिग्रह करीने पाप लाग्युं होय
तस्स मिच्छामि दुक्कडं. १३
चौद प्रकारना अंतरंग परिग्रह करीने पाप लाग्युं होय
तस्स मिच्छामि दुक्कडं. १४

पंदर प्रमाद करीने पाप लाग्युं होय तस्स मिच्छामि दुक्कडं. १५

पच्चीस कषाय करीने पाप लाग्युं होय तस्स मिच्छामि दुक्कडं. १६

पंच अतिचार करीने पाप लाग्युं होय तस्स मिच्छामि दुक्कडं. १७

मारे समक्ष नहीं करीने पाप लाग्युं होय तस्स मिच्छामि दुक्कडं. १८

रौद्र परिणामोना दुर्चिंतवन करीने पाप लाग्युं होय
तस्स मिच्छामि दुक्कडं. १९

हिंडता, हालता, बोलता, चालता, सूता, बेसता, मार्गने विषे जाणे, अजाणे, दीठे णदीठे कंई पाप लाग्युं होय तस्स मिच्छामि दुक्कडं. २०

सूक्ष्म बादर कोई जीव चंपायो होय, भय पाम्यो होय, त्रास पाम्यो होय, वेदना पाम्यो होय, छेदना पाम्यो होय तस्स मिच्छामि दुक्कडं. २१

यति सर्वे मुनि आर्जिका श्रावक श्राविकानी सर्वे प्रकारे निंदा करी होय, करावी होय, सांभळी होय, संभळावी होय, पराई निंदा करीने पाप लाग्युं होय, तस्स मिच्छामि दुक्कडं. २२

देव गुरु शास्त्रनो अविनय थयो होय, तस्स मिच्छामि दुक्कडं. २३

निर्माल्य द्रव्यनुं पाप लाग्युं होय, तस्स मिच्छामि दुक्कडं. २४

बत्रीस प्रकारना सामायिकना दोष लाग्या होय, तस्स मिच्छामि दुक्कडं. २५

पंच इन्द्रिय तथा छठ्ठा विषय मन करीने पाप लाग्युं होय,
तस्स मिच्छामि दुक्कडं. २६

जाणे अणजाणे कंई पाप लाग्युं होय, तस्स मिच्छामि दुक्कडं. २७

मारे कोई साथे राग नहीं, द्वेष नहीं, वेर नहीं मान नहीं, माया नहीं, मारे समस्त जीव साथे उत्तम क्षमा, कर्म क्षयनता, समाधिमरण, चारों गतिका दुःख निवारण हो.

(इति लघु सामायिक प्रतिक्रमण)

✻

बारह भावना

(पं. भूधरदासजी कृत)

राजा राणा छत्रपति, हाथिन के असवार।
मरना सबको एक दिन, अपनी-अपनी बार।।१।।

दल बल देवी देवता, मात-पिता परिवार।
मरती बिरियाँ जीव को, कोई न राखन हार।।२।।

दाम बिना निर्धन दुःखी, तृष्णावश धनवान।
कहूँ न सुख संसार में, सब जग देख्यो छान।।३।।

आप अकेलो अवतरे, मरे अकेलो होय।
यूँ कबहूँ इस जीव को, साथी सगा न कोय।।४।।

जहाँ देह अपनी नहीं, तहाँ न अपनों कोय।
घर संपति पर प्रकट ये, पर हैं परिजन लोय।।५।।

दिपै चाम चादर मढ़ी, हाड़ पींजरा देह।
भीतर या सम जगत में, और नहीं घिन गेह।।६।।

मोह-नींद के जोर, जगवासी घूमें सदा।
कर्मचोर चहूँ ओर, सरवस लूटें सुध नहीं।।७।।

सत् गुरु देय जगाय, मोह-नींद जब उपशमैं।
तब कछु बनै उपाय, कर्म-चोर आवत रुकैं।।८।।

ज्ञान-दीप तप तेल भर, घर शोधै भ्रम छोर।
या विधि बिन निकसैं नहीं, बैठे पूरब चोर।।९।।

पंच महाव्रत संचरन, समिति पंच परकार।
प्रबल पंच इन्द्रिय -विजय, धार निर्जरा सार।।१०।।

चौदह राजु उतंग नभ, लोक पुरुष संठान।
तामें जीव अनादि तैं, भरमत हैं बिन ज्ञान।।११।।

धन कन कंचन राजसुख, सबहिं सुलभकर जान।
दुर्लभ है संसार में, एक जथारथ ज्ञान॥१२॥

जाँचे सुर तरु देय सुख, चिन्तत चिन्ता रैन।
बिन जाँचै बिन चिन्तये, धर्म सकल सुख दैन॥१३॥

*

बारह भावना

(पं. जयचन्दजी छाबड़ा कृत)

द्रव्य रूप करि सर्व थिर, परजय थिर है कौन।
द्रव्यदृष्टि आपा लखो, परजय नय करि॥१॥

शुद्धातम अरु पंच गुरु, जग में सरनौ दोय।
मोह-उदय जिय के वृथा, आन कल्पना होय॥२॥

पर द्रव्यन तैं प्रीति जो, है संसार अबोध।
ताको फल गति चार में, भ्रमण कह्यो श्रुत शोध॥३॥

परमारथ तैं आत्मा, एक रूप ही जोय।
मोह निमित्त विकल्प घने, तिन नासे शिव होय॥४॥

अपने-अपने सत्त्व कूँ, सर्व वस्तु विलसाय।
ऐसे चितवै जीव तब, परतैं ममत न थाय॥५॥

निर्मल अपनी आत्मा, देह अपावन गेह।
जानि भव्य निज भाव को, यासों तजो सनेह॥६॥

आतम केवल ज्ञानमय, निश्चय-दृष्टि निहार।
सब विभाव परिणाममय, आस्रवभाव विडार॥७॥

निजस्वरूप में लीनता, निश्चय संवर जानि।
समिति गुप्ति संजम धरम, धरै पाप की हानि॥८॥

संवरमय है आत्मा, पूर्व कर्म झड़ जाय।
निजस्वरूप को पाय कर, लोक शिखर ठहराय॥९॥

लोकस्वरूप विचारि कें, आतम रूप निहारि।
परमारथ व्यवहार गुणि, मिथ्याभाव निवारि ।।१०।।

बोधि आपका भाव है, निश्चय दुर्लभ नाहिं।
भव में प्रापति कठिन है, यह व्यवहार कहाहिं ।।११।।

दर्श-ज्ञानमय चेतना, आतम धर्म बखानि।
दया-क्षमादिक रतनत्रय, यामें गर्भित जानि ।।१२।।

*

समाधि भावना

दिन रात मेरे स्वामी, मैं भावना ये भाऊँ।
जीवन के हर समय में निज आत्मा ही ध्याऊँ।।

करके क्षमा सभी को सबसे क्षमा कराऊँ।
निश्चय क्षमा ग्रहण कर निज आत्मा ही ध्याऊँ।।

त्यागूं सकल परिग्रह मिथ्यात्व और कषाय।
समता का भाव धर कर निज आत्मा ही ध्याऊँ ।।

हो यदि विकल्प तो मैं परमेष्ठी पाँचों ध्याऊँ।
फिर निर्विकल्प होकर निज आत्मा ही ध्याऊँ ।।

वैराग्य ज्ञान की तब अनुपम कला जागी हो।
जड़ देह कर्म मुक्त निज आत्मा ही ध्याऊँ ।।

जीने की न हो इच्छा, मरने की हो न वांछा।
बस ज्ञाता दृष्टा रहकर निज आत्मा ही ध्याऊँ ।।

कर दोष का आलोचन प्रतिक्रमण प्रत्याख्यान।
निर्दोष होय सब विधि निज आत्मा ही ध्याऊँ ।।

चैतन्य मेरा प्राण चैतन्य मम समाधि।
चिद्लीन कर्म मुक्त, निज आत्मा ही ध्याऊँ ।।

हो ज्ञान चेतना बस, चेतुं न कर्म, कर्मफल।
उपसर्ग केवलीवत् निज आत्मा ही ध्याऊँ॥

✻

भक्ति

निरखत जिनचंद्र-वदन स्व-पद सुरुचि आयी।
प्रकटी निज आन की पिछान ज्ञान भान की।
कला उद्योत होत काम जामनी पलाई॥निरखत.॥

शाश्वत आनंद स्वाद पायो विनस्यो विषाद।
आन में अनिष्ट-इष्ट कल्पना नसाई॥निरखत.॥

साधी निज साध की समाधि मोह-व्याधि की।
उपाधि को विराधि कै आराधना सुहाई॥निरखत.॥

धन दिन छिन आज सुगुनि चिंतै जिनराज अबैं।
सब सुधरो काज 'दौल' अचल रिद्धि पाई॥निरखत.॥

✻

समाधिमरण भाषा

(पं. सूरचन्दजी कृत)

(नरेन्द्र छन्द)

वन्दौ श्री अरहंत परमगुरु, जो सबको सुखदाई।
इस जग में दुःख जो मैं भुगते, सो तुम जानो राई।।
अब मैं अरज करूँ प्रभु तुमसे, कर समाधि उर माहीं।
अन्त समय में यह वर माँगूँ, सो दीजे जग राई।।१।।

भव-भव में तन धार नये मैं, भव-भव शुभ संग पायो।
भव-भव में नृप रिद्धि लई मैं, मात-पिता सुत थायो।।
भव-भव में तन पुरुष-तनों धर, नारी हूँ तन लीनों।
भव-भव में मैं भयो नपुंसक, आतमगुण नहिं चीनों।।२।।

भव-भव में सुरपदवी पाई, ताके सुख अति भोगे।
भव-भव में गति नरकतनी धर, दुःख पाये विधि योगे।।
भव-भव में तिर्यंच योनि धर, पायो दुख अति भारी।
भव-भव में साधर्मी जन को, संग मिल्यो हितकारी।।३।।

भव-भव में जिनपूजन कीनी, दान सुपात्रहिं दीनो।
भव-भव में मैं समवसरण में, देख्यो जिनगुण भीनो।।
एती वस्तु मिली भव-भव में, सम्यक्-गुण नहिं पायो।
ना समाधियुत मरण कियो मैं, तातैं जग भरमायो।।४।।

काल अनादि भयो जग भ्रमतैं, सदा कुमरणहिं कीनों।
एक बार हूँ सम्यक्-युत मैं, निज आतम नहिं चीनों।।
जो निज-पर को ज्ञान होय तो, मरण समय दुःख काँई।
देह विनासी मैं निजभासी, शांति स्वरूप सदाई।।५।।

विषय-कषायन के वश होकर, देह आपनो जान्यो।
कर मिथ्या सरधान हिये बिच, आतम नाहिं पिछान्यो।।

यों कलेश हिय धार मरणकर, चारों गति भरमायो।
सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरन ये, हिरदे में नहिं लायो।।६।।

अब यह अरज करूँ प्रभु सुनिये, मरण समय यह माँगो।
रोग जनित पीड़ा मत होवो, अरु कषाय मत जागो।।
ये मुझ मरणसमय दुःखदाता, इन हर साता कीजै।
जो समाधियुत मरण होय मुझ, अरु मिथ्यागद छीजे।।७।।

यह तन सात कुधातमई है, देखत ही घिन आवै।
चर्म लपेटी ऊपर सोहै, भीतर विष्टा पावै।।
अतिदुर्गन्ध अपावनसों यह, मूरख प्रीति बढ़ावै।
देह विनासी, जिय अविनासी, नित्यस्वरूप कहावै।।८।।

यह तन जीर्ण कुटी-सम आतम, यातैं प्रीति न कीजे।
नूतन महल मिलै जब भाई, तब यामैं क्या छीजै।।
मृत्यु होन से हानि कौन है, याको भय मत लावो।
समता से जो देह तजोगे, तो शुभ तन तुम पावो।।९।।

मृत्यु मित्र उपकारी तेरो, इस अवसर के माहीं।
जीरन तन से देत नयो यह, या सम साहू नाहीं।।
या सेती इस मृत्यु समय पर, उत्सव अति ही कीजे।
क्लेशभाव को त्याग सयाने, समताभाव धरीजै।।१०।।

जो तुम पूरब पुण्य किये हैं, तिनको फल सुखदाई।
मृत्यु मित्र बिन कौन दिखावै, स्वर्ग सम्पदा भाई।।
राग-द्वेष को छोड़ सयाने, सात व्यसन दुःखदाई।
अन्त समय में समता धारो, परभव पन्थ सहाई।।११।।

कर्म महादुठ बैरी मेरो, तासेती दुःख पावै।
तन पिंजर में बन्द कियो मोहि, यासों कौन छुड़ावै।।
भूख तृषा दुःख आदि अनेकन, इस ही तन में गाढ़े।
मृत्युराज अब आय दयाकर, तनपिंजरसों काढ़ै।।१२।।

नाना वस्त्राभूषण मैंने, इस तन को पहराये।
गन्ध सुगन्धित अतर लगाये, षट्-रस असन कराये।
रात दिना मैं दास होयकर, सेव करी तन केरी।
सो तन मेरे काम न आयो, भूल रह्यो निधि मेरी।।१३।।
मृत्युराय को शरन पाय तन, नूतन ऐसो पाऊँ।
जामें सम्यकरतन तीन लहि, आठों कर्म खपाऊँ।।
देखो तन-सम और कृतघ्नी, नाहिं सु या जगमाहीं।
मृत्यु समय में ये ही परिजन, सब ही हैं दुखदाई।।१४।।
यह सब मोह बढ़ावन हारे, जिय को दुर्गतिदाता।
इनसे ममत निवारो जियरा, जो चाहो सुख साता।।
मृत्यु कल्पद्रुम पाय सयाने, माँगो इच्छा जेती।
समता धरकर मृत्यु करो तो, पावों संपत्ति तेती।।१५।।
चौ आराधन सहित प्राण तज, तौ ये पदवी पावो।
हरि प्रतिहरि चक्री तीर्थेश्वर, स्वर्ग मुक्ति में जावो।।
मृत्यु कल्पद्रुम-सम नहिं दाता, तीनों लोक मँझारे।
ताको पाय कलेश करो मत, जन्म जवाहर हारे।।१६।।
इस तन में क्या राचै जियरा, दिन-दिन जीरन हो है।
तेजकांति बल नित्य घटत है, या सम अथिर सु को है।।
पाँचों इन्द्री शिथिल भई अब, स्वास शुद्ध नहिं आवै।
ता पर भी ममता नहिं छोड़े, समता उर नहिं लावै।।१७।।
मृत्युराज उपकारी जिय को, तनसों तोहि छुड़ावै।
नातर या तन बन्दीगृह में, पर्यो-पर्यो बिललावै।।
पुद्गल के परमाणु मिलकर, पिण्डरूप तन भासी।
याही मूरत मैं अमूरती, ज्ञान ज्योति गुणखासी।।१८।।
रोग-शोक आदिक जो वेदन, ते सब पुद्गल लारै।
मैं तो चेतन व्याधि बिना नित, हैं सो भाव हमारे।।
या तनसों इस क्षेत्र सम्बन्धी, कारण आन बन्यो है।
खान-पान दे याको पोष्यो, अब सम-भाव ठन्यो है।।१९।।

मिथ्यादर्शन आत्मज्ञान बिन, यह तन अपनो जान्यो।
इन्द्रीभोग गिने सुख मैंने, आपो नाहिं पिछान्यो॥
तन विनशनतैं नाश जानि निज, यह अयान दुःखदाई।
कुटुम्ब आदि को अपनों जान्यो, भूल अनादी छाई॥२०॥
अब निज भेद जथारथ समझयो, मैं हूँ ज्योतिस्वरूपी।
उपजैं विनसै सो यह पुद्गल, जान्यो याको रूपी॥
इष्टऽनिष्ट जेते सुख दुख हैं, सो सब पुद्गल सागै।
मैं जब अपनों रूप विचारों, तब वे सब दुख भागैं॥२१॥
बिन समता तनऽनंत धरे मैं, तिन में ये दुख पायो।
शस्त्रघाततैंऽनन्त बार मर, नाना योनि भ्रमायो॥
बार अनन्तहि अग्नि माहिं जर, मूवो सुमति न लायो।
सिंह व्याघ्र अहिऽनन्त बार मुझ, नाना दुःख दिखायो॥२२॥
बिन समाधि ये दुःख लहे मैं, अब उर समता आई।
मृत्युराज को भय नहिं मानो, देवै तन सुखदाई॥
यातैं जब लग मृत्यु न आवै, तब लग जप तप कीजै।
जप तप बिन इस जग के माहीं, कोई कभी ना सीजै॥२३॥
स्वर्ग सम्पदा तपसों पावै, तपसों कर्म नसावै।
तप ही सों शिवकामिनिपति है, यासों तप चित लावै॥
अब मैं जानी समता बिन मुझ, कोऊ नाहिं सहाई।
मात-पिता सुत बांधव तिरिया, ये सब हैं दुःखदाई॥२४॥
मृत्यु समय में मोह करें ये, तातैं आरत हो है।
औरततैं गति नीची पावै, यों लख मोह तज्यो है॥
और परीग्रह जेते जग में, तिनसों प्रीत न कीजे।
परभव में ये संग न चालैं, नाहक आरत कीजे॥२५॥
जे-जे वस्तु लखत हैं ते पर, तिनसों नेह निवारो।
परगति में ये साथ न चालैं, ऐसो भाव विचारों॥
जो परभव में संग चलें तुझ, तिनसों प्रीत सु कीजै।
पंच पाप तज समता धारो, दान चार विध दीजै॥२६॥

दशलक्षणमय धर्म धरो उर, अनुकम्पा उर लावो।
षोडशकारण नित्य विचारो, द्वादश भावन भावों॥
चारों परवी प्रोषध कीजै, अशन रात को त्यागो।
समता धर दुरभाव निवारो, संयमसों अनुरागो॥२७॥
अन्त समय में यह शुभ भावहि, होवें आनि सहाई।
स्वर्ग मोक्ष फल तोहि दिखावें, ऋद्धि देहिं अधिकाई॥
खोटे भाव सकल जिय त्यागो, उर में समता लाकें।
जा सेती गति चार दूर कर, वसहु मोक्षपुर जाकें॥२८॥
मन थिरता करकै तुम चिंतो, चौ आराधन भाई।
ये ही तोकों सुख की दाता, और हितू कोउ नाहीं॥
आगे बहु मुनिराज भये हैं, तिन गहि थिरता भारी।
बहु उपसर्ग सहे शुभ पावन, आराधन उरधारी॥२९॥
तिनमें कछु इक नाम कहूँ मैं, सो सुन जिय चित लाकै।
भावसहित अनुमोदे तासों, दुर्गति होय न ताकै॥
अरु समता निज उर में आवै, भाव अधीरज जावै।
यों निश-दिन जो उन मुनिवर को, ध्यान हिये विचलावै॥३०॥
धन्य-धन्य सुकुमाल महामुनि, कैसे धीरज धारी।
एक श्यालनी जुग बच्चाजुत, पाँव भख्यो दुःखकारी॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी॥३१॥
धन्य-धन्य जु सुकौशल स्वामी, व्याघ्री ने तन खायो।
तो भी श्रीमुनि नेक डिगे नहीं, आतम सों हित लायो॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी॥३२॥
देखो गजमुनि के शिर ऊपर, विप्र अगिनि बहु बारी।
शीश जलै जिम लकड़ी तिनको, तौ भी नाहिं चिगारी॥

यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी।।३३।।
सनतकुमार मुनी के तन में, कुष्ठ वेदना व्यापी।
छिनन-भिन् न तन तासों हूवो, तब चिन्त्यो गुण आपी।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है ? मृत्यु महोत्सव भारी।।३४।।
श्रेणिक सुत गंगा में डूब्यो, तब जिननाम चितार्‌यो।
धर संलेखना परिग्रह छोड्यो, शुद्ध भाव उर धारयो।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है ? मृत्यु महोत्सव भारी।।३५।।
समंतभद्र मुनिवर के तन में, क्षुधा वेदना आई।
तो दुःख में मुनि नेक न डिगियो, चिन्त्यौ निजगुण भाई।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है ? मृत्यु महोत्सव भारी।।३६।।
ललित घटादिक तीस दोय मुनि, कौशांबी तट जानो।
नद्दी में मुनि बहकर मूवे, सो दुख उन नहिं मानो।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है ? मृत्यु महोत्सव भारी।।३७।।
धर्मघोष मुनि चम्पानगरी, बाह्य ध्यान धर ठाड़ो।
एक मास की कर मर्यादा, तृषा दुःख सह गाढ़ो।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है ? मृत्यु महोत्सव भारी।।३८।।
श्रीदत मुनि को पूर्वजन्म को, बैरी देव सु आके।
विक्रिय कर दुख शीततनो सो, सह्यो साध मन लाके।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है ? मृत्यु महोत्सव भारी।।३९।।

वृषभसेन मुनि उष्ण शिला पर, ध्यान धर्यो मनलाई।
सूर्यघाम अरु उष्ण पवन की, वेदन सहि अधिकाई।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी।।४०।।
अभयघोष मुनि काकन्दीपुर, महावेदना पाई।
वैरी चण्ड ने सब तन छेद्यो, दुःख दीनो अधिकाई।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी।।४१।।
विद्युतचर ने बहु दुख पायो, तो भी धीर न त्यागी।
शुभभावनसों प्राण तजे निज, धन्य और बड़भागी।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी।।४२।।
पुत्र चिलाती नामा मुनि को, बैरी ने तन घाता।
मोटे-मोटे कीट पड़े तन, ता पर निज गुण राता।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी।।४३।।
दण्डकनामा मुनि की देही, बाणन कर आरि भेदी।
ता पर नेक डिगे नहिं वे मुनि, कर्म महारिपु छेदी।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी।।४४।।
अभिनन्दन मुनि आदि पाँच सौ, घानी पेलि जु मारे।
तो भी श्रीमुनि समताधारी, पूरबकर्म विचारे।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी।।४५।।
चाणक मुनि गौघर के माहीं, मून्द अगिनि परजाल्यो।
श्रीगुरु उर समभाव धारकै, अपनों रूप सम्हाल्यो।

यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी।।४६।।
सात शतक मुनिवर दुःख पायो, हथनापुर में जानो।
बलि ब्राह्मणकृत घोर उपद्रव, सो मुनिवर नहिं मानो।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी।।४७।।
लोहमयी आभूषण गढ़के, ताते कर पहराये।
पाँचों पांडव मुनि के तन में, तौ भी नाहिं चिगाये।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी।।४८।।
और अनेक भये इस जग में, समता-रस के स्वादी।
वे ही हमको हों सुखदाता, हरि हैं टेव प्रमादी।।
सम्यग्दर्शन ज्ञान चरन तप, ये आराधन चारों।
ये ही मोकों सुख के दाता, इन्हें सदा उर धारों।।४९।।
यों समाधि उरमाहीं लावो, अपनों हित जो चाहो।
तज ममता अरु आठों मद को, ज्योतिस्वरूपी ध्यावो।।
जो कोई नित करत पयानो, ग्रामांतर के काजै।
सो भी शकुन विचारै नीके, शुभ के कारण साजै।।५०।।
मात-पितादिक सर्व कुटुम्ब सब, नीके शकुन बनावै।
हल्दी धनिया पुंगी अक्षत, दूब दही फल लावै।।
एक ग्राम जाने के कारण, करें शुभाशुभ सारे।
जब परगति को करत पयानो, तब नहिं सोचो प्यारे।।५१।।
सब कुटुम जब रोवन लागै, तोहि रुलावै सारे।
ये अपशकुन कौर सुन तोकों, तू यों क्यों न विचारै।।
अब परगति को चालत बिरियाँ, धर्मध्यान उर आनो।
चारों आराधन आराधो, मोहतनों दुख हानो।।५२।।

होय निःशल्य तजो सब दुविधा, आतमराम सुध्यावो।
जब परगति को करहु पयानो, परम तत्त्व उर लावो॥
मोहजाल को काट पियारे, अपनों रूप विचारो।
मृत्यु मित्र उपकारी तेरो, यों निश्चय उर धारो॥५३॥

(दोहा)

मृत्यु महोत्सव पाठ को, पढ़ो सुनो बुधिवान।
सरधा धर नित सुख लहो, "सूरचन्द" शिवथान॥
पंच उभय नव एक नभ, सम्वत् सो सुखदाय।
आश्विन श्यामा सप्तमी, कह्यो पाठ मन लाय॥५४॥

*

भक्ति

म्हारा परम दिगंबर मुनिवर आया सब मिल दर्शन कर लो।
बार आनो मुश्किल है, भाव भक्ति उर भर लो, हां ॥टेक॥

हाथ कमंडलु काठ को, पीछी पंख मयूर।
विषय वास आरंभ सब, परिग्रह से हैं दूर।
श्री वीतरागी विज्ञानी का कोई ज्ञान हिया विच धर लो ॥हां..॥

एक बार कर पात्र में अंतराय अघ टाल।
अल्प-अशन लें हो खडे, नीरस-सरस सम्हाल।
ऐसे मुनि मारग उत्तम धारी, तिनके चरण पकड लो ॥हां..॥

चार गति दुःख से डरी, आत्म स्वरूप को ध्याय।
पुण्य पाप से दूर, ज्ञान गुफा में आय॥
'सौभाग्य' तरण तारण मुनिवर का तारण चरण पकड लो ॥हां..॥

*

श्री सिद्धचक्र माहात्म्य

श्री सिद्धचक्र गुणगान करो मन आन भाव से प्राणी,
कर सिद्धों की अगवानी ।।टेक ।।
सिद्धों का सुमरन करने से, उनके अनुशीलन चिन्तन से,
प्रकटै शुद्धात्मप्रकाश, महा सुखदानी ऽऽऽ
पाओगे शिव रजधानी ।। सिद्धचक्र. ।।१ ।।
श्रीपाल तत्त्वश्रद्धानी थे, वे स्व-पर भेदविज्ञानी थे,
निज-देह-नेह को त्याग, भक्ति उर आनी ऽऽऽ
हो गई पाप की हानि ।।श्री सिद्धचक्र. ।।२।।
मैना भी आतमज्ञानी थी, जिनशासन की श्रद्धानी थी,
अशुभभाव से बचने को, जिनवर की पूजन ठानी ऽऽऽ
कर जिनवर की अगवानी ।।श्री सिद्धचक्र. ।।३।।
भव-भोग छोड़ योगीश भये, श्रीपाल ध्यान धरि मोक्ष गये,
दूजे भव मैना पावे शिव रजधानी ऽऽऽ
केवल रह गयी कहानी ।।श्री सिद्धचक्र. ।।४।।
प्रभु दर्शन-अर्चन-वन्दन से, मिटता है मोह-तिमिर मन से,
निज शुद्ध-स्वरूप समझने का, अवसर मिलता भवि प्राणी ऽऽऽ
पाते निज निधि विसरानी ।।श्री सिद्धचक्र. ।।५।।
भक्ति से उर हर्षाया है, उत्सव युत पाठ रचाया है,
जब हरष हिये न समाया, तो फिर नृत्य करन की ठानी ऽऽऽ
जिनवर भक्ति सुखदानी ।।श्री सिद्धचक्र. ।।६।।
सब सिद्धचक्र का जाप जपो, उन ही का मन में ध्यान धरो,
नहिं रहे पाप की मन में नाम निशानी ऽऽऽ
बन जाओ शिवपथ गामी ।।श्री सिद्धचक्र. ।।७।।
जो भक्ति करे मन-वच-तन से, वह छूट जाये भव-बंधन से,
भविजन ! भज लो भगवान, भगति उर आनी ऽऽऽ
मिट जैहै दुःखद कहानी ।।श्री सिद्धचक्र. ।।८।।

अमूल्य तत्त्व विचार

(श्री युगलजी कृत)

(हरिगीतिका)

बहु पुण्य-पुंज प्रसंग से शुभ देह मानव का मिला।
तो भी अरे! भव चक्र का, फेरा न एक कभी टला॥१॥

सुख-प्राप्ति हेतु प्रयत्न करते, सुक्ख जाता दूर है।
तू क्यों भयंकर भाव-मरण, प्रवाह में चकचूर है॥२॥

लक्ष्मी बढ़ी अधिकार भी, पर बढ़ गया क्या बोलिये।
परिवार और कुटुम्ब है क्या? वृद्धिनय पर तोलिये॥३॥

संसार का बढ़ना अरे! नर देह की यह हार है।
नहिं एक क्षण तुझको अरे! इसका विवेक विचार है॥४॥

निर्दोष सुख निर्दोष आनन्द, लो जहाँ भी प्राप्त हो।
यह दिव्य अन्ततत्त्व जिससे, बन्धनों से मुक्त हो॥५॥

पर वस्तु में मूर्छित न हो, इसकी रहे मुझको दया।
वह सुख सदा ही त्याज्य रे! पश्चात् जिसके दुःख भरा॥६॥

मैं कौन हूँ? आया कहाँ से? और मेरा रूप क्या?
सम्बन्ध दुखमय कौन है? स्वीकृत करूँ परिहार क्या॥७॥

इसका विचार विवेकपूर्वक, शान्त होकर कीजिये।
तो सर्व आत्मिकज्ञान के, सिद्धान्त का रस पीजिये॥८॥

किसका वचन उस तत्त्व की, उपलब्धि में शिवभूत है।
निर्दोष नर का वचन रे! वह स्वानुभूति प्रसूत है॥९॥

तारो अरे! तारो निजात्मा, शीघ्र अनुभव कीजिये।
सर्वात्म में समदृष्टि दो, यह वच हृदय लख लीजिये॥१०॥

एक देखिये, जानिये, रमि रहिये इक ठौर।
समल, विनम विलचारिये, यही सिद्धि नहीं और॥

महावीराष्टक स्तोत्र

(कविवर भागचन्दजी कृत)

(शिखरिणी)

यदीये चैतन्ये मुकुर इव भावाश्चिदचिताः,
समं भान्ति ध्रौव्य-व्यय-जनि लसन्तो ऽ न्तरहिताः।
जगत्साक्षीमार्ग-प्रकटन-परो भानुरिव यो,
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे (नः) ॥१॥
अताम्रं यच्चक्षुः कमल -युगलं स्पन्द-रहितम्,
जनान् कोपापायं प्रकटयति वाभ्यन्तरमपि।
स्फुटं मूर्तियस्य प्रशमितमयी वातिविमला,
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे (नः) ॥२॥
नमन्नाकेन्द्राली मुकुट-मणि-भा-जाल-जटिलं,
लसत्-पादाम्भोज-द्वयमिह यदीयं तनु भूताम्।
भव ज्वाला-शान्त्वै प्रभवति जलं वा स्मृतमपि,
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे (नः) ॥३॥
यदर्चा -भावेन प्रमुदित-मना दर्दुर इह,
क्षणादासीत् -स्वर्गी गुण-गण-समृद्धः सुखनिधिः।
लभंते सद्-भक्ताः शिव-सुख-समाजं किमु तदा,
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे (नः) ॥४॥
कनत्-स्वर्णाभासोऽप्यपगत-तनुर्ज्ञान-निवहो,
विचित्रात्माप्येको नृपतिवरसिद्धार्थ-तनयः।
अजन्मापि श्रीमान् विगत-भवरागोऽद्भुत-गतिः,
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे (नः) ॥५॥
यदीया वाग्गंगा विविध-नय-कल्लोल-विमला,
वृहज्ज्ञानांभोभिर्जगति जनतां या स्नपयति।
इदानीमप्येषा बुध-जन-मरालैः परिचिता,
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे (नः) ॥६॥

अनिवरिद्रेकस्त्रिभुवन-जयी काम-सुभटः,
कुमारावस्थायामपि निजबलाधेन विजितः।
स्फुरन्नित्यानन्द-प्रशम-पद-राज्याय स जिनः,
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे (नः) ।।७।।
महा-मोहातंक-प्रशमन-परा-कस्मिन्भिषग्,
निरापेक्षो बंधुर्विदित-महिमा मंगलकरः।
शरण्यः साधूनां भव-भय-भूतामुत्तम-गुणो,
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे (नः) ।।८।।

(अनुष्टुप)

महावीराष्टकं स्तोत्र भक्त्या भागेन्दुना कृतम्।
यःपठेच्छृणुयाच्चापि स याति परमां गतिम् ।।

*

भक्ति खण्ड

देवभक्ति

(१)

एक तुम्हीं आधार हो जग में, अय मेरे भगवान।
कि तुम-सा और नहीं बलवान।।
सँभल न पाया गोते खाया, तुम बिन हो हैरान।
कि तुम-सा और नहीं बलवान।।टेक।।

आया समय बड़ा सुखकारी, आतम-बोध कला विस्तारी।
मैं चेतन, तन वस्तु न्यारी, स्वयं चराचर झलकी सारी।।
निज अन्तर में ज्योति ज्ञान की अक्षयनिधि महान।।
कि तुम-सा और नहीं बलवान।।१।।

दुनिया में इक शरण जिनंदा, पाप-पुण्य का बुरा ये फंदा।
मैं शिवभूप रूप सुखकंदा, ज्ञाता-दृष्टा तुम-सा बंदा।।

मुझ कारज के कारण तुम हो, और नहीं मतिमान।।
कि तुम-सा और नहीं बलवान।।२।।

सहज स्वभाव भाव दरशाऊँ, पर परिणति से चित्त हटाऊँ।
पुनि-पुनि जग में जन्म न पाऊँ, सिद्धसमान स्वयं बन जाऊँग।।
चिदानन्द चैतन्य प्रभु का है 'सौभाग्य' प्रधान।।
कि तुम-सा और नहीं बलवान।।३।।

(२)

तिहारे ध्यान की मूरत, अजब छवि को दिखाती है।
विषय की वासना तज कर, निजातम लौ लगाती।।टेक।।

तेरे दर्शन से हे स्वामी! लखा है रूप मैं तेरा।
तजूँ कब राग तन-धन का, ये सब मेरे विजाती हैं।।१।।

जगत के देव सब देखे, कोई रागी कोई द्वेषी।
किसी के हाथ आयुध है, किसी को नार भाती है।।२।।

जगत के देव हठग्राही, कुनय के पक्षपाती हैं।
तू ही सुनय का है वेत्ता, वचन तेरे अघाती।।३।।

मुझे कुछ चाह नहीं जग की, यही है चाह स्वामी जी।
जपूँ तुम नाम की माला, जो मेरे काम आती है।।४।।

तुम्हारी छवि निरख स्वामी, निजातम लौ लगी मेरे।
यही लौ पार कर देगी, जो भक्तों को सुहाती है।।५।।

(३)

मेरे मन-मन्दिर में आन, पधारो महावीर भगवान।।टेक।।

भगवन तुम आनन्द सरोवर, रूप तुम्हारा महा मनोहर।
निशि-दिन रहे तुम्हारा ध्यान, पधारो महावीर भगवान।।१।।

सुर किन्नर गणधर गुण गाते, योगी तेरा ध्यान लगाते।
गाते सब तेरा यशगान, पधारो महावीर भगवान।।२।।

जो तेरी शरणागत आया, तूने उसको पार लगाया।
तुम हो दयानिधि भगवान, पधारो महावीर भगवान ।।३।।

भगत जनों के कष्ट निवारें, आप तरें हमको भी तरें।
कीजे हमको आप समान, पधारो महावीर भगवान ।।४।।

आये हैं हम शरण तिहारी, भक्ति हो स्वीकार हमारी।
तुम हो करुणा दयानिधान, पधारो महावीर भगवान ।।५।।

रोम-रोम पर तेज तुम्हारा, भू-मण्डल तुमसे उजियारा।
रवि-शशि तुम से ज्योतिर्मान, पधारो महावीर भगवान ।।६।।

✻

(४)

निरखो अंग-अंग जिनवर के, जिनसे झलके शान्ति अपार ।।टेक।।

चरण-कमल जिनवर कहें, घूमा सब संसार।
पर क्षणभंगुर जगत में, निज आत्मतत्त्व ही सार।।
यातैं पद्मासन विराजे जिनवर, झलके शान्ति अपार ।।१।।

हस्त-युगल जिनवर कहें, पर का कर्ता होय।
ऐसी मिथ्याबुद्धि से ही, भ्रमण चतुरगति होय।।
यातैं पद्मासन विराजे जिनवर, झलके शान्ति अपार ।।२।।

लोचन द्वय जिनवर कहें, देखा सब संसार।
पर दुःखमय गति चतुर में, ध्रुव आत्मतत्त्व ही सार।।
यातैं नाशादृष्टि विराजे जिनवर, झलके शान्ति अपार ।।३।।

अन्तर्मुख मुद्रा अहो, आत्मतत्त्व दरशाय।
जिनदर्शन कर निजदर्शन पा, सत्गुरु वचन सुहाय।।
यातैं अन्तर्दृष्टि विराजे जिनवर, झलके शान्ति अपार ।।४।।

✻

(५)

आओ जिन मंदिर में आओ,
श्री जिनवर के दर्शन पाओ।
जिन शासन की महिमा गाओ,
आया-आया रे अवसर आनन्द का।टेक।

हे जिनवर तव शरण में, सेवक आया आज।
शिवपुर पथ दरशाय के, दीजे निज पद राज॥

प्रभु अब शुद्धातम बतलाओ।
चहुँगति दुःख से शीघ्र छुड़ाओ।
दिव्य-ध्वनि अमृत बरसाओ।
आया-प्यासा मैं सेवक आनन्द का॥१॥

जिनवर दर्शन कीजिए, आतम दर्शन होय।
मोहमहातम नाशि के, भ्रमण चतुर्गति खोय॥

शुद्धातम को लक्ष्य बनाओ।
निर्मल भेद-ज्ञान प्रकटाओ।
अब विषयों से चित्त हटाओ।
पाओ-पाओ रे मारग निर्वाण का॥२॥

चिदानन्द चैतन्यमय, शुद्धातम को जान।
निज स्वरूप में लीन हो, पाओ केवलज्ञान॥

नव केवल लब्धि प्रकटाओ।
फिर योगों को नष्ट कराओ।
अविनाशी सिद्ध पद को पाओ।
आया-आया रे अवसर आनन्द का॥३॥

*

(६)

प्रभु हम सब का एक, तू ही है, तारणहारा रे।
तुम को भूला, फिरा वही नर, मारा मारा रे।।टेक।।

बड़ा पुण्य अवसर यह आया, आज तुम्हारा दर्शन पाया।
फूला मन यह हुआ सफल, मेरा जीवन सारा रे।।१।।

भक्ति में अब चित्त लगाया, चेतनमें तब चित ललचाया।
वीतरागी देव! करो अब, भव से पारा रे।।२।।

अब तो मेरी ओर निहारो, भवसमुद्र से नाव उबारो।
"पंकज' का लो हाथ पकड़, मैं पाऊँ किनारा रे।।३।।

जीवन में मैं नाथ को पाऊँ, वीतरागी भाव बढ़ाऊँ।
भक्तिभाव से प्रभु चरणन में, जाऊँ-जाऊँ रे।।४।।

*

(७)

धन्य-धन्य आज घड़ी कैसी सुखकार है।
सिद्धों का दरबार है ये सिद्धों का दरबार है।।टेक।।

खुशियाँ अपार आज हर दिल में छाई हैं।
दर्शन के हेतु देखो जनता अकुलाई है।
चारों ओर देख लो भीड़ बेशुमार है।।१।।

भक्ति से नृत्य-गान कोई है कर रहे।
आतम सुबोध कर पापों से डर।।
पल-पल पुण्य का भरे भण्डार है।।२।।

जय-जय के नाद से गूँजा आकाश है।
छूटेंगे पाप सब निश्चय यह आज है।।
देख लो "सौभाग्य' खुला आज मुक्ति द्वार है।।३।।

(८)

वीर प्रभु के ये बोल, तेरा प्रभु! तुझ ही में डोले।
तुझ ही में डोले, हाँ तुझ ही में डोले।
मन की तू घुंडी को खोल, खोल-खोल-खोल।
तेरा प्रभु तुझ ही में डोले।।टेक।।

क्यों जाता गिरनार, क्यों जाता काशी।
घट ही में है तेरे, घट-घट का वासी।
अन्तर का कोना टटोल, टोल-टोल-टोल।।१।।

चारों कषायों को तूने है पाला।
आतम प्रभु को जो करती है काला।
इनकी तो संगति को छोड़, छोड़-छोड़-छोड़।।२।।

पर में जो ढूँढा न भगवान पाया।
संसार को ही है तूने बढ़ाया।
देखो निजातम की ओर, ओर-ओर-ओर।।३।।

मस्तों की दुनिया में तू मस्त हो जा।
आतम के रंग में ऐसा तू रँग जा।
आतम को आतम में घोल-घोल-घोल।।४।।

भगवान बनने की ताकत है तुझमें।
तू मान. बैठा. पुजारी हूँ बस मैं।
ऐसी तू मान्यता को छोड़, छोड़-छोड़-छोड़।।५।।

(९)

आज हम जिनराज! तुम्हारे द्वारे आये।
हाँ जी हाँ हम, आये-आये।।टेक।।

देखे देव जगत के सारे, एक नहीं मन भाये।
पुण्य-उदय से आज तिहारे, दर्शन कर सुख पाये।।१।।

जन्म-मरण नित करते-करते, काल अनन्त गमाये।
अब तो स्वामी जन्म-मरण का, दुःखड़ा सहा न जाये।।२।।

भवसागर में नाव हमारी, कब से गोता खाये।
तुम ही स्वामी हाथ बढ़ाकर, तारो तो तिर जाये।।३।।

अनुकम्पा हो जाय आपकी, आकुलता मिट जाये।
'पंकज' की प्रभु यही वीनती, चरण-शरण मिल जाये।।४।।

*

शास्त्रभक्ति

(१)

जिनवर चरण भक्ति वर गंगा, ताहि भजों भवि नित सुखदानी।
स्याद्वाद हिम-गिरि तैं उपजी, मोक्ष महासागरहि समानी।।टेक।।

ज्ञान-विज्ञान रूप दोऊ ढाये, संयम भाव लहर हित आनी।
धर्मध्यान जहँ भँवर परत है, शम-दम जामें सम-रस पानी।।१।।

जिन-संस्तवन तरंग उठत है, जहाँ नहीं शभ्रम-कीच निशानी।
मोह-महागिरि चूर करत है, रत्नत्रय शुध पंथ ढलानी।।२।।

सुर-नर-मुनि-खग आदिक पक्षी, जहाँ रमत निज समरस ठानी।
'मानिक' चित्त निर्मल स्थान करी, फिर नहीं होत मलिन भव प्राणी।।३।।

(२)

जिनवाणी माता रत्नत्रय निधि दीजिये।।टेक।।

मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चरण में, काल अनादि घूमे।
सम्यग्दर्शन भयौ न तातैं, दुःख पायो दिन दूने।।१।।

है अभिलाषा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरण दे माता।
हम पावैं निजस्वरूप आपनो, क्यों न बनैं गुणज्ञाता।।२।।

जीव अनन्तानन्त पठाये, स्वर्ग-मोक्ष में तूने।
अब बारी है हम जीवन की, होवे कर्म विदूने।।३।।

भव्यजीव हैं पुत्र तुम्हारे, चहुँगति दुःख से हारे।
इनको जिनवर बना शीघ्र अब, दे दे गुण-गण सारे।।४।।
औगुण तो अनेक होत हैं, बालक में ही माता।
पे अब तुम-सी माता पाई, क्यों न बने गुणज्ञाता।।५।।
क्षमा-क्षमा हो सभी हमारे दोष अनन्ते भव के।
शिव का मार्ग बता दो माता, लेहु शरण में अबके।।६।।
जयवन्तों जिनवाणी जग में, मोक्षमार्ग प्रवर्तो।
श्रावक 'जयकुमार' बीनवे, पद दे अजर अमर।।७।।

(३)

जिन-बैन सुनत मोरी भूल भगी।।टेक।।
कर्मस्वभाव भाव चेतन को, भिन्न पिछानन सुमति जगी।।१।।
निज अनुभूति सहज ज्ञायकता, सो चिर रुष-तुष-मैल पगी।।२।।
स्याद्वाद धुनि निर्मल जलतैं, विमल भई समभाव लगी।।३।।
संशय-मोह-भरमता विघटी, प्रकटी आतम सोंज सगी।।४।।
'दौल' अपूरव मंगल पायो, शिवसुख लेन होंस उमगी।।५।।

(४)

जिनवाणी माता दर्शन की बलिहारियाँ।।टेक।।

प्रथम देव अरहन्त मनाऊँ, गणधरजी को ध्याऊँ।
कुन्दकुन्द आचार्य हमारे, तिनको शीश नवाऊँ।।१।।

योनि लाख चौरासी माहीं, घोर महादुःःख पायो।
ऐसी महिमा सुनकर माता, शरण तुम्हारी आयो।।२।।

जानै थाँको शरणो लीनों, अष्ट कर्म क्षय कीनो।
जनम-मरण मिटा के माता, मोक्ष महापद दीनो।।३।।

ठाड़े श्रावक अरज करत हैं, हे जिनवाणी माता।
द्वादशांग चौदह पूरव का, कर दो हमको ज्ञाता।।४।।

(५)

चरणों में आ पड़ा हूँ, हे द्वादशांग वाणी।
मस्तक झुका रहा हूँ, हे द्वादशांग वाणी।।टेक।।

मिथ्यात्व को नशाया, निज तत्त्व को प्रकाशा।
आपा-पराया-भासा, हो भानु के समानी।।१।।

षट् द्रव्य को बताया, स्याद्वाद को जताया।
भवफन्द से छुड़ाया, सच्ची जिनेन्द्र वाणी।।२।।

रिपु चार मेरे मग में, जंजीर डाले पग में।
ठाड़े हैं मोक्ष-मग में, तकरार मोसों ठानी।।३।।

दे ज्ञान मुझको माता, इस जग से तोड़ूँ नाता।
होवे 'सुदर्शन' साता, नहिं जग में तेरी सानी।।४।।

(६)

नित पीज्यो धी धारी, जिनवाणी सुधा-सम जानिके।।टेक।।

वीर मुखारविंदतैं प्रकटी, जन्म-जरा भयटारी।
गौतमादि गुरु-उर घट व्यापी, परम सुरुचि करतारी।।१।।

सलिल समान कलिलमलगंजन, बुधमनरंजन हारी।
भंजन विभ्रम धूलि प्रभंजन, मिथ्या जलद निवारी।।२।।

कल्याणकतरु उपवनधरिनी, तरनी भवजलतारी।
बंधविदारन पैनी छैनी, मुक्ति-नसैनी सारी।।३।।

स्व-परस्वरूप प्रकाशन को यह, भानुकला अविकारी।
मुनिमनकुमुदिनि-मोदनशशिभा, शमसुख सुमन सुवारी।।४।।

जाके सेवत बेवत निजपद, नसत अविद्या सारी।
तीन लोकपति पूजत जाको, जान त्रिजग-हितकारी।।५।।

कोटि जीभ सों महिमा जाकी, कहि न सके पविधारी।
'दौल' अल्पमति केम कहै यह, अधम-उधारन हारी।।६।।

(७)

साँची तो गंगा यह वीतरागवाणी।
अविच्छिन्न धारा निजधर्म की कहानी।।टेक।।
जामें अति ही विमल अगाध ज्ञानपानी।
जहाँ नहीं संशयादि पंक की निशानी।।१।।
सप्तभंग जहँ तरंग उछलत सुखदानी।
संतचित मरालवृन्द रमैं नित्य ज्ञानी।।२।।
जाके अवगाहनतैं शुद्ध होय प्राणी।
'भागचन्द' निहचैं घटमाहिं या प्रमानी।।३।।

(८)

धन्य-धन्य है घड़ी आज की, जिनधुनि श्रवणपरी।
तत्त्वप्रतीत भई अब मेरे, मिथ्यादृष्टि टरी।।टेक।।
जड़ तैं भिन्न लखी चिन्मूरत, चेतन स्वरस भरी।
अहंकार ममकार बुद्धि पुनि, पर में सब परिहरी।।१।।
पाप-पुण्य विधि बन्ध अवस्था, भासी अति दुःखभरी।
वीतराग-विज्ञानभावमय, परनति अति विस्तरी।।२।।
चाह दाह विनसी बरसी पुनि, समता मेघ झरी।
बाढ़ी प्रीति निराकुल पद सों, 'भागचन्द' हमरी।।३।।

(९)

केवलि-कन्ये, वाङ्मय गंगे, जगदम्बे, अघ नाश हमारे।
सत्य-स्वरूपे, मंगलरूपे, मन-मन्दिर में तिष्ठ हमारे।।टेक।।
जम्बूस्वामी गौतम-गणधर, हुए सुधर्मा पुत्र तुम्हारे।
जगतैं स्वयं पार है करके, दे उपदेश बहुत जन तारे।।१।।
कुन्दकुन्द, अकलंकदेव अरु, विद्यानन्दि आदि मुनि सारे।
तव कुल-कुमुद चन्द्रमा ये शुभ, शिक्षामृत दे स्वर्ग सिधारे।।२।।

तूने उत्तम तत्त्व प्रकाशे, जग के भ्रम सब क्षय कर डारे।
तेरी ज्योति निरख लज्जावश, रवि-शशि छिपते नित्य विचारे।।३।।

भव-भय पीड़ित, व्यथित-चित्त जन, जब जो आये शरण तिहारे।
छिन भर में उनके तब तुमने, करुणा करि संकट सब टारे।।४।।

जब तक विषय-कषाय नशै नहीं, कर्म-शत्रु नहिं जाय निवारे।
तब तक 'ज्ञानानन्द' रहै नित, सब जीवन तैं समता धारे।।५।।

(१०)

धन्य-धन्य जिनवाणी माता, शरण तुम्हारी आये।
परमागम का मन्थन करके, शिवपुर पथ पर धाये।।
माता दर्शन तेरा रे! भविक को आनन्द देता है।
हमारी नैया खेता है।।१।।

वस्तु कथंचित् नित्य-अनित्य, अनेकांतमय शोभे।
परद्रव्यों से भिन्न सर्वथा, स्वचतुष्टयमय शोभे।।
ऐसी वस्तु समझने से, चतुर्गति फेरा कटता है।
जगत का फेरा मिटता है।।२।।

नय निश्चय-व्यवहार निरूपण, मोक्षमार्ग का करती।
वीतरागता ही मुक्तिपथ, शुभ व्यवहार उचरती।।
माता! तेरी सेवा से, मुक्ति का मारग खुलता है।
महा मिथ्यातम धुलता है।।३।।

तेरे अंचल में चेतन की, दिव्य चेतना पाते।
तेरी अमृत लोरी कया है, अनुभव की बरसातें।।
माता! तेरी वर्षा में, निजानन्द झरना झरता है।
अनुपमानन्द उछलता है।।४।।

नव-तत्त्वों में छुपी हुई जो, ज्योति उसे बतलाती।
चिदानन्द ध्रुव ज्ञायक घन का, दर्शन सदा कराती।।
माता! तेरे दर्शन से, निजातम दर्शन होता है।
सम्यग्दर्शन होता है।।५।।

(११)

धन्य-धन्य वीतराग वाणी, अमर तेरी जग में कहानी।
चिदानंद की राजधानी, अमर तेरी जग में कहानी।।टेक।।
उत्पाद-व्यय अरु ध्रौव्य स्वरूप, वस्तु बखानी सर्वज्ञ भूप।
स्याद्वाद तेरी निशानी, अमर तेरी जग में कहानी।।१।।
नित्य-अनित्य अरु एक अनेक, वस्तु कथंचित् भेद-अभेद।
अनेकांतरूपा बखानी, अमर तेरी जग में कहानी।।२।।
भाव शुभाशुभ बंधस्वरूप, शुद्ध-चिदानन्दमय मुक्तिरूप।
मारग दिखाती है वाणी, अमर तेरी जग में कहानी।।३।।
चिदानंद चैतन्य आनन्द धाम, ज्ञानस्वभावी निजातम।
स्वाश्रय से मुक्ति बखानी, अमर तेरी जग में कहानी।।४।।

(१२)

सुनकर वाणी जिनवर की, म्हारे हर्ष हिये न समाय जी।।टेक।।
काल अनादि की तपन बुझानी, निज निधि मिली अथाह जी।।१।।
संशय, भ्रम और विपर्यय नाशा, सम्यक् बुद्धि उपजाय जी।।२।।
नर-भव सफल भयो अब मेरो, 'बुधजन' भेंटत पाय जी।।३।।

(१३)

मुख ओंकार धुनि सुनि अर्थ गणधर विचारै।
रचि-रचि आगम उपदेसै भविक जीव संशय निवारै।।
सो सत्यारथ शारदा, तासु भक्ति उर आन।
छंद भुजंगप्रयाततैं, अष्टक कहाँ बखान।।

(भुजंगप्रयात)

जिनादेश ज्ञाता जिनेन्द्रा विख्याता, विशुद्धा प्रबुद्धा नमों लोकमाता।
दुराचार-दुर्नहरा शंकरानी, नमो देवि वागेश्वरी जैनवाणी।।१।।
सुधाधर्म संसाधनी धर्मशाला, सुधाताप निर्नाशिनी मेघमाला।
महामोह विध्वंसिनी मोक्षदानी, नमो देवि वागेश्वरी जैनवाणी।।२।।

अखैवृक्षशाखा व्यतीताभिलाषा, कथा संस्कृता प्राकृता देशभाषा।
चिदानंद-भूपाल की राजधानी, नमो देवि वागेश्वरी जैनवाणी ।।३।।

समाधानरूपा अनूपा अक्षुद्रा, अनेकान्तधा स्याद्वादांक मुद्रा।
त्रिधा सप्तधा द्वादशाङ्गी बखानी, नमो देवि वागेश्वरी जैनवाणी ।।४।।

अकोपा अमाना अदंभा अलोभा, श्रुतज्ञानरूपी मतिज्ञान शोभा।
महापावनी भावना भव्य मानी, नमो देवि वागेश्वरी जैनवाणी ।।५।।

अतीता अजीता सदा निर्विकारा, विषैवाटिकाखंडिनी खड्गधारा।
पुरापापविश्षेप कर्त्ता कृपाणी, नमो देवि वागेश्वरी जैनवाणी ।।६।।

अगाधा अबाधा निरंध्रा निराशा, अनन्ता अनादीश्वरी कर्मनाशा।
निशंका निरंका चिदंका भवानी, नमो देवि वागेश्वरी जैनवाणी ।।७।।

अशोका मुदेका विवेका विधानी, जगज्जन्तुमित्रा विचित्रावसानी।
समस्तावलोका निरस्ता निदानी, नमो देवि वागेश्वरी जैनवाणी ।।८।।

जे आगम रुचिधरैं, जे प्रतीति मन माहिं आनहिं।
अवधारहिं गे पुरुष, समर्थ पद अर्थ आनहिं।।
जे हित हेतु 'बनारसी', देहिं धर्म उपदेश।
सब पावहिं परम सुख, तज संसार कलेश।।

(१४)

भ्रात जिनवाणी-सम नहिं आन, जान श्रुतपंचमि पर्व महान ।।टेक।।

एकान्तों का नहीं ठिकाना, स्याद्वाद का लखा निशाना।
मिटता भव-भव का अज्ञान, जान श्रुतपंचमि पर्व महान ।।१।।

केवलज्ञानी की यह वाणी, खिरे निरक्षर तदि समझानी।
सुर-नर तिर्यंच सुनते आन, जान श्रुतपंचमि पर्व महान ।।२।।

गणधर हृदय विराजी माता, ज्ञानस्व भाव सहज झलकाता।
सुनत चिन्तत हो भेद-ज्ञान, जान श्रुतपंचमि पर्व महान ।।३।।

भविजन प्रीतिसहित चित धारे, रवि-शशि-सम तम को परिहारे।
उर घट प्रकटे पूरन आन, जान श्रुत पंचमि पर्व महान।।४।।

मोक्षदायिका है जिनमाता, तुम पूजक सम्यक् निधिपाता।
'नंद' भी अपने आश्रित जान, जान श्रुतपंचमि पर्व महान।।५।।

(१५)

नित्य बोधिनी मां जिनवाणी, चरणोमें सादर वंदन।
भटक भटक कर हार गये हम, मेटो भव–भव का क्रंदन।टेक।

मै अनादि से मोह नींदकी, मदहोशी में मस्त रहा।
परद्रव्योकी आसक्ति में, हरपल में संलग्न रहा।।
खोज रहा परमें सुखको मैं, व्यर्थ गया सारा मंथन।।टेक।।

अनेकांतमय जिनवाणीने, मुक्ति का पथ दिखलाया।
सप्त तत्व और छह द्रव्यो का, ज्ञान जगत को करवाया।।
हम भी प्रभु वाणी पर चलकर, मेटेंगे भवके बंधन।।टेक।।

शुद्धातम स्वरुप से सज्जित, द्वादशांगमय जिनवाणी।
पावन वाणी को अपनाकर, लाखो संत बने ज्ञानी।।

गुरु भक्ति

(१)

ऐसे साधु सुगुरु कब मिलि हैं।।टेक।।
आप तरैं अरु पर को तारैं, निष्पृही निर्मल हैं।।१।।
तिल तुष मात्र संग नहिं जिनके, ज्ञान-ध्यान गुण बल हैं।।२।।
शांत दिगम्बर मुद्रा जिनकी, मन्दर तुल्य अचल हैं।।३।।
'भागचन्द' तिनको नित चाहें, ज्यों कमलनि को अलि हैं।।४।।

(२)

धन-धन जैनी साधु जगत के, तत्त्वज्ञान विलासी हो।।टेक।।
दर्शन बोधमई निज मूरति जिनको अपनी भासी हो।

त्यागी अन्य समस्त वस्तु में अहंबुद्धि दुःखदासी हो ॥१॥
जिन अशुभोपयोग की परिणति सत्तासहित विनाशी हो।
होय कदाच शुभोपयोग तो तहँ भी रहत उदासी हो ॥२॥
छेदत जे अनादि दुःखदायक दुविधि बंध की फाँसी हो।
मोह क्षोभ रहित जिन परिणति विमल मयंक विलासी हो ॥३॥
विषय चाह दव दाह बुझावन साम्य सुधारस रासी हो।
'भागचन्द' पद ज्ञानानन्दी साधक सदा हुलासी हो ॥४॥

(३)

परम गुरु बरसत ज्ञान झरी।
हरषि-हरषि बहु गरजि-गरजि के मिथ्या तपन हरी ॥टेक॥
सरधा भूमि सुहावनि लागी संशय बेल हरी।
भविजन मन सरवर भरि उमड़े समुझि पवन सियरी ॥१॥
स्याद्वाद नय बिजली चमके परमत शिखर परी।
चातक मोर साधु श्रावक के हृदय सु भक्ति भरी ॥२॥
जप तप परमानन्द बढयो है, सुखमय नींव धरी।
'द्यानत' पावन पावस आयो, थिरता शुद्ध करी ॥३॥

(४)

वे मुनिवर कब मिली हैं उपगारी।
साधु दिगम्बर, नग्न निरम्बर, संवर भूषण धारी ॥टेक॥
कंचन-काँच बराबर जिनके, ज्यों रिपु त्यों हितकारी।
महल मसान, मरण अरु जीवन, सम गरिमा अरु गारी ॥१॥
सम्यग्ज्ञान प्रधान पवन बल, तप पावक परजारी।
शोधत जीव सुवर्ण सदा जे, काय-कारिमा टारी ॥२॥
जोरि युगल कर 'भूधर' विनवे, तिन पद ढोक हमारी।
भाग उदय दर्शन जब पाऊँ, ता दिन की बलिहारी ॥३॥

(५)

ऐसे मुनिवर देखे वन में, जाके राग-द्वेष नहीं मन में ।।टेक।।
ग्रीष्म ऋतु शिखर के ऊपर, मगन रहे ध्यानन में ।।१।।
चातुरमास तरुतल ठाड़े, बूँद सहे छिन-छिन में ।।२।।
शीत मास दरिया के किनारे, धीरज धरें ध्यानन में ।।३।।
ऐसे गुरु को मैं नित प्रति ध्याऊँ, देत ढोक चरणन में ।।४।।

(६)

परम दिगम्बर मुनिवर देखे, हृदय हर्षित होता है।।
आनन्द उलसित होता है, हो-हो सम्यग्दर्शन होता है।।टेक।।

वास जिनका वन-उपवन में, गिरि-शिखर के नदी तटे।
वास जिनका चित्त गुफा में, आतम आनन्द में रमें।।१।।

कंचन-कामिनी के त्यागी, महा तपस्वी ज्ञानी-ध्यानी।
काया की ममता के त्यागी, तीन रतन गुण भण्डारी।।२।।

परम पावन मुनिवरों के, पावन चरणों में नमूँ।
शान्त-मूर्ति सौम्य-मुद्रा, आतम आनन्द में रमूँ।।३।।

चाह नहीं है राज्य की, चाह नहीं है रमणी की।
चाह हृदय में एक यही है, शिव-रमणी को वरने की।।४।।

भेद-ज्ञान की ज्योति जलाकर, शुद्धातम में रमते हैं।
क्षण-क्षण में अन्तर्मुख हो, सिद्धों से बातें करते हैं।।५।।

(७)

संत साधु बन के विचरूँ, वह घड़ी कब आयेगी।
चल पड़ूँ मैं मोक्ष पथ में, वह घड़ी कब आयेगी।।टेक।।

हाथ में पीछी कमण्डलु, ध्यान आतम राम का।
छोड़कर घरबार दीक्षा की घड़ी कब आयेगी।।१।।

आयेगा वैराग्य मुझको, इस दुःखी संसार से।
त्याग दूँगा मोह ममता, वह घड़ी कब आयेगी।।२।।

पाँच समिति तीन गुप्ति, बाईस परिषह भी सहूँ।
भावना बारह जु भाऊँ, वह घड़ी कब आयेगी।।३।।

बाह्य उपाधि त्याग कर, निज तत्त्व का चिंतन करूँ।
निर्विकल्प होवे समाधि, वह घड़ी कब आयेगी।।४।।

भव-भ्रमण का नाश होवे, इस दुःखी संसार से।
विचरूँ मैं निज आतमा में, वह घड़ी कब आयेगी।।५।।

(८)

धन्य मुनीश्वर आतम हित में छोड़ दिया परिवार,
कि तुमने छोड़ दिया परिवार।

धन छोड़ा वैभव सब छोड़ा, समझा जगत असार,
कि तुमने छोड़ दिया संसार।।टेक।।

काया की ममता को टारी, करते सहन परीषह भारी।
पंच महाव्रत के हो धारी, तीन रतन के हो भंडारी।।

आत्म स्वरूप में झुलते, करते निज आतम-उद्धार,
कि तुमने छोड़ा सब घर बार।।१।।

राग-द्वेष सब तुमने त्यागे, वैर-विरोध हृदय से भागे।
परमातम के हो अनुरागे, वैरी कर्म पलायन भागे।।
सत् सन्देश सुना भविजन को, करते बेड़ा पार,
कि तुमने छोड़ा सब घर बार।।२।।

होय दिगम्बर वन में विचरते, निश्चल होय ध्यान जब करते।
निजपद के आनंद में झुलते, उपशम रस की धार बरसते।।
मुद्रा सौम्य निरख कर, मस्तक नमता बारम्बार,
कि तुमने छोड़ा सब घर बार।।३।।

(९)

म्हारा परम दिगम्बर मुनिवर आया, सब मिल दर्शन कर लो,
हाँ, सब मिल दर्शन कर लो।
बार-बार आना मुश्किल है, भाव भक्ति उर भर लो,
हाँ, भाव भक्ति उर भर लो।।टेक।।
हाथ कमंडलु काठ को, पीछी पंख मयूर।
विषय-वास आरम्भ सब, परिग्रह से हैं दूर।।
श्री वीतराग-विज्ञानी का कोई, ज्ञान हिया विच धर लो, हाँ।।१।।
एक बार कर पात्र में, अन्तराय अघ टाल।
अल्प-अशन लें हो खड़े, नीरस-सरस सम्हाल।।
ऐसे मुनि महाव्रत धारी, तिनके चरण पकड़ लो, हाँ।।२।।
चार गति दुःख से टरी, आत्मस्वरूप को ध्याय।
पुण्य-पाप से दूर हो, ज्ञान गुफा में आय।
'सौभाग्य' तरण तारण मुनिवर के, तारण चरण पकड़ लो, हाँ।।३।।

(१०)

मैं परम दिगम्बर साधु के गुण गाऊँ गाऊँ रे।
मैं शुध उपयोगी सन्तन को नित ध्याऊँ ध्याऊँ रे।
मैं पंच महाव्रत धारी को शिर नाऊँ नाऊँ रे।।टेक।।
जो बीस आठ गुण धरते, मन-वचन-काय वश करते।
बाईस परीषह जीत जितेन्द्रिय ध्याऊँ ध्याऊँ रे।।१।।
जिन कनक-कामिनी त्यागी, मन ममता त्याग विरागी।
मैं स्वपर भेद-विज्ञानी से सुन पाऊँ पाऊँ रे।।२।।
कुंदकुंद प्रभुजी विचरते, तीर्थंकर-सम आचरते।
ऐसे मुनि मार्ग प्रणेता को, मैं ध्याऊँ ध्याऊँ रे।।३।।
जो हित-मित वचन उचरते, धर्मामृत वर्षा करते।
'सौभाग्य' तरण-तारण पर बलि-बलि जाऊँ जाऊँ रे।।४।।

(११)

नित उठ ध्याऊँ, गुण गाऊँ, परम दिगम्बर साधु।
महाव्रतधारी धारी....धारी महाव्रत धारी।।टेक।।
राग-द्वेष नहिं लेश जिन्हों के मन में है...तन में है।
कनक-कामिनी मोह-काम नहिं तन में है...मन में है।।
परिग्रह रहित निरारम्भी, ज्ञानी वा ध्यानी तपसी।
नमो हितकारी...कारी, नमो हितकारी।।१।।
शीतकाल सरिता के तट पर, जो रहते..जो रहते।
ग्रीष्म ऋतु गिरिराज शिखर चढ़, अघ दहते...अघ दहते।।
तरु-तल रहकर वर्षा में, विचलित न होते लख भय।
वन अंघियारी...भारी, वन... अंघियारी।।२।।
कंचन-काँच मसान-महल-सम, जिनके हैं...जिनके हैं।
अरि अपमान मान मित्र-सम, जिनके हैं...जिनके हैं।।
समदर्शी समता धारी, नग्न दिगम्बर मुनिवर।
भव जल, तारी...तारी, भव जल तारी।।३।।
ऐसे परम तपोनिधि जहाँ-जहाँ, जाते हैं...जाते हैं।
परम शांति सुख लाभ जीव सब, पाते हैं...पाते हैं।।
भव-भव में सौभाग्य मिले, गुरुपद पूजूँ ध्याऊँ।
वरूँ शिवनारी... नारी, वरूँ शिवनारी।।४।।

(१२)

हे परम दिगम्बर यति, महागुण ब्रती, करो निस्तारा।
नहिं तुम बिन हितू हमारा।।
तुम बीस परीषह जीत धरम रखवारा, नहिं तुम बिन हितू हमारा।।टेक।।
तुम आतम ज्ञानी ध्यानी हो, प्रभु वीतराग वनवासी हो।
है रत्नत्रय गुण मण्डित हृदय तुम्हारा, नहिं तुम बिन हितू हमारा।।१।।

तुम क्षमा शांति समता सागर, हो विश्व पूज्य नर रत्नाकर।
है हित-मित सद् उपदेश तुम्हारा प्यारा, नहिं तुम बिन हितू हमारा।।२।।

तुम धर्म मूर्ति हो समदर्शी, हो भव्य जीव मन आकर्षी।
है निर्विकार निर्दोष स्वरूप तुम्हारा, नहिं तुम बिन हितू हमारा।।३।।

है यही अवस्था एक सार, जो पहुँचाती है मोक्ष द्वार।
'सौभाग्य' आप-बाना होया हमारा, नहिं तुम बिन हितू हमारा।।४।।

(१३)

है परम-दिगम्बर मुद्रा जिनकी, वन-वन करें बसेरा।
मैं उन चरणों का चेरा, हो वन्दन उनको मेरा।।
शाश्वत सुखमय चैतन्य-सदन में, रहता जिनका डेरा।
मैं उन चरणों का चेरा, हो वन्दन उनको मेरा।।टेक।।
जहँ क्षमा मार्दव आर्जव सत् शुचिता की सौरभ महके।
संयम तप त्याग अकिंचन स्वर परिणति में प्रतिपल चहके।
है ब्रह्मलचर्य की गरिमा से, आराध्य बने जो मेरा।।१।।
अन्तर-बाहर द्वादश तप से, जो कर्म-कालिमा दहते।
उपसर्ग परीषह-कृत बाधा, जो साम्य-भाव से सहते।
जो शुद्ध-अतीन्द्रिय आनन्द-रस का, लेते स्वाद घेरा।।२।।
जो दर्शन ज्ञान चरित्र वीर्य तप, आचारों के धारी।
जो मन-वच-तन का आलम्बन तज, निज चैतन्य विहारी।।
शाश्वत सुखदर्शन-ज्ञान-चरित में, करते सदा बसेरा।।३।।
नित समता स्तुति वन्दन अरु, स्वाध्याय सदा जो करते।
प्रतिक्रमण और प्रति-आख्यान कर, सब पापों को हरते।।
चैतन्यराज की अनुपम निधियाँ, जिसमें करें बसेरा।।४।।

(१४)

होली खेलें मुनिराज शिखर वन में, रे अकेले वन में, मधुवन में।
मधुवन में आज मची रे होली, मधुवन में।।टेक।।
चैतन्य-गुफा में मुनिवर बसते, अनन्त गुणों में केली करते।
एक ही ध्यान रमायो वन में, मधुवन में।।होली.।।१।।
ध्रुवधाम ध्येय की धूनी लगाई, ध्यान की धधकती अग्नि जलाई।
विभाव का ईंधन जलायें वन में, मधुवन में।।होली.।।२।।
अक्षय घट भरपूर हमारा, अन्दर बहती अमृत धारा।
पतली धार न भाई मन में, मधुवन में।।होली.।।३।।
हमें तो पूर्ण दशा ही चहिये, सादि-अनंत का आनंद लहिये।
निर्मल भावना भाई वन में, मधुवन में।।होली.।।४।।
पिता झलक ज्यों पुत्र में दिखती, जिनेन्द्र झलक मुनिराज चमकती।
श्रेणी माँडी पलक छिन में, मधुवन में।।होली.।।५।।
नेमिनाथ गिरनार पे देखो, शत्रुंजय पर पाण्डव देखो।
केवलज्ञान लियो है छिन में, मधुवन में।।होली.।।६।।
बार-बार वन्दन हम करते, शीश चरण में उनके धरते।
भव से पार लगाये वन में, मधुवन में।।होली.।।७।।

(१५)

ते गुरु मेरे मन बसो, जे भवजलधि जिहाज।
आप तिरहिं पर तारहिं, ऐसे श्री ऋषिराज।।ते गुरु.।।
मोहमहारिपु जानिकैं, छाड्यो सब घरबार।
होय दिगम्बर वन बसे, आतम शुद्ध विचार।।ते गुरु.।।
रोग उरग-बिल वपु गिण्यो, भोग भुजंग समान।
कदली तरु संसार है, त्याग्यो सब यह जान।।ते गुरु.।।
रत्नत्रयनिधि उर धरें, अरु निरग्रन्थ त्रिकाल।
मार्यो कामखवीस को, स्वामी परम दयाल।।ते गुरु.।।

पंच महाव्रत आदरें, पाँचों समिति समेत।
तीन गुपति पालें सदा, अजर अमर पद हेत।।ते गुरु.।।
धर्म धरें दशलाछनी, भावें भावन सार।
सहें परीषह बीस द्वै, चारित-रतन-भण्डार।।ते गुरु.।।
जेठ तपै रवि आकरो, सूखै सरवर नीर।
शैल-शिखर मुनि तप तपें, दाझें नगन शरीर।।ते गुरु.।।
पावस रैन डरावनी, बरसै जलधर धार।
तरुतल निवसै तब यती, बाजे झंझा ब्यार।।ते गुरु.।।
शीत पड़े कपि-मद गलें, दाहै सब वनराय।
तालतरंगनि के तटें, ठाड़े ध्यान लगाय।।ते गुरु.।।
इहि विधि दुद्धर तप तपै, तीनों काल मँझार।
लागे सहज सरूप मैं, तनसों ममत निवार।।ते गुरु.।।
पूरब भोग न चिंतवें, आगम बांछें नाहिं।
चहुँगति के दुःखसों डरें, सुरति लगी शिवमाहिं।।ते गुरु.।।
रंग महल में पौढ़ते, कोमल सेज विछाय।
ते पच्छिम निशि भूमि में, सोवें सँवरि काय।।ते गुरु.।।
गजचढ़ि चलते गरवसों, सेना सजि चतुरंग।
निरखि-निरखि पग वे धरें, पालें करुणा अंग।।ते गुरु.।।
वे गुरु चरण जहाँ धरै, जग में तीरथ जेह।
सो रज मम मस्तक चढ़ो, 'भूधर' माँगे एह।।ते गुरु.।।

(१६)

अहो जगत गुरु देव, सुनिये अरज हमारी।
तुम हो दीन दयाल, मैं दुखिया संसारी।।१।।
इस भव बन के माहिं, काल अनादि गमायो।
भ्रमत चतुर्गति माहीं, सुख नहीं दुख बहु पायो।।२।।
कर्म महारिपु जोरि, एक न कान धरेजी।
मन माने दुख देहि, काहू सों नाहिं डरेजी।।३।।

कबहूँ इतर निगोद, कबहूँ नरक दिखावै।
सुर-नर पशु गति माहिं, बहु विधि नाच नचावै ।।४।।
प्रभु इनको परसंग, भव भव माहिं बुरोजी।
जे दुख देखे देव, तुमसों नाहिं दुरोजी ।।५।।
एक जनम की बात, कहि न सकों सुनि स्वामी।
तुम अनंत परजाय, जानत अन्तर जामी ।।६।।
मैं तो एक अनाथ, ये मिलि दुष्ट घनेरे।
कियो बहुत बेहाल, सुनियो साहिब मेरे ।।७।।
ज्ञान महानिधि लूटि, रंक निबल करि डारयो।
इन्हीं तुम मुझ माहिं, हे जिन अन्तर पारयो ।।८।।
पाप-पुण्य मिल दोय, पायनि बेड़ी डारी।
तन कारागृह माहिं, मोहि दियो दुःख भारी ।।९।।
इनको नेक बिगार, मैं कछु नाहिं कियोजी।
बिन कारन जग बंद्य, बहु विधि वैर लियोजी ।।१०।।
अब आयो तुम पास, सुन जिन सुजस तिहारो।
नीति निपुण जिनराय, कीजे न्याय हमारो ।।११।।
दुष्टन देहु निकाल, साधुन को रखि लीजे।
विनवै 'भूधरदास' हे प्रभु ढील न कीजे ।।१२।।

(१७)

वे मुनिवर कब मिलि, हैं उपगारी।
साधु दिगम्बर, नगन निरम्बर, संवर भूषण धारी ।।टेक।।
कंचन कांच बराबर जिनके, ज्यों रिपु त्यों हितकारी।
महल मसान, मरण अरु जीवन, सम गरिमा अरु गारी ।।१।।
सम्यग्ज्ञान प्रधान पवन बल, तप पावक परजारी।
शोधत जीव सुवर्ण सदा जे, काय–कारिमा टारी ।।२।।
जोरि युगल कर 'भूधर' विनवे, तिन पद ढोक हमारी।
भाग उदय दर्शन जब पाऊँ ता दिन की बलिहारी ।।३।।

वैराग्य भक्ति

(१८)

ममता की पतवार ना तोडी, आखिर को दम तोड दिया। (२)
एक अनजाने राही ने, शिवपुर का मारग छोड दिया।।टेक।।

नरक में जिसने भावना भायी, मानुषतन को पाने की।
भेष दिगंबर धारण कर के, मुक्ति पद को पाने की।।
लेकिन देखो आज ये हालत, ममता के दीवाने की।
चेतन होकर जड द्रव्यो से, कैसा नाता जोड दिया।।
एक अनजाने राही ने, शिवपुर का मारग छोड दिया।।टेक।।

ममता के बंधन में बंधकर, क्या युग–युग तक सोना है ?
मोह अरीका सचमुच इसपर, हो गया जादु टोना है।।
चेतन क्या नरतन को पाकर, अब भी यूंही खोना है।
मन का रथ क्यों शिवमारग से, कुमारग को मोड दिया।।
एक अनजाने राही ने, शिवपुर का मारग छोड दिया।।टेक।।

मत खोना दुनिया मे आकर, ये बस्ती अनजानी है।
जायेगा हर आनेवाला, जग की रीत पुरानी है।।
जीवन बन जाता यहां पंकज, सबकी एक कहानी है।
चेतन देखा निज स्वरूप तो, दुःख का दामन तोड दिया।।
एक अनजाने राही ने, शिवपुर का मारग छोड दिया।।टेक।।

(१९)

जिया कब तक उलझेगा, संसार विकल्पों में।
कितने भव बीत चुके, संकल्प विकल्पों में।।टेक।।

उड–उड कर यह चेतन, गति गति में जाता है।
रागों में लिप्त सदा, भव भव दुःख पाता है।।
क्षण भर को भी न कभी, निज आतम ध्याता है।
निज तो न सुहाता है, पर ही मन भाता है।
यह जीवन बीत रहा, झुठे संकल्पों में।।जिया–१।।

निज आत्मस्वरूप लखो, तत्वों का कर निर्णय।
मिथ्यात्व छूट जावे, समकित प्रगटे सुखमय।।
निज परणति रमण करे, हो निश्चय रत्नत्रय।
निर्वाण मिले निश्चय, छूटे भवदुःख भयमय।।
सुख ज्ञान अनन्त मिले, चिन्मय की गल्पों में।। जिया–२।।

शुभ अशुभ विभाव तजो, हैं हेय अरे आस्रव।
संवर का साधन ले, चेतन का कर अनुभव।।
शुद्धातम का चिंतन, आनन्द अतुल अभिनव।
कर्मों की पगध्वनि का, मिट जावेगा कलरव।।
तू सिद्ध स्वयं होगा, पुरुषार्थ स्वकल्पों में।। जिया–३।।

नर रे नर रे नर रे, तू चेत अरे नर रे।
क्यों मूढ़ विमूढ़ बना, कैसा पागल खर रे।।
अन्तर्मुख हो जा तू, निज में निज रस भर रे।
पर अवलंबन तज रे, निज का आश्रय कर रे।।
पर परिणति विमुख हुआ, तो सुख पल अल्पों में।। जिया–४।।

तू कौन कहां का है, अरु क्या है नाम अरे।
आया है किस घर से, जाना किस गाँव अरे।।
सोचा न कभी तुने, दो क्षण की छांव अरे।
यह तन तो पुद्‌गल है, दो दिन की ठांव अरे।।
तू चेतन द्रव्य सबल, ले सुख अविकल्पों में।। जिया–५।।

यदि अवसर चूका तो, भव–भव पछतायेगा।
फिर काल अनन्त अरे, दुःख का घन छायेगा।।
यह नरभव कठिन महा, किस गति में जायेगा।
नरभव भी पाया तो, जिनश्रुत नहिं पायेगा।।
अनगिनत जन्मों में, अनगिनत कल्पों में।। जिया–६।।

✻

प्रकाशक

श्री शांतिलाल रतिलाल शाह परिवार, मुम्बई
श्री अनंतराय अमूलख शेठ परिवार, मुम्बई